# तुलसीदास के अनन्तर का हिन्दी का राम-साहित्य

---

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए

हिन्दी विभाग के अन्तर्गत प्रस्तुत

**शोध-प्रबन्ध**

निर्देशक

**डॉ० माता प्रसाद गुप्त**

निदेशक

क० मुं० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ

आगरा विश्वविद्यालय

आगरा

---

शोधकर्त्ता

**रामलखन पाण्डेय**

१९६५ ई०

## अपनी बात

रामायण काव्य और रामकथा के अध्ययन एवं चिन्तन द्वारा एक आत्म-तृप्ति मुझे विद्यार्थी-जीवन से मिलती रही है । उसी आत्म-तृप्ति ने मुझे यह प्रेरणा दी थी कि मैं हिन्दी से एम०ए० उत्तीर्ण करने के बाद हिन्दी राम साहित्य का ऐतिहासिक और साहित्यिक अनुशीलन करूं । एम०ए० की पढ़ाई समाप्त करने के साथ ही मैं इस ओर उन्मुख हुआ लेकिन जीवन की दूसरी कठिनाइयों ने इस मार्ग में बाधा पैदा कर दी । फलतः मुझे एल०टी० करके राजकीय सेवा में आना पड़ा ।

राजकीय सेवा में व्यवस्थित हो जाने के बाद मैं इस ओर उन्मुख हुआ । अपने पूज्य पिता जी के आशीर्वाद और उत्साह ने मुझे पुनः इस कार्य के लिए साहस प्रदान किया जिसका वर्षों पूर्व कार्यारंभ हो जाने पर भी अब सम्बन्ध सूत्र टूट चुका था ।

अनुशीलन का यह कार्य बहुत लम्बा और जटिल था । हिन्दी में राम साहित्य का आरम्भ कम से कम भक्ति काल से माना जायगा, तबसे अब तक चार सौ वर्षों का पूरा युग बीत गया है । इतनी लम्बी अवधि में लिखे गये राम-साहित्य, उसकी विशिष्टता एवं प्रवृत्तियों का मूल्यांकन एक गहन श्रम की अपेक्षा रखता था । इस बीच श्रद्धेय गुरुवर डा० माता-प्रसाद गुप्त का परामर्श मुझे इस विपुल श्रम के लिए संजीवनी का काम दे गया । उनके निर्देशन में मैंने कार्य का सही आरम्भ सन् १९५४ से किया । उनके सत्परामर्श से ही मैंने तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम साहित्य को अपने अनुशीलन का विषय बनाया । डा० गुप्त तुलसीदास के जीवन और कृतित्व की एवं प्राचीन साहित्य की अधिकारपूर्ण परख करने वाले माने-जाने विद्वान् हैं । हिन्दी राम-साहित्य को समझने-जानने एवं मूल्यांकन करने के लिए जिन उपादानों एवं सूत्रों की अपेक्षा थी, डा० गुप्त के निर्देशन में श्रम करने पर मुझे वे क्रमशः मिलते गये । यह उनकी ही कृपा थी कि पूरे दस वर्ष श्रम करने के बाद कसौटी पर कसा हुआ चार सौ वर्षों का

हिन्दी राम-साहित्य शोध प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत हो रहा है ·

अंत में प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० रामकुमार वर्मा के प्रति मैं अपना आभार प्रदर्शित करता हूं जिनकी कृपा के बिना इस शोध प्रबन्ध के लिए समय का विस्तार होना कठिन था । पूज्य गुरुवर डा० वर्मा ने इस ओर मेरी जो सहायता की उसका मैं चिर-ऋणी रहूंगा ।

मुझे अपने अध्ययन में अनेक सूत्रों एवं अनेक विद्वानों से समय-समय पर सहयोग और सुझाव प्राप्त हुए हैं । मैं उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं । प्रयाग विश्व विद्यालय के डा० पारसनाथ तिवारी ने जिस सौहार्द के साथ मेरे प्रबन्ध के अध्यायों को पढ़कर अपने सुझावों से लाभान्वित किया है, उसके प्रति अपना आभार प्रकट कर मैं उस सौहार्द का मूल्य निर्धारण नहीं करना चाहता ।

# तुलसीदास के अनन्तर का हिन्दी का राम साहित्य

## प्रबन्ध की रूपरेखा

### पहला अध्याय

-

### भूमिका

<u>पूर्ववर्ती अध्ययन-</u>

१- गार्सां द तासी - इस्वार द ला लितरे त्यौर इंदुई ए हिन्दुस्तानी

२- शिवसिंह सेंगर - शिवसिंह सरोज

३- डा० सर जार्ज ग्रियर्सन - माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान

४- मिश्रबंधु - मिश्रबंधु विनोद

५- रामचंद्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास

६- डा०कामिल बुल्के - रामकथा (उत्पत्ति और विकास)

७- डा० रामकुमार वर्मा - हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास

८- डा० भगवती प्रसाद सिंह - रामभक्ति में रसिक संप्रदाय

९- डा० भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव- रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना

पृष्ठ - १-१०

<u>प्रस्तुत अध्ययन-</u> विषय-विस्तार, अध्ययन तथा उद्देश्य, दृष्टिकोण, अध्ययन शैली, कार्य की रूपरेखा, प्रस्तुत अध्ययन की विशेषता एवं मौलिकता ।

## दूसरा अध्याय

### तुलसी- पूर्व का राम साहित्य और तुलसीदास

(क) ऐतिहासिक पुरुष राम । राम के प्रति लोक का आकर्षण । राम के जीवन की व्यापकता । भारतीय साहित्य में रामकथा के अनेक रूप ।

(ख) तुलसीदास के पूर्व साहित्य में राम-संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी ।

(ग) राम का मध्य युगीन (वाणी) - अवतार -
तुलसीदास का "रामचरित मानस" । "रामचरित मानस" में राम के जीवन के तीन पक्ष - राजनीतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक । पुराण पुरुष राम । "रामचरित मानस" में रामकथा के नये व्यक्तित्व-भरत लक्ष्मण, जटायु, हनुमान् ।

पृष्ठ—

## तीसरा अध्याय

### तुलसीदास के अनन्तर का रामकाव्य का मध्य युग
(संवत् १६५८-२०१८)

(१) दास्य भक्ति प्रमुख ।

(क) तुलसीदास के नाम पर अज्ञात कवियों द्वारा रचित ग्रंथ, रामचरित मानस का परिबृंहण-क्षेपकों की रचना, क्षेपकों की सूची उत्तरकाण्ड के अन्त में क्षेपक के रूप में सम्मिलित लव-कुश काण्ड ।

(ख) प्रबन्ध काव्यों की रचना ।
मुख्य प्रवृत्तियां ।
कवि और काव्य -- केशवदास - रामचंद्रिका, सरजूराम पण्डित- जैमिनि पुराण, मधुसूदन दास-रामाश्वमेध, पद्माकर-राम रसायन , गणेश- वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश, नवलसिंह

कायस्थ- आल्हारामायण, सीता स्वयंबर, जन्म खण्ड, राम विवाह खण्ड, विलास खण्ड, पूर्वशृंगार खण्ड, मिथिला खण्ड, रूपकरामायण, रामायण सुमिरिनी, राम रहस्य कलेवा । रुद्रप्रताप सिंह - सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड गोकुलनाथ- सीताराम गुणार्णव, रघुराजसिंह- राम स्वयंबर, बन्दीदीन दीक्षित- विजय राघौखण्ड, रघुनाथ दास रामसनेही- विश्रामसागर, रामनाम "ज्योतिषी" - रामचंद्रोदय । बिहारी लाल शर्मा कौतुक-कौशलेन्द्र कौतुक ।

पृ० ३४-६४

(ग) अभिनेय काव्य -

प्राणचंद चौहान - हनुमन्नाटक, हृदयराम- हनुमन्नाटक, विश्वनाथ सिंह- आनंद रघुनंदन नाटक ।

पृ. ५४-६५

(घ) वर्णनात्मक काव्य (राम की दैनंदिनी चर्चाओं के वर्णनपूर्ण काव्य) ।

नाभादास - अष्टयाम, जुमान-अष्टयाम, विश्वनाथ सिंह-रामचंद्र की सवारी, जनकराज किशोरी शरण- जानकी शरण मणि, ललकदास- सत्योपाख्यान, रघुराजसिंह-रामाष्टयाम, सरदार- रामलीला प्रकाश

पृ. ६५-६७.

(ङ०) रामकथा के अंगभूत चरितों पर लिखे गये काव्य-प्रवृत्ति की दिशा ।

कवि और काव्य - भगवंत राम खींची- हनुमत पचीसी, गणेशप्रसाद- हनुमत पचीसी, जुमान- हनुमान नख शिख, हनुमान पंचक, हनुमान पचीसी, लक्ष्मण शतक, हरितालिका प्रसाद त्रिवेदी- हनुमान स्तुति, लक्ष्मीनारायण सिंह "ईश" - लंका दहन , ब्रह्माश्रम - हनुमान हृदय। केवल चर्चित - रामलला पांडे - हनुमच्चरित्र, राम-हनुमान नाटक, सरदार - हनुमत भूषण ।

पृ० ६७-७३

(च) रामचरित पर स्फुट काव्य -

सेनापति - कवित्त रत्नाकर ।

पृ० ७३.

(छ) खड़ी बोली के आरंभिक गद्य में राम-साहित्य की रचनाएं ।

राम प्रसाद निरंजनी- भाषा योग वाशिष्ठ ।

दौलतराम- पद्म पुराण, सदल मिश्र - रामचरित ।

पृष्ठ -

## चौथा अध्याय

-

### तुलसीदास के अनन्तर का राम काव्य का मध्ययुग

### (२) मधुरा भक्ति प्रमुख

### (संवत् १७२६ से २०००)

-

(क) रसिक संप्रदाय का स्वरूप, मधुर उपासना का ऐतिह्य, रसिक सम्प्रदाय की ऐतिहासिक साधना का मूल, रसिक संप्रदाय और राम की तांत्रिक मांत्रिक प्रतिष्ठा, रसिक संप्रदाय में राम-साहित्य का रूप ।

(ख) प्रसिद्ध कवि और उनकी कृतियां:

वर्णनात्मक और प्रबंधात्मक काव्य -

अग्रदास- अष्टयाम, गुणी सुखराम टंडन- रामविलास, बनादास- उभय प्रबोधक रामायण, महात्मा शूर किशोर - श्री मिथिला विलास, रामप्रिया शरण - सीतायन ग्रंथ- रामचरन कवि - जानकी समर विजय ।

गीत तथा पद - रचनाकार कवि और उनकी रचनाएं-

बाल अली जी - नेह प्रकाश, ध्यान मंजरी । बालानंद-स्फुट पद । रूपलाल -"रूपसखी"- दोहे । सूरकिशोर - स्फुट पद । राम सखे - पदावली, नृत्य राघव मिलन, दोहावली । कृपा निवास-लगन पचीसी आनंद चिन्तामणि, रामरसामृत सिन्धु - रस पद्धति भावना, पच्चीसी, पदावली । रामचरणदास- पंच शतक, रस मालिका, अष्टयाम पूजा विधि, रामपदावली, झूलन, कौशलेन्द्र रहस्य, रामनवरत्न सार संग्रह । जीवाराम युगलप्रिया-युगल प्रिया पदावली । जनकराज किशोरी शरण "रसिक अली" रचना सिद्धान्त मुक्तावली । युगलानंद शरण जी - प्रेम भक्तिप्रभा दोहावली, युगल विनोद विलास ।

सीतारामशरण रसरंगमणि"-सीताराम शोभावली, प्रेम पदावली, श्री रामव्रात मंजुना, श्री राम रसरंग विलास, रंग विलास, रामझांकी विलास । राम शरण - सोहर पदावली । बैजनाथ कुरमी - रामसीता संयोग -पदावली, विवेक गुच्छ सियावर मुद्रिका । जानकीवर प्रीतिलता- मिथिला महात्म्य, स्फुट पद । ज्ञान अलि सहचरी जी - सियावर केलि पदावली । सियालाल शरण "प्रेमलता" - बृहद उपासना रहस्य, प्रेमलता पदावली । रामनारायन दास - भजन रत्नावली । युगलमंजरी धी- भावनामृतकादम्बिनी । रामवल्लभाशरण "प्रेमनिधि"-बृहत्कोशल खण्ड और शिव संहिता की टीका, स्फुट पद । रामवल्लभाशरण "युगलविहारिणी"- युगल विहार पदावली । सीताराम शरण भगवान प्रसाद रूपकला- रामायण रसविन्दु, मानस अष्टयाम राम प्रेमगंग तरंग, स्फुट पद । सीताशरण शुभशीला- युगलोत्कंठ प्रकाशिका । रामाजी - स्फुट पद । पृ० ८२-१८०

गीतों और पदों के चुने हुए उदाहरण । पृ० १००-२०५

~~पृष्ठ~~

## पांचवां अध्याय पृ० २०६-२३०

-

### राम काव्य का आधुनिक युग

(संवत् १९७७ से २०२० तक)

-

खड़ी बोली में साहित्य, रचना का आरम्भ ।

देश की आजादी की लड़ाई । राम चरित पर नवीन दृष्टि की आवश्यकता । पृ० २०६-२०९

(क) पूर्वाग्रही नवजागृत - राम काव्य - परंपरा - कवि और काव्य - रामचरित उपाध्याय - रामचरित चिन्तामणि,

राधेश्याम कथावाचक - राधेश्याम रामायण ।

श्याम नारायण पांडे - तुमुल, जय हनुमान ।

शिवरत्न शुक्ल "सिरस" - श्री राम तिलकोत्सव, श्री रामावतार ।

गया प्रसाद द्विवेदी "प्रसाद" - नंदिग्राम काव्य ।

गोकुल चन्द्र शर्मा - अशोक वन ।

राजाराम श्रीवास्तव - लक्ष्मण शक्ति ।

(ख) नवोन्मेषशालिनी राम काव्य परंपरा -

रामचरित पर नवीन दृष्टि । सामाजिक तथा राजनीतिक नेता के रूप में, राम के अवतार वाद का रूपान्तर, रामकथा के कुछ पात्रों का नवीन रूप, भूले हुए पात्रों का स्मरण, नारी आन्दोलन तथा अछूतोद्धार की भावना । रामकथा पर नवीन दृष्टि का सूत्रपात ।

१- प्रबन्ध काव्य और कविताएं---

मैथिलीशरण गुप्त - साकेत, पंचवटी, प्रदक्षिणा ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" - राम की शक्ति पूजा, पंचवटी, प्रसंग ।

जयशंकर "प्रसाद"-चित्रकूट ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" - बैदेही वनवास,

सुमित्रानंदन पंत- लक्ष्मण (कविता) अशोकवन ।

बालकृष्ण शर्मा - नवीन" - उर्मिला ।

डा॰ बल्देव प्रसाद मिश्र - कौशल किशोर । साकेत संत, रामराज्य

शेषमणि शर्मा "मणि रायपुरी"- कैकेयी ।

चन्द्र प्रकाश वर्मा - "सीता ।

केदार नाथ मिश्र प्रभात " कैकेयी ।

रघुवीर शरण मित्र - भूमिजा ।

मायादेवी शर्मा - शबरी । गुलाब - अहल्या ।

२- नाटक और एकांकी -

प्रवृत्ति - निर्देश ।

सेठ गोविन्द दास - कर्तव्य(पूर्वार्द्ध), कृषि यज्ञ(एकांकी) ।

सद्गुरुशरण अवस्थी - बालिवध (एकांकी), मफलीरानी ।

मिश्र बन्धु - रामचरित्र ।

लक्ष्मीनारायण मिश्र - अशोकवन (एकांकी), चित्रकूट ।

सीताराम चतुर्वेदी - शबरी, सर्वदानंद वर्मा - भूमिजा ।

रामकुमार वर्मा - राजरानी सीता ।

चन्द्र प्रकाश वर्मा - त्रेता ।

लक्ष्मी नारायण लाल - रावण ।

३- कथा साहित्य - प्रवृत्ति - निर्देश

उपन्यास -

प्रेमचन्द- रामचर्चा । चतुरसेन शास्त्री- वयं रक्षामः ।

कहानी -

अक्षयकुमार जैन - युग पुरुष राम ।

रघुनाथ सिंह - राम कथा ।

४- मनोविश्लेषणात्मक रूपक और काव्य -

प्रवृत्ति निर्देश -

रामवृक्ष बेनीपुरी - सीता की मां ।

जयशंकर त्रिपाठी - आंजनेय।

नरेश मेहता - संशय की एक रात ।

पृष्ठ - २१३-२२०

छठा अध्याय

रामचरित की प्रतिस्पर्द्धी रचनाएं

पृ०२२१-२४४

प्रवृत्ति का जागरण

लक्ष्मीनारायण मिश्र - अशोक वन ।

चतुरसेन शास्त्री - मेघनाद ।

हरदयालु सिंह "हरिनाथ" -रावण-महाकाव्य।

श्रीकृष्ण हसरत - रावण राज्य ।

-पृष्ठ-

सातवाँ अध्याय



आठवाँ अध्याय

## पहला अध्याय

### भूमिका

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आलोचनात्मक अध्ययन प्रारम्भ होने के साथ ही तुलसीदास की कृतियां अध्ययन का विषय बन कर आलोचकों के सामने आने लगीं । आलोचकों ने तुलसी साहित्य में जितनी ही गहरी पैठ की उससे उन्हें इस बात का अनुभव हुआ कि तुलसीदास के साहित्य ने भारतीय लोकमानस की नाड़ी की पहचान की है । कई एक शोध ग्रंथ तुलसी साहित्य पर लिखे गये । साहित्य ही नहीं, तुलसीदास के ऐतिहासिक पक्ष का भी महत्व बढ़ गया । उनके जन्म, जीवन, जन्मभूमि आदि की बातें साहित्य की आलोचना का प्रमुख अंग बन गयीं । विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ इस दिशा में लिखे गये । डॉ० माता प्रसाद गुप्त का "तुलसीदास" शोध ग्रंथ इस तरह के अध्ययनों में सबसे पहले आता है । तुलसी साहित्य के इतने लंबे अनुशीलनों के बाद एक नये अभाव का आभास आलोचकों के सामने उपस्थित हुआ अर्थात् उस सम्पूर्ण राम साहित्य का अनुशीलन किया जाना आवश्यक ज्ञात हुआ जिस साहित्य का अंश तुलसीदास का कृतित्व है ।

तुलसीदास के परवर्ती हिन्दी साहित्य में राम साहित्य का एक प्रमुख ~~स्थल~~ स्थान है । हमारे हिन्दी के साहित्य पर जो इतिहास लिखे गये हैं कुछ न कुछ सभी इतिहासों में इस विषय की चर्चा है । इस अध्याय में यह बताने का प्रयत्न किया जायगा कि इस विषय का आलोचनात्मक अध्ययन कब कितना और किस प्रकार का हुआ तथा इस आलोचनात्मक अध्ययन में किन किन प्रमुख विचारों का सृजन किया गया है और अब आगे इस अध्ययन को किस धरातल पर और किन धाराओं में अग्रसर करना चाहिए ।

### पूर्ववर्ती अध्ययन

तुलसीदास एवं उनके साहित्य की तथा उसके साथ ही उनके प्रवर्तित मार्ग में लिखे गये राम साहित्य की ओर आलोचनात्मक संकेत पहली

बार गार्सा द तासी के ग्रंथ "इस्वार द ला लितरे त्यौर इंदुई ए हिन्दुस्तानी में किया गया । इस ग्रंथ का प्रकाशन संवत् १८९६ वि० में प्रथम बार हुआ था । सौभाग्य से इसका अनुवाद डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने प्रस्तुत कर दिया है । राम काव्य लिखने वाले कुछ प्रमुख कवियों का किंचित् आलोचनात्मक दृष्टिकोण का उल्लेख पहली बार "गार्सा द तासी" ने अपने इतिहास में किया । वे कवि हैं तुलसी, केशव, नाभाराम, अग्रदास, रामानंद, रामसिंह और सेनापति । इनमें तुलसीदास के विषय में वे विशेष विस्तार से लिखते हैं ।

दूसरा ग्रंथ जिसमें तुलसीदास के राम साहित्य के कर्ता कवियों का परिचय हमें मिल सकता है वह है शिवसिंह सेंगर का लिखा हुआ 'शिवसिंह सरोज'। इस ग्रंथ का प्रकाशन संवत् १९३४ में हुआ । इसमें कोई व्यवस्थित सामग्री नहीं है, और न तो आलोचनात्मक ढंग पर कोई विवेचन ही है केवल कवियों के वर्ष और उनके कृतित्व की चर्चा है । लेकिन कई प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध राम साहित्य के कवियों की पहली सूची इस ग्रंथ में आयी है । यह सूची रामसाहित्य या राम भक्ति शाखा के नाम से उल्लिखित नहीं है । ग्रंथ को खोजपूर्वक पढ़ने के साथ हम उसमें से राम काव्य के कर्ता कवियों को अलग कर सकते हैं ।

हमारे प्रस्तुत शोध - विषय का सहायक तीसरा ग्रंथ है यशस्वी विद्वान डा० सर जार्ज ग्रियर्सन का "माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान" । ग्रियर्सन साहब ने विशेष रूप से तुलसीदास और उनके रामचरितमानस के संबंध में अलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है और वह यथेष्ट विद्वत्तापूर्ण है। तुलसीदास के परवर्ती रामकाव्य रचयिता कवियों के सम्बन्ध में यद्यपि प्रभूत सामग्री इस ग्रंथ में नहीं मिलती है तो भी राम साहित्य की प्रवृत्तियों, मान्यताओं एवं सीमाओं का एक ठोस आकलन हमें इस ग्रंथ से प्राप्त होता है ।

मिश्रबन्धु महाशयों का "मिश्रबंधु-विनोद" हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक कोष-ग्रंथ है । यह चार भागों में विभाजित है । राम साहित्य के

रचयिताओं के संबंध में पहली बार विस्तृत इतिवृत्ति का चयन इस ग्रंथ में किया गया है । तुलसीदास और उनके राम साहित्य की धारा का उल्लेख ग्रंथकार ने किया है । उनके उस धारा में आने वाले कवियों की परिगणना भी वह करता है । लेकिन परिशिष्ट सूची के रूप में ही कवियों की गिनती इस ग्रंथ में की गयी । यद्यपि समस्त सामग्री व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत नहीं की जाती लेकिन इतने विस्तार से पहली बार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सम्बन्ध में सामग्री इसी ग्रंथ में मिलती है ।

रामचन्द्र शुक्ल का प्रसिद्ध ग्रंथ "हिन्दी साहित्य का इतिहास" रामभक्ति शाखा का हिन्दी काव्य धारा का व्यवस्थित परिचय प्रस्तुत करता है । इस ग्रंथ में मध्यकालीन रामभक्ति शाखा काव्यों का परिचय देकर कालक्रमानुसार स्फुट प्रवृत्तियों के अन्तर्गत उन कवियों का परिचय भी आ गया है जिन्होंने रामभक्ति शाखा की प्रवर्तित परंपरा के बाद भी उस परम्परा में रचना की है । रामभक्ति साहित्य की सीमा, स्वरूप, आधार एवं लोकदृष्टि पर रामचंद्र शुक्ल ने रामभक्ति शाखा के अन्तर्गत एवं इतिहास के दूसरे स्थलों पर भी विवेचनात्मक प्रकाश डाला है । कवियों के इतिवृत्ति और उनके कृतित्व के सम्बन्ध में भी आलोचनात्मक विश्लेषण रामचंद्र शुक्ल ने किया । तुलसीदास के सीमा को लेकर रामसाहित्य पर भारतीय दृष्टि से यह विवेचन हिन्दी को अभिनव देन थी । शुक्ल जी ने ही अपने इतिहास में पहली बार रामभक्ति शाखा के रसिक सम्प्रदाय के साहित्य पर खरी टीका-टिप्पणी की है । उसके साथ ही राम साहित्य की प्रेरणाओं एवं उसके आदर्शों पर अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है और उसे एक लोक-सम्मत साहित्य बताया है । शुक्ल जी का यह ग्रंथ राम साहित्य के संबंध में बहुत दिनों तक मापदण्ड बना हुआ था और बना है । इस ग्रंथ में ही हिन्दी के आधुनिक काल में लिखे गए राम साहित्य के ग्रंथों पर आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया और उसका एक प्रभाव भी राम साहित्य की होने वाली रचनाओं पर पड़ा । समष्टि रूप में यह ग्रंथ प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के आधार ग्रंथों में विभिन्न दृष्टियों से मूल्यवान् दृष्टि देने वाला सिद्ध हुआ है । रामचंद्र शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' संवत् १९८५ में पहली बार प्रकाशित हुआ और उसका संशोधित परिवर्द्धित संस्करण संवत् १९९७ में निकला ।

राम कथा वाङ्मय के अनुशीलन में डॉ० कामिल बुल्के का एक बड़ा प्रबन्ध "रामकथा" नाम से सन् १९५० में प्रकाशित हुआ जिसमें विश्व की सभी भाषाओं में लिखे गये रामकथा विषयक साहित्य की चर्चा विश्लेषणात्मक दृष्टि से की गयी । इसमें हिन्दी साहित्य में लिखे गये राम साहित्य पर विद्वान लेखक ने गंभीर विश्लेषण उपस्थित किया है । इस विश्लेषण में एक विशिष्ट बात यह है कि हिन्दी में लिखे गये सम्पूर्ण राम-साहित्य की चर्चा करके लेखक रसिक संप्रदाय का राम साहित्य के विषय में कोई उल्लेख नहीं करता यद्यपि इस पुस्तक के परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण के समय रसिक संप्रदाय के राम साहित्य पर दो आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके थे । रसिक संप्रदाय में गिने जाने वाले लालदास कृत 'अवध विलास', समय सुन्दर की 'सीताराम चौपई', अग्रदास के 'अष्टयाम' और 'ध्यानमंजरी' की चर्चा वे अपने आलोचना में करते हैं । पर उनके लिए ~~रसिक~~ रसिक संप्रदाय के राम साहित्य की कोई विधा नहीं है (नये उनकी किसी रूप में चर्चा करते हैं)। इससे हम यह समझते हैं कि डा० बुल्के हिन्दी में लिखे गये राम साहित्य पर अपना विश्लेषण संक्षिप्त रूप में ही उपस्थित करते हैं अथवा उन्हें राम साहित्य में रसिक - संप्रदाय का अस्तित्व मान्य नहीं है अथवा उन्हें राम साहित्य विषयक इस विस्तृत आन्दोलन का पता ही नहीं था जिसने इधर के वर्षों में राम साहित्य में नये अस्तित्व की सृष्टि कर दी । सम्पूर्ण ग्रंथ राम-साहित्य विषयक उन प्रवृत्तियों का परिचय देता है जिनमें उन्मुख होकर संस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रंश और हिन्दी के सहस्र कवि राम साहित्य की रचनाओं में प्रवृत्त रहे हैं । इस प्रकार यह ग्रंथ राम साहित्य-विषयक अनुशीलन के लिए एक उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करता है ।

डा० रामकुमार वर्मा का "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" ~~इसी बीच~~ सन् १९३८ में मुद्रित हुआ । राम साहित्य पर भक्ति काल में लिखी गयी कृतियों पर इसमें विचार हुआ है । विशेषकर तुलसी-दास के रामसाहित्य पर अपना दृष्टिकोण विस्तार से समझाने का विद्वान् लेखक ने प्रयास किया है ।.

तुलसीदास के बाद राम-भक्ति-काव्य धारा में रसिक-संप्रदाय

के उदय और इस संप्रदाय के अनेक कवियों द्वारा राम संबंधी प्रभूत रचनाओं का अस्तित्व हमारे कुछ आलोचक स्वीकार करने लगे हैं, + रामचंद्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिसके विषय में अपनी अस्वीकृत प्रकट की है, अभी ऊपर इसी प्रसंग में मैंने चर्चा भी किया है ।

यहराम रसिक संप्रदाय और उसका साहित्य क्या है ? इसके इतिहास और साहित्य के विवेचन को लेकर इधर दो बड़े ग्रंथ डा० भगवती प्रसाद सिंह और डॉ० भुवनेश्वर नाथ मिश्र "माधव" ने रामभक्ति में रसिक संप्रदाय और "रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना" नाम से लिखे ।

लेखकों की विद्वता उनमें निहित है और राम रसिक संप्रदाय का सम्पूर्ण एतिहय विवेचन, साथ ही दार्शनिक सिद्धान्तों का अनुशीलन इनमें आ गया है । डॉ० सिंह का ग्रंथ इतिहास का विवेचन अधिक प्रस्तुत करता है और पं० माधव के ग्रंथ में दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन अधिक है । हमको रसिक संप्रदाय के आविर्भाव और स्वरूप के सम्बन्ध में इन ग्रंथों से पर्याप्त परिचय मिल जाता है ।

इन ग्रंथों में एक दोष यह है कि ये प्रशस्ति मात्र ही अधिक हैं । राम-रसिक-भक्तों और उनकी साधना के गुणगान की ओर लेखकों की दृष्टि अधिक रही है, अतिरिक्त इसके कि वे इसके सही स्वरूप, सही उद्भव और सही परिणति की कसौटी करते, रसिक साहित्य में लौकिक जीवन के समुन्नतकारी तथ्यों की खोज करते । इससे ये दोनों ग्रंथ रसिक वाङ्०ा- मय की सामग्री हमारे सामने उपस्थित करते हैं, उसके विवेचन के सही मूल्यां- कन का इन ग्रंथों में निदर्शन ढूंढ़ना व्यर्थ होगा । अपने इस पूर्वाग्रह के कारण इन ग्रंथों के लेखकों ने, बाल्मीकि रामायण, रघुवंश, भवभूति के उत्तर राम- चरित, रामचरित मानस आदि ग्रंथों में भी रसिक-साहित्य की खोज निकाला है, जो केवल इसीलिए है कि रसिक साहित्य की परंपरा अत्यन्त पुरानी और अनादि है ।

डा० भगवती प्रसाद सिंह ने लिखा है कि "इसके विकास सूत्रों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी काल विशेष में किन्हीं कारणों से इनका प्रवाह क्षीण भले ही पड़ गया हो किन्तु स्रोत कभी सूखता

नहीं दिखाई दिया ।" + + +

"रामकाव्यों में शृंगारी वर्णनों की परंपरा उतनी ही प्राचीन है जितनी स्वयं राम कथा । वाल्मीकि रामायण में रामचरित के संयोग और वियोग पक्षों का वर्णन बड़ी तन्मयता के साथ किया गया है और उसमें शृंगार के आवश्यक उपादानों का ऐसा योग संघटित हुआ है कि जो अन्य रामकाव्यों में दुर्लभ है ।"

आदि कवि ने राम को संगीत और विलास क्रीड़ाओं का विशेषज्ञ बताया है --

वै हारिकाणां शिल्पानां विज्ञानार्थ विभागावित् ।
गन्धर्वे च भुवि श्रेष्ठो बभूव भरताग्रजः ।।

वा॰रा॰आ॰कां॰सर्ग २ ।

इसके बाद डा॰ सिंह ने वाल्मीकि रामायण तथा संस्कृत के अन्य काव्यों से इसके निदर्शन में उदाहरण स्वरूप ये श्लोक दिये हैं और रसिक सम्प्रदाय की प्राचीनता सिद्ध की है --

स विसृज्य ततो रामः पुष्पकं हेमभूषितम्
प्रविवेश महाबाहुर शोक वनिकां तदा ।। + +
आसने च शुभाकारे पुष्पप्रकर भूषिते ।।
कुशास्तरण संस्तीर्णे रामः सन्निषसाद ह ।
सीतामादाय हस्तेन मधु मैरे बकं शुभि
पाययया मास काकुत्स्थः शचीमिव पुरन्दरः ।

वा॰रा॰उत्तर काण्ड अ॰ ४२ ।

स पौरकार्याणि समीक्ष्य काले
रेमे विदेहाधिपतेर्दुहिता
उपस्थितश्चारु वपुस्तदीयं
कृत्वोप भोगोत्सुकयेव लक्ष्म्या ।

रघुवंश- १४।२४ ।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्ति योगान्
अविरलित कपोलं जल्पतोरक्रमेण
अशिथिल परिरम्भ व्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरव व्यरंसीत् ।।

उत्तर रामचरित - १-२७ ।

स्वेद बिन्दु निचिताग्र नासिका,
धृत हस्तलतिका ससीत्कृतिः ।
सोढमन्मथरसा नृपात्मजा तृप्तये
राघवस्य न बभूव ।।

जानकी हरण - ८।२८ ।[1]

संस्कृत कवियों की इन उक्तियों में राम भक्ति की रसिक परंपरा का ही उन्मेष देखा गया है । शृंगार के इन वर्णनों में रसिक संप्रदाय की शृंगार-साधना का प्रतिबिंब यदि स्वीकार किया जायगा तो जहाँ शृंगार वर्णन राम-काव्य में प्राप्त होंगे समस्त राम साहित्य राम-रसिक-संप्रदाय का ही साहित्य हो जायगा ।

शृंगार वर्णन में भी आश्रय भाव-प्रकार आदि से प्रकार-भेद हो सकता है । भक्ति का साधना-परक शृंगार रसिक भक्तों का शृंगार-रस है और उपर्युक्त कवियों की उक्तियों में जो शृंगार का वर्णन किया गया है वह लोक जीवन के आनन्द का उन्मुक्त शृंगार है । भक्त और भगवान के बीच उस शृंगार का वर्णन नहीं हुआ है । सम्राट राम और राजरानी सीता इस शृंगार के आलम्बन और आश्रय हैं, और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जिन काव्यों में राम-सीता के इस लौकिक शृंगार का वर्णन आया है उन्हीं काव्यों में राम के वीर चरित का दुर्धर्ष रूप भी कवियों ने उपस्थित किया है और वहाँ इस प्रकार राम काव्य के धीरोदात्त नायक हैं, रसिक-संप्रदाय के साकेतवासी युगल सरकार नहीं हैं, वहाँ उन काव्यों में राम ने रावण का मानमर्दन किया है । राम का लोकोत्तर वीर चरित उन काव्यों में है जिनमें वीरता, शृंगार और शान्तभाव सभी आ सकते हैं । उन काव्यों के शृंगार को देखकर उनमें रसिक-संप्रदाय की महिमा की छाप या उसका उन्मेष देखना भ्र-

मात्र या पक्षपात है ।

स्पष्ट है कि ऊपर के वर्णनों में जिन्हें डा० भगवती प्रसाद सिंह ने "रामभक्ति में रसिक संप्रदाय" में रसिक सम्प्रदाय के शृंगारी साहित्य के निदर्शन में उद्धृत किया है, शृंगार भाव की अभिव्यक्ति अवश्य है पर वह लोक जीवन की अभिव्यक्ति है, साधना-परक रसिक संप्रदाय की सिद्धान्तभूत शृंगार की अभिव्यक्ति उसे कभी नहीं कह सकते । वाल्मीकि रामायण के उद्धरण में कवि स्पष्ट ही सीता और राम की तुलना शची और पुरन्दर से करके उन्हें राजपुरुष की कोटि में रख देता है । वहां वे लीला ब्रह्म पुरुष नहीं हैं । रघुवंश के श्लोक में राम ने सीता के साथ रमण किया है कब ? जब उन्हें नगर की रक्षा तथा अन्य कार्यों को देख भाल लेने के बाद अवकाश मिला है तब यहां भी राजा रामचन्द्र का उनकी रानी के साथ शृंगार वर्णन है । उत्तर राम चरित के श्लोक में पति-पत्नी के अनुराग में रात्रि के ही बीत जाने का उल्लेख है, यह चित्रण लोक-सामान्य-रतिभाव की अभिव्यक्ति है जहां प्रेम की बातों में रात ही समाप्त हो जाती है । यहां भी लीला पुरुष राम की रात नहीं बीती है । लीला पुरुष राम की रात यदि होती तो रसिक संप्रदाय के वर्णनों के अनुसार चन्द्रमा और तारे ही अचल हो जाते और रात बीतती ही न । इसी प्रकार जानकी हरण के श्लोक में भी लोक सामान्य शृंगार का ही चित्रण है, उस अलौकिक शृंगार का नहीं जिसके लिए रसिक संप्रदाय के भक्त तरसा करते हैं ।

डॉ० भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव ने भी ऐसे ही विचार राम साहित्य में रसिक परंपरा की खोज करते समय प्रकट किये हैं :--

"प्रसन्न राघव" महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र उपनाम जयदेव कवि-विरचित यह नाटक सात अंकों में पूरा हुआ है । अनुमानतः इसकी रचना १२वीं या १३वीं शताब्दी में हुई होगी । इसके दूसरे अंक में राम और सीता का चंडिकायतन में मिलन तथा पूर्वानुराग का चित्रण बहुत ही मनोहारी शैली में हुआ है । + + + पूरा का पूरा दूसरा अंक राम-सीता के परस्पर आकर्षण, उत्कंठा, प्रीति एवं संभोगेच्छा के भाव से परिपूर्ण है । इसप्रकार भवभूति के "उत्तर रामचरित" में राम का सीता के विरह में तड़पना तथा

"महावीर चरित" में सीताराम का पूर्वानुराग इस सम्बन्ध में लक्ष्य करने की वस्तु है[1]।"

ऐसे निदर्शनों के प्रस्तुत करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि संस्कृत साहित्य में शृंगार रस को रसराज माना गया है । प्रत्येक नाटक या काव्य में नायक और नायिका की योजना तथा उनके आश्रय आलंबन से शृंगार रस की अभिव्यक्ति संस्कृत कवियों की एक परिपाटी रही है । 'प्रसन्न राघव', "उत्तर रामचरित" अथवा "महावीर चरित" में भी राम कवियोंके लिए धीरोदात्त नायक के रूप में ही अभीष्ट हैं और सीता का वर्णन उनकी नायिका के रूप में उन कवियों ने किया है । लोक-सामान्य -शृंगार के अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं कहा जा सकता ।

इस प्रकार तो रामकथा के साहित्य में जहां-जहां शृंगार हो वहां-वहां रसिक संप्रदाय के साहित्य की बुनियाद खोजना हास्यास्पद है ।

हां, एक बात अवश्य बहुत कुछ ठीक जंचती है - वह "हनुमन्नाटक" का राम रसिकोपासकों का परम प्रिय ग्रंथ होना जैसा पं॰ भुवनेश्वर मिश्र माधव ने अपने उपर्युक्त ग्रंथ में दिखाया है[2]। "हनुमन्नाटक" का रचयिता हनुमान कवि को बताया जाता है । किंवदंती के अनुसार महावीर हनुमान जी ही इसके रचयिता हैं । वैसे मूल ग्रंथ के दो संस्करण उपलब्ध हैं और रचयिता के विषय में ठीक कुछ कहा नहीं जा सकता है । पर हां, यह अवश्य है कि इसमें राम-सीता के उद्दाम शृंगार का वर्णन हुआ है और उस वर्णन शैली तथा भाव में राम-रसिक-संप्रदाय की कुछ छाप अवश्य है । हो सकता है इस अस्तव्यस्त नाटक प्रस्तर का उद्धार करते समय किसी राम-रसिक भक्त कवि ने अपनी रचना कर इसका परिबृंहण किया हो और उसमें इस प्रकार का शृंगार वर्णन प्रस्तुत कर दिया हो ।

पर इन वर्णनों तथा इन ग्रंथों का निदर्शन प्रस्तुत करके राम रसिक-सम्प्रदाय के साहित्य को इतना पीछे नहीं खींचा जा सकता । उसकी

---

१- रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ॰ १६८-१६९ ।

२- वही, पृ॰ १६६-१६७ ।

यथार्थ रचना १९वीं-२०वीं विक्रम शताब्दी से ही आरम्भ हुई इसमें दो मत नहीं होने चाहिए ।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त कल्याण मासिक पत्रिका (भक्त चरितांक) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का "हिन्दी साहित्य", पं० रामबहोरी शुक्ल का "हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास", डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का "आधुनिक हिन्दी साहित्य" प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिये सामग्री प्रदान करते हैं ।

## प्रस्तुत अध्ययन

तुलसीदासोत्तर काल में लिखे गये राम साहित्य का अध्ययन, उसकी प्रवृत्तियों का परिचय एवं उसकी महिमा का मूल्यांकन हमारे इस शोध प्रबन्ध का विषय है । तुलसीदास के समकालीन महाकवि केशवदास से लेकर के २०वीं शताब्दी के हरिदयालु सिंह "हरिनाथ" के "रावण महाकाव्य" तक एवं अग्रदास की "ध्यानमंजरी" से लेकर रामवृक्ष "बेनीपुरी" की "सीता की मां" तक हमारे इस प्रबन्ध शोध का विषय अभिव्याप्त है । हिन्दी राम काव्य के साहित्य पर इतना विस्तृत विश्लेषण जो अपनी सीमा में हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल को आत्मसात करता है पहली बार किया जा रहा है ।

मेरा यह प्रबन्ध ~~नव~~ आठ अध्यायों में विभक्त है । प्रथम पांच अध्यायों में भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल तक प्रस्तुत किए गए राम-साहित्य की रचनाओं का अध्ययन है ।छठें अध्याय में रामचरित के प्रतिनायकों के प्रति सहानुभूति की नूतन प्रवृत्ति के उदय पर दृष्टिपात किया गया है । सातवें अध्याय में तुलसीदास के परवर्ती राम साहित्य में राम भक्ति का और आठवें अध्याय में तुलसीदास के परवर्ती राम साहित्य में कला का निदर्शन प्रस्तुत किया गया है । उपसंहार के रूप में राम साहित्य के भविष्य का आकलन है । ~~इस प्रबन्ध में~~ इतनी अवधि के भीतर ब्रजभाषा, ~~बुंदेलखण्डी~~, अवधी और खड़ी बोली हिन्दी में जो राम साहित्य लिखा गया है उन्हीं रचनाओं की चर्चा इस प्रबन्ध में आयी है । आज की लोक भाषाओं-

मैथिली, भोजपुरी, बैसवाड़ी, अवधी आदि में जो राम साहित्य लिखा गया है उसकी चर्चा इस प्रबन्ध में नहीं की गयी है ।

राम कथा इस राष्ट्र के विशेषतः उत्तर भारत के लोकजीवन का एक अंग है । हिन्दी जिस क्षेत्र की भाषा है वहां के जीवन में राम का चरित्र इतना रम गया है कि बिना राम कोअपनी वाणी पर उतारे इस लोक-जीवन का कवि गा नहीं सकता । यही कारण है कि आज के अछूतोद्धार, नारी आन्दोलन, युद्ध और शान्ति की समस्याओं का समावेश भी आधुनिक काल के राम कथा के साहित्य में हो गया है । इन सब विषयों पर पहली बार इस प्रबन्ध में विवेचन प्रस्तुत किया गया है । भविष्य में रामचरित के सम्बन्ध में कवियों की कल्पना नितान्त अकल्पित मोड़ लेगी । यह क्रांति दृष्टि सर्वाधिक आधुनिक काल में है । इसलिए आधुनिक काल के राम साहित्य पर विस्तार से विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है ।

---

## दूसरा अध्याय

## तुलसी - पूर्व का राम साहित्य और तुलसीदास

संस्कृत पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं तक रामकथा के इतने रूप पाये जाते हैं कि निश्चय ही नहीं हो पाता कि वास्तव में रामकथा का मूल या प्राचीन रूप क्या है ? वाल्मीकि के आदि-काव्य के आदि सर्ग में रामकथा की जो संक्षिप्त कहानी दी हुई है वह उसकी ऐतिहासिकता की ओर असंदिग्ध संकेत करती है, जो इतिहास पीछे से जन-श्रुति बन गया है -

> बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।
> मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ।।
> इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
> नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी[१]।

अतएव यह लगता है कि राम एक ऐतिहासिक पुरुष थे और उनके लोक दुर्लभ गुणों ने तथा उनके विराट व्यक्तित्व ने लोक को इतना आकर्षित किया कि राम की कथा में स्थान भेद तथा युग भेद से अन्तर पड़ रहा है । वैसे कवियों की कल्पना ने तो उसमें पर्याप्त परिवर्तन अपनी सुविधा के अनुसार किया ही होगा । बौद्ध तथा जैन पुराण ग्रंथों तथा विदेशी साहित्यों में भी रामकथा में जो अवान्तर भेद हैं उनमें राम की ऐतिहासिकता के कारण ही एक मूलभूत समानता है, वह मौलिक समानता सीताहरण और रावण-वध की है । राम की ऐतिहासिकता स्वीकार करते हुए डा० कामिल बुल्के अपनी राम कथा में लिखते हैं --

"अतः रामकथा के दो अथवा तीन स्वतंत्र भागों की कल्पना का कहीं भी समीचीन आधार नहीं मिलता । इस तरह रामकथा-विषयक आख्यान काव्य का एक ही मूल स्रोत रह जाता है अर्थात् एक ऐतिहासिक घटना । उस प्राचीन आख्यान काव्य के आधार पर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की

---

१- वा० रा० बालकाण्ड १,७-८ ।

है ।"

आदिकाल के प्रथम सर्ग से, जिसे मूल रामायण भी कहते हैं , यह सिद्ध है कि बाल्मीकि द्वारा आदि काव्य रामायण लिखे जाने के पूर्व राम-कथा पर कोई छोटा-मोटा लोक काव्य अवश्य प्रचलित था, वही लोक काव्य बाल्मीकि के रामायण का आधार बना ।

कालिदास ने रघुवंश में जो भूमिका प्रस्तुत की है उससे पता चलता है कि बाल्मीकि और कालिदास के बीच में अनेक कवियों ने राम की कहानी को लेकर रचनाएँ की थीं यद्यपि उन सब का पता आज नहीं है और कालिदास ने उन्हीं रचनाओं को "रघुवंश" का आधार बनाया है ---

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशे रिभन्पूर्वसूरिभिः ।
मणौ वज्र समुत्कीर्णे सूत्रस्यवास्ति मे गतिः ।।
रघुवंश १-४ ।

कालिदास के युग तक राम भगवान के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुए थे यद्यपि इसकी कल्पना चल चुकी थी और समाज के विराट मानव के रूप में वे कवियों को बार बार मोह रहे थे ।

कालिदास के पहले भास ने रामकथा पर दो नाटक लिखे हैं- १- प्रतिमा नाटक - २- अभिषेक नाटक । पहले नाटक में राम के बनवास से लेकर रावण पर राम की विजय तथा जन-स्थान के आश्रम में भरत से भेंट और वहीं राम के राज्याभिषेक का वर्णन है, फिर बाद में राम पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते हैं । नाटक में कुल सात अंक हैं । दूसरे नाटक में बालि-वध से लेकर कथा राम-अभिषेक तक वर्णन की गयी है । इस नाटक में ६ अंक हैं । आदि कवि के रामायण को आलोचक समय - समय पर परि-वर्द्धित कृति मानते हैं । ऐतिहासिक दृष्टि से कालिदास और भास रामकथा के कृतिकार के रूप में संस्कृत साहित्य में हमारे सामने आते हैं । कालिदास का समय गुप्त साम्राज्य का स्वर्ण युग ४०० ई० के आस पास है । भास का समय कालिदास के पूर्व है । कालिदास ने अपने "मालविकाग्निमित्र" में स्वयं इसका उल्लेख किया है ।

भास का समय तीसरी शताब्दी आलोचकों को स्वीकार है ।

ऐसा मालूम पड़ता है लोक-रुचि में राम चरित की प्रियता बढ़ रही थी । शिवभक्ति के स्थान पर राम- भक्ति का उदय हो रहा था। भक्ति विषय के चरित कवियों के काव्य के विषय थे । संक्षिप्त में शिव-चरित को लेकर लिखे गये काव्यों के साथ साथ रामचरित के काव्यों पर भी रचना हुई । कालिदास ने शिवचरित और रामचरित पर दोनों में काव्य लिख कर लोक की द्विधा रुचि का संकेत किया है ।

कालिदास के बाद संस्कृत में रामचरित को लेकर कई महाकाव्यों की रचना हुई उनके नाम ये हैं -

१- भट्टि काव्य अथवा रावण बध, समय-५००-६५० ई० के बीच, इसमें २२ सर्ग हैं । वाल्मीकि रामायण के पहले छः काण्डों की कथाओं का वर्णन इसमें है ।

२- जानकी हरण - ८०० ई० के लगभग । इसके प्रणेता कुमारदास हैं । इसमें कुल २५ सर्ग हैं । यह कालिदास के "रघुवंश" के टक्कर की रचना है । वाल्मीकि रामायण के पहले छः काण्ड की कथा का वर्णन है ।

३- रामचरित- नवीं शताब्दी ई०पू० । इसके लेखक अभिनंद हैं । ये गौंड राज्य के पाल वंश के राजा के आश्रित थे । इस कथा का आरम्भ किष्किंधा कांड की कथा से होता है और अंत लंका काण्ड की कथा से । इसमें कुल ३६ सर्ग हैं ।

४- और ५ रामायण मंजरी और दशावतार चरित - इसके लेखक कश्मीर निवासी महाकवि क्षेमेन्द्र हैं । क्षेमेन्द्र का समय ११वीं शती ईसवी है । उन्होंने "वाल्मीकि रामायण" का ५, ३८६ श्लोकों में संक्षेप कर "रामायण मंजरी" नाम से एक नया ग्रंथ लिखा । इनका दूसरा ग्रंथ "दशावतार चरित" है । इस ग्रंथ में २९४ छंदों में रामकथा का वर्णन है और उस कथा को कवि अपने मौलिक ढंग से वर्णन करता है । कथा का आरम्भ राम के पक्ष में न होकर रावण के पक्ष से होता है । रावण के अत्याचार और सीताहरण के साथ राम का प्रसंग कवि उपस्थित करता है ।

६- "उदार-राघव"-१४वीं शती ई० - इसके लेखक साकल्यमल्ल हैं यह केवल ९ सर्ग तक ही प्राप्त है । इसमें शूर्पणखा के विरूपीकरण तक की ही कथा आयी है ।

तुलसीदास के पूर्व संस्कृत में लिखे ये ही महत्वपूर्ण काव्य हैं । इनके अतिरिक्त १५वीं शताब्दी में वामन भट्टबाण का लिखा हुआ "रघुनाथ चरित" तथा तुलसीदास के समकालीन चक्र कवि का लिखा हुआ "जानकी परिणय" और अद्वैत कवि का लिखा हुआ "रामलिंगा मृत" भी उल्लेखनीय हैं ।

भास के बाद रामकथा पर कई उत्कृष्ट नाटकों की रचना हुई जिनमें रामकथा की कथावस्तु को कवियों ने बहुत कुछ नाटक के अनुरूप तोड़ा मरोड़ा है । रामकथा के सबसे प्रसिद्ध नाटककार भवभूति ८वीं शती ई०के पूर्वार्ध में हुए । ये कन्नौज दरबार के आश्रित थे । उन्होंने दो नाटक लिखे -"महा वीर चरित" और "उत्तर रामचरित" । दोनों में सात - सात अंक हैं । "महावीर चरित" में राम सीता के विवाह से लेकर रावण वध और रामाभि-षेक तक की कथा का वर्णन है । उत्तर रामचरित में लोकापवाद के कारण सीता का त्याग और वाल्मीकि आश्रम में उनका पोषण तथा वाल्मीकि द्वारा सीता सम्बन्धी नाटक का अभिनय । उसमें रामा॰॰॰ के प्रसंग में लवकुश से अपनी हारी हुई सेना का राम द्वारा वाल्मीकि आश्रम में जाकर घटनास्थित का परिचय पाने का प्रसंग है । इसमें सीता का कष्ट-अवस्था का अभिनय देखकर राम मूर्छित होते हैं और वाल्मीकि द्वारा जीवित सीता को पाकर अपने को धन्य मानते हैं ।

८वीं शती ईस्वी में अनंग हर्ष मायुराज ने "उदात्त राघव नाटक"की रचना की । इसमें ६ अंक हैं । राम के वनवास से लेकर रावण वध तक की कथा का वर्णन है । "उदात्त राघव" के बाद रामकथा में दिङ्नाग का "कुंदमाला" नाटक और मुरारि कवि का "अनर्घराघव" नाटक प्रसिद्ध रचनाएं हैं । "कुंदमाला" की कथा वही है जो भवभूति के उत्तर रामचरित की कथावस्तु है । प्रसन्न राघव की कथावस्तु "महावीर-चरित" की भांति है ।

रामकथा पर १० अंकों का बाल रामायण नाटक की रचना कवि और आचार्य राजशेखर ने किया । राजशेखर का भी समय ९वीं शती ई० है और ये कन्नौज के राजदरबार में थे । नाटक की कथा सीता स्वयंबर से आरम्भ होती है और रावण विजय पर समाप्त होती है ।

"महा नाटक" अथवा "हनुमन्नाटक" की रचना १०वीं शताब्दी ईस्वी में हुई और १४वीं ईस्वी शती तक इसमें क्षेपक मिलाए जाते रहे । इसके दो अलग अलग सम्पादक अथवा पाठ-कर्ता हैं - दामोदर मिश्र और मधुसूदन । दामोदर मिश्र के "हनुमन्नाटक" में १४ अंक हैं । कथा का आरंभ सीता स्वयंबर से लेकर रावण बध पर समाप्त होता है । इस नाटक में राम और सीता के शृंगार का भी वर्णन है । कथा में बहुत परिवर्तन हुआ है ।

दक्षिण भारत के शक्ति भद्र ने "आश्चर्य चूणामणि" नाटक लिखा। इसका समय निश्चित नहीं । इसमें सात अंक हैं । कथा का आरम्भ शूर्पणखा के प्रसंग से होता है और अंत सीता की अग्नि परीक्षा से ।

प्राकृत में रामकथा सम्बन्धी प्रसिद्ध रचना "रावण वहो" अथवा "सेतुबंध" है । इसकी रचना ६ठीं ईस्वी के उत्तरार्ध में हुई । यह महाराष्ट्री प्राकृत में लिखी गयी है । इसका लेखक राजा प्रवरसेन कहा जाता है । यह एक उत्कृष्ट काव्य है । इसके वर्णन का अनुकरण संस्कृत के अनेक रामकथा काव्यकारों ने ~~की~~ किया है ।

अपभ्रंश में रामकथा सम्बन्धी प्रसिद्ध रचना स्वयंभू कवि का "पउचरिउ" है ।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में उक्त रचनाएं प्रमाणिक हैं और ललित साहित्य की सीमा में हैं । इनके अतिरिक्त पुराण शैली, कथा शैली, धार्मिक विधा, संहिता शैली में अनेक रामकथा सम्बन्धी रचनाएं तुलसीदास के पूर्व हुई थीं जिनमें महाभारत, स्कन्द पुराण के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण, योगवशिष्ठ, आनंद रामायण, अद्भुत रामायण, आदि अनेक विस्तृत रचनाएं हैं । तुलसीदास ने "नाना पुराण निगमागम" कह कर इस ओर संकेत किया है, लेकिन वे काव्य की सीमा में नहीं हैं,न

इनके समय और रचयिता का कोई समय है । तुलसीदास ने राम की भक्ति का जो निरूपण अपने काव्य में किया है उनकी चर्चा संस्कृत के इन ललित साहित्य की रचनाओं में नहीं है उसका बीज पौराणिक एवं इतर रामायणों से उन्होंने लिया है और अवतारवाद की प्रतिष्ठा की है । रामचरित मानस की कथावस्तु में अनेक प्रसंगों के लिए तुलसीदास, संस्कृत की उक्त रचनाओं के आभारी हैं ।

इस प्रकार राम ने जीवन में एक व्यापकता ग्रहण की । आरम्भ में सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक परिवेश में बंधी कहानी क्रमशः भक्ति भावना से अनुप्रेरित होकर अवतारवाद में परिणत हो गई जिसका पूर्ण परिपाक तुलसीदास के "रामचरित मानस" में हुआ । और उसके बाद धीरे धीरे यह कथा दार्शनिक सिद्धान्तों का आधार बनती गई जिसके फलस्वरूप रामानंदी एवं रसिक संप्रदायों की उपासना का आविर्भाव हुआ ।

तुलसीदास के पहले हिन्दी साहित्य में राम की कथा मौलिक और आंशिक रूप में कुछ कवियों ने लिखी है । अपभ्रंश के स्वयंभू कवि के "पउमचरिउ" का उल्लेख ऊपर किया गया है । १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ईश्वरदास ने अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु का "भरत मिलाप" नाम से दोहा चौपाइयों में वर्णन किया है । इसमें भरत की दास्य भक्ति का आदर्श चित्रित किया गया है । "राम जन्म" तथा "अंगद पैज"[१] भी उनकी रचनाएं हैं । सूरसागर में भी रामकथा पर पदों की रचना सूरदास ने की है । काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित और श्री नंददुलारे बाजपेयी ~~के संपादकत्व में~~ द्वारा संपादित सूरसागर के प्रथम खण्ड के नवम-स्कन्ध में रामकथा पर १६७ पदों का संग्रह है ।

सम्भवतः और रचनाएं भी तुलसीदास के पूर्ववर्ती कवियों ने रामचरित पर की होंगी लेकिन तुलसीदास के "रामचरित मानस" के आविर्भाव ने उन सब रचनाओं को जहां का तहां रहने दिया । "रामचरित मानस" के सम्मुख वे लोक में प्रसार न पा सकीं । आदि कवि बाल्मीकि के रामायण काल के बाद दूसरी बार राम की कहानी को विराट् प्राण-

---

१- नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६१, सं० २०१३, अंक १ ।

प्रतिष्ठा लोक जीवन में तुलसी की वाणी के माध्यम से "रामचरित मानस" में ही हुई । तुलसीदास की इस कृति का जितना प्रचार-प्रसार और आदर अनुगमन भारतीय लोक जीवन में हुआ, उतना अब तक "वाल्मीकि रामायण" "श्रीमद्भागवत", "भगवद्गीता" और "दुर्गा सप्तशती" का ही हुआ था । "रामचरितमानस" दूसरे शब्दों में राम का वाणी अवतार है । तुलसीदास के युग में भारतीय समाज और लोक जीवन जितना [illegible] था उसकी तुलना में "रामचरित मानस" का पारायण उनके लिए साक्षात् राम के रूप में रक्षक बन गया । इस विराट् काव्य ने भारतीय लोक जीवन को अपने धर्म से, अपने राष्ट्र से, अपने आदर्श और अपनी मूलभूत सत्ताओं से डिगने न दिया । आधार यही "राम चरित मानस" था ।

- - -

## तीसरा अध्याय

## तुलसीदास के अनन्तर का राम - काव्य का मध्ययुग

### (१) दास्य भक्ति-प्रमुख

रामचरित मानस की लोकप्रियता ने राम साहित्य की रचना का आन्दोलन सा खड़ा कर दिया। लेकिन इस लोकप्रियता और इस आन्दोलन के आविर्भाव में रामचरित मानस की रचना के अनन्तर १ शताब्दी का समय लगा। "मानस" की रचना का आरम्भ संवत् १६३१ वि० में हुआ। और संभवतः १८वीं विक्रम शताब्दी के उतरार्द्ध से इस आन्दोलन ने जोर पकड़ा। आन्दोलन में जैसा कि होता है, प्रचार-प्रसार की ओर जितना ध्यान रहता है उतना कर्तव्य और कर्ता को महत्व नहीं दिया जाता। अतः इस अवधि के बाद ऐसी रचनाएं रामकथा के सम्बन्ध में हुई हैं जिनमें कर्ताओं के नाम अज्ञात हैं इसके पूर्व और तुलसीदास के ठीक बाद कवियों ने जिनमें प्रसिद्ध आचार्य केशवदास भी हैं रामकथा को लेकर प्रांजल साहित्य लिखने का स्तुत्य प्रयास किया है। किन्तु एक शताब्दी के अनन्तर अज्ञातनामा रचनाकारों ने राम साहित्य के आन्दोलन का रूप खड़ा किया। इस आन्दोलन के मुख्य दो रूप थे।

१- रामचरित मानस के बीच-बीच में रामकथा सम्बन्धी ऐसे प्रसंगों को, जो मानस में नहीं हैं, दोहा चौपाई में लिखकर क्षेपक के रूप में मिलाना। अथवा बिना क्षेपक का उल्लेख किये ही "रामचरितमानस" में ऐसी रचनाओं को सम्मिलित कर देना। "रामचरित मानस" का यह परिवृंहण बड़ी सतर्कता के साथ हुआ है।

संभवतः आन्दोलन के इस रूप ने पहले जन्म लिया। उसके बाद आन्दोलन का दूसरा रूप शुरू हुआ।

२- तुलसीदास के नाम पर अथवा अज्ञात रूप में ही रचनाएं लिखकर उनकी प्रसिद्धि करना और इस प्रकार भगवद् भक्ति का पुण्य अर्जित करना।

दोनों आन्दोलनों का आन्तरिक रूप एक ही है तुलसीदास के नाम पर रचना और उसकी प्रसिद्धि का प्रयास करना। और रामभक्ति के पुण्य का भागी बनना। रामभक्ति के पुण्य के अर्जन-अर्थ ही कोई रचनाकार अपना नाम

रचना के साथ प्रकट नहीं करता, राम कथा के जिन प्रसंगों की रचना दोहा-चौपाई में हुई उन्हें तो सीधे "रामचरितमानस" में मिला दिया गया, और ऐसी रचनाएं जो किसी विशेष कथा-प्रसंग पर नहीं की गयीं, सामान्यतः राम का गुणगान थीं । उनमें अलग-अलग छंदों का प्रयोग किया गया और ऐसी रचनाएं तुलसीदास के नाम पर प्रसिद्ध की गयीं । इन सभी रचनाओं में जो प्रकाशित की गयीं वही आज हमारे सामने हैं, अनेक रचनाएं जो अप्रकाशित ही रह गयीं, उनसे हम अपरिचित हैं । अनेक खोज विवरणों में उल्लिखित हैं, किन्तु उनमें कर्ता का नाम अज्ञात है । जो खोज रिपोर्टों में उल्लिखित नहीं हुई हैं धीरे दीमकों की भेंट हो जायंगी, वे केवल आन्दोलन के लिए ही कृतकर्म होकर समाप्त हो गयीं, ऐसा हमें समझ लेना चाहिए ।

## तुलसीदास के नाम पर रचित ग्रंथ

"रामचरितमानस" के क्षेपकों की तुलना में ऐसी रचनाओं की संख्या कम है, सुविधा की दृष्टि से पहले इन्हीं पर विचार किया जाता है । तुलसीदास के नाम पर निम्नलिखित रचनाएं प्रसिद्ध तथा प्रकाशित हैं--

१- जानकी विजय तथा स्वर्गारोहण--वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बंबई से प्रकाशित ।

२- मुक्तावली रामायण-- मुरादाबाद से प्रकाशित ।

३- रामायण छन्दावली -- नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित ।

४- सगुन प्रबन्ध --

५- कुंडलिया रामायण -- नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित ।

६- छप्पय रामायण -- इस पुस्तक के कई संस्करण उपलब्ध हैं -- सरस्वती प्रकाशन बनारस से प्रकाशित(नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित) + सौधि पुस्तकालय गोरखपुर से प्रकाशित

जानकी विजय- में लंका विजय के बाद श्वेत द्वीप निवासी एक दूसरे हजार मुख वाले रावण के वध की तथा राम चन्द्र के स्वर्गारोहण की कथा है । जिस प्रकार दुर्गा सप्तशती में देवी द्वारा असुरों का वध किया गया है, उसी कथा का

अनुकरण प्रस्तुत काव्य में है । शाक्तों के क्षेत्र में रामकथा और रामचरित के प्रवेश का यह प्रयास रामभक्ति के आन्दोलन का ठेठ रूप है । इस पुस्तक की भाषा इसे बिल्कुल ही तुलसीदास से अलग करती है । नीचे के उदाहरण से ग्रंथ के उद्देश्य और शैली का पता चलेगा ---

कह तब सिया जोर युगपानी ।
नाथ मुनिन जो बिनय बखानी ।।
किये विरोधन खल रजनीशा ।
हना प्रबल रावण दश शीशा ।।
भाखल रहित सकल संसारा ।
मिट्यो महा महिभार अपारा ।।
अबहि न प्रभु कछु कारज कीन्हा ।
बधि दश शीश कौन यश लीन्हा ।।
सहस शीश कर दूसर रावण ।
प्रबल महाभट भूरि भयावन ।।
कीन्ह ताहि समर संहारा ।
तौ प्रभु कीन हरा महि भारा[१]।।

राम के प्रति सीता की यह उक्ति है । उस रावण का बध करने के लिए सीता के साथ राम सेना सजा कर श्वेत द्वीप पहुंचते हैं । घनघोर युद्ध प्रारंभ होता है पर राम-विजय नहीं पाते और सीता की ओर कातर होकर देखते हैं -

भयउ समर संकेत अति बलहु न कछू बिसाय ।
जनक सुता दिशि देखि प्रभु कहत भये रघुराय ।।
परम शक्ति अतुलित बल माया ।
तव प्रभाव निगमागम गाया ।।

---

१- जानकी विजय(खेमराज श्रीकृष्ण दास बंबई से प्रकाशित) पृ० १०, सं० १९८८ ।

सहजै तुम निज भृकुटि विलासा ।
त्रिभुवन साजि पोषि पुनि नाशा ।।
धरि यह सौम्य स्वरूप सुहवा ।।
यहि विधि अब यह खल बल मारा ।
कीजै अब याको संहारा[१] ।।

अंत में सीता की शक्ति सेना प्रकट होती है, जैसा कि दुर्गा सप्तशती में रक्तबीज के युद्ध में दुर्गा के अनेक रूप देवी की शक्ति के रूप में आर्विभूत हुए थे । रावण मारा जाता है और सीता की स्तुति होती है । दोहा, चौपाई, हरगीतिका, छंद का प्रयोग हुआ है । प्रस्तुत कथानक में सीधे-सीधे रामकथा को शाक्त मान्यता की सीमा में घसीटने का प्रयास है । इसी के साथ स्वर्गारोहण काव्य है जिसकी कथा वाल्मीकि रामायण उत्तर-काण्ड से ली गयी है । राम के स्वर्ग प्रयाण की कथा"जानकी विजय" शैली में ही कहीं गयी है । दोनों ग्रंथों के अंत में तुलसीदास का नाम आता है ----

तुलसिदास सीता-विजय, पढ़ै जो कोइ चितलाय ।
पावहिं परम विश्राम सिय रघुबीर कीरति अति नई ।
यह जानि तुलसीदास आश विहाय मन संशय गई ।

कृतियों के अन्त में तुलसीदास का नाम देने का अभिप्राय इनके प्रचार की लालसा ही है ।

<u>मुक्तावली रामायण</u>-- किसी संत संप्रदाय वाले की रचना है । इसमें योग की चर्चा है और निर्गुण ब्रह्म की महिमा गायी है । निर्गुण ब्रह्म को ही राम के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है ।

<u>रामायण छंदावली</u>- इसमें सात काण्ड के क्रम से संक्षेप में राम की कथा गायी गयी है । इसमें दोहा, चामर, सुंदरी, हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग हुआ है । इसमें कहीं कहीं कवि ने तुलसीदास की पदावली रखकर तुलसीदास

---

१- जानकी विजय(क्षेमराज श्रीकृष्णदास बंबई से प्रकाशित)पृ० २६-२७ सं० १९८८ ।

के कृतित्व से अभिन्न करने का प्रयत्न किया है । लेकिन ऐसे कुछ प्रमाण इस ग्रंथ से मिल जाते हैं जिससे हम इसे तुलसीदास की कृति न मानने के लिए ही बाध्य होते हैं । तुलसीदास ने परशुराम और लक्ष्मण का संवाद जनकपुर की धनुषयज्ञ की सभा में ही करवाया है । यह बहुत ही प्रसिद्ध बात है । वाल्मीकि रामायण में इसके विपरीत परशुराम राम के विवाह कर चुकने के बाद सीता आदि के साथ अयोध्या लौटते समय रास्ते में मिलते हैं । इस छंदावली में भी वाल्मीकि रामायण के भांति ही परशुराम के आगमन का वर्णन है । कवि कहता है:-

ब्याहि चले नृप चारि सहोदर,
मारग बीच मिले फरसाधर ।
चापहिं सौंपि भये तपसीबर,
राउ बिवाहि आइ अपने घर ।

तुलसीदास इस प्रकार छंदावली में "रामचरित मानस" के विपरीत कथा प्रसंग का वर्णन न करते । "छंदावली" में एक और उद्धरण है--

दसकंधर घटकर्ण अघमार धर दुख होइ ।
गयी गगन जो देह धरि कहि सुरपति सो खोइ ।

मुझे "रामचरित मानस" तथा तुलसीदास की दूसरी कृतियों में कुंभकर्ण के लिए "घटकर्ण" का प्रयोग नहीं मिला है । "घटकर्ण" शब्द का यह प्रयोग रींवां नरेश बिश्वनाथ सिंह के "आनंद रघुनंदन नाटक" में है । यह छंदावली किसी कवि के द्वारा आनंद रघुनंदन नाटक के समकाल या बाद में लिखी गयी । ऐसा प्रतीत होता है ।

सगुन प्रबन्ध: इसमें सात सर्ग और ४९ सप्तकों में दोहों में राम की कथा कहीं गयी है । इन दोहों द्वारा प्रश्न की रीति से कार्य की सिद्धि आदि का सगुन विचार करने की पद्धति का विवरण भी है । इसे राम कथा के आधार पर ज्योतिष तथा तांत्रिक विषय की रचना माना जा सकता है । इसकी रचना की मूल प्रेरणा तुलसीदास के रामशलाका प्रश्न से ली गयी है ।

कुंडलिया रामायण और छप्पय रामायण बहुत कुछ तुलसीदास की कृतियों के साथ घुल मिल गये हैं । कई इतिहास लेखकों ने तुलसीदास की प्रसिद्ध १२ कृतियों के साथ इनका भी उल्लेख किया है । तुलसीदास की कृतियों के प्रसिद्ध टीकाकार

बैजनाथ कुर्मी प्रसिद्ध रामभक्त और रसिक संप्रदाय के साधक थे । ये बाराबंकी के रहने वाले थे और संवत् १९३५ वि० में विद्यमान थे । तुलसीदास की कृति के रूप में उन्होंने छप्पय रामायण की टीका भी की है जो नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित है, रचना इस ढंग की है कि तुलसीदास के विचारों और भावों से मेल खा जाती है । फिर भी तुलसीदास के "कवितावली" में आये छप्पयों तथा "छप्पय रामायण" के छप्पयों की शैली में पर्याप्त भेद है । इसकी अन्य प्रतियों में ३१ छप्पय हैं किन्तु बैजनाथ कुरमी की टीका की प्रति में ४६ छप्पय हैं । प्रत्येक छप्पय के अंत में यह टेर है -

"कृपा करहु श्री रामचंद्र मम हरहु शोक सन्तापना" ।

इसका दूसरा नाम "तुलसी प्रकार रामायण" भी है । इसका आदि का छंद है --

श्री गुरु चरण सरोज बंदि गणनाथ मनावौं
जेहि प्रकार सुभ होय राम सोइ बिनय सुनावौं
आरत मज्जन रामनाथ मुनि साधन गाई ।
सुमिरत गाढे नाथ होत सब ठौर सहाई ।
श्रीपति रघुपति अवधपति करहु नाम सो जापना ।
कृपा करहु श्री रामचन्द्र मम हरहु शोक संतापना[१] ।

अंतिम छंद है -

रामचरित अवगाह सिंधु कोइ पार न पावा ।
शेष शारदा निगम नेति कहि निज मुख गावा ।
शंभु उमासन भरद्वाज सौं, याज्ञवल्क्य मुनि ।
काग भुशुंडि सौं गरुड़ मानसिक कहि तुलसीगुनि ।
कहै सुनै रति राम पद एक राज मति आपना ।
कृपा करहु श्री रामचन्द्र मम हरहु शोक सन्तापना[२] ।

---

१- छप्पय रामायण-(नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित)छंद १ ।
२- वही, छं० ३१ ।

इस छंद की दो पंक्तियां--

शंभु उमासन भरद्वाज को याज्ञवल्क्य मुनि ।
कागभुशुण्डि सों गरूड़ मानसिक कहि तुलसी गुनि

सीधे रामचरित मानस की ओर संकेत करती हैं ।"मानसिक कहि तुलसी गुनि" पद में रचनाकार तुलसी के नाम पर ही इसकी प्रसिद्धि करता है। रामचरितमानस के आधार पर ही छप्पयों में रामकथा की रूपरेखा जैसी दी हुई है, मुख्य घटनाओं का निर्देश करता हुआ रचनाकार आगे बढ़ता गया है। सुन्दर काण्ड की कथा का यह परिचय देखिए---

बरणि रामगुण करि प्रणाम बोले हनुमाना ।
हौं अनुचर तव नाथ मातु मैं मुंदरि आना ।
निकट बोलि सुनि अमिय बचन पूछी कुसलाता ।
कहेउ कुसल दोउ बंधु शोच कीजै जनु माता ।
कपि मुख राम संदेश सुनि कहे सीता बिरहायना,
कृपा करहु श्री रामचंद्र मम हरहु शोक सन्तापना[१]।

सियप्रबोधि लै तब निदेस सु समीर कुमारा,
गये बाग फल खाय तोरि तरु रक्षकमारा ।
सुवन बधे सुनि बिसहुबाहु घननाद पठाये ।
लंकदहन हित कोश तासु कर आपु बंधाये ।
दनुज बांधि पटकाय दियो खून देखि को शापना ।
कृपा करहु श्री रामचंद्र मम हरहु शोक सन्तापना[२]।

इन छप्पयों में हलधर कवि के लिखे सुदामा चरित के छप्पयों की शैली का अनुकरण जैसा है । वह कृष्ण काव्य था, यह राम काव्य है । हलधर के सुदामा चरित की रचना संभवतः संवत् १८०० के पास हुई उसके बाद

---

१- छप्पय रामायण(न० किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित )छंद १३ ।
२- वही, छंद १४ ।

ही इस छप्पय रामायण की रचना होनी चाहिए । "सुदामा चरित" के इस छप्पय से "छप्पय रामायण" के छप्पयों को मिलाना चाहिए--

हो नवीन नीरद शरीर । शिर का कपच्छ पर
मोर पच्छ शोभा स्मीत मुरली विचित्र कर ।
दई दीन को महाराज जो देस देस को
भक्ति सुधा को हमहिं प्यास नहिं आस औस को
अब साचेउ पहिचानेउं महाराज औढर ढरन
भजु रे मूढ मन हरषरा कृष्ण चरन संकट हरन ।३६१।

## अज्ञात कवियों की रचनाएं

रामकथा के अंगों पर अज्ञात कवियों की कुछ रचनाएं खोज विवरणों में मिली हैं, जो प्रायः किसी कथा प्रसंग पर न होकर या तो वर्णनात्मक है या सिद्धि साधना से संबंध रखती हैं । पुस्तकों के नाम ये हैं -

(१) राम जन्म बधाई
(२) राम जन्मोत्सव
)३) राम सवारी रहस्य
(४) हनुमान जी का कवच[१]

उनके नाम से ही उनका विषय स्पष्ट है । पहली तीनों पुस्तकें रामजन्म तथा उनकी सवारी के वर्णन और मंगल गायन है । चौथी पुस्तक तांत्रिक साधना से सम्बन्ध रखती है ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में जो पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं उनमें भी अज्ञात कवियों की रामसाहित्य की रचनाएं हैं । "पाण्डुलिपियां"

---

१- खोज विवरणों का १४वां त्रैवार्षिक विवरण(काशी नागरी प्रचारिणी सभा) पृ० ६६७-६६९ ।

नाम से उनकी सूची प्रकाशित हो गयी है । इनमें से दो पुस्तकें रामसाहित्य की रचना हैं जिनके लेखक अज्ञात हैं --

1. रामचरित्र[1]
2. रामरत्नावली[2]

1. रामचरित्र

इनमें पहली पुस्तक "रामचरित्र" किसी जैन कवि की रचना है । इसकी रचना (ढाल) पदों में हुई है । कुल पुस्तक पत्राकार है और १३७ पन्ने हैं । भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है । पुस्तक के आरम्भ में ही "श्री जिनाय नमः" लिखा है जैन धर्म में रामकथा की मान्यता रही है उसी के अनुसार राम को तीर्थंकर मानकर इस काव्य की रचना चार अधिकारों में हुई है । ग्रंथ के आरम्भ और अंत में राम और उनके पार्षदों की प्रशंसा हुई है । ग्रंथकार किसी केशराज मुनि की आज्ञा से इस काव्य की रचना करता है । केशराज मुनि के समय का पता नहीं है । न तो ग्रंथ में कहीं रचनाकाल का उल्लेख है । वैसे यह काव्य महत्वपूर्ण है । अन्यत्र इतिहास ग्रंथों में इसकी चर्चा भी नहीं आती । समय के निर्धारण के अभाव में यह निश्चय न होने पर कि यह काव्य तुलसीदास की परवर्ती रचना है या पूर्ववर्ती इसे इस शोध निबंध की आलोचना का विषय नहीं बनाया जा रहा है ।

2. राम रत्नावली

इस ग्रंथ का प्रारम्भ इस दोहे से होता है -

गिरिजा पति हस हस कहै नरतित दै दै ताल ।
पावै परमानंद मम नाम रकार मकार ।।

तुलसीदास की "राम सतसई" की भांति राम को संबोधित करके भक्ति, दीनता एवं वैराग्य की वाणी दोहों में व्यक्त की गयी है । ग्रंथ बीच में खण्डित मालूम होता है । दोहों का जो क्रम दिया गया है उसके

---

१- पाण्डुलिपियां- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ४१४ ।
२- वही, पृ० ४१६ ।

अनुसार कुल १०० दोहे होने चाहिए लेकिन दोहों की यथार्थ संख्या जो ग्रंथ में है वह ४० है । १०० की संख्या देने के बाद रामचरित मानस बालकाण्ड का छंद "भये प्रकट कृपाला दीन दयाला----------" उद्धृत किया गया है और उसके नीचे यह दोहा है -

सुनो राम स्वामी बचन चल न चातुरी मोर ।
प्रभु अजहूं मैं पातकी अंतकाल गति तोर ।।

मूल ग्रंथ में भक्ति और दीनता की वाणी देखिए --

हंसनि के संपति नहीं, नहीं वनज व्यापार ।
अन्नवे है मोती चुनें, देन हार करतार ।।

"राम रत्नावली" के नाम से इन दोहों की रचना किसी अज्ञात कवि ने की है ।

## रामचरित मानस में क्षेपकों की रचना

अज्ञात लेखकों द्वारा राम साहित्य की सबसे बड़ी रचना "रामचरित मानस" क्षेपकों की है । भिन्न भिन्न संस्करणों के क्षेपकों के अलग-अलग लेखक हैं, उनके नाम का पता नहीं हैं । राम कथा को सर्वांगपूर्ण रखने के लिए उन्होंने क्षेपकों की रचना की है और अपने विचार से "रामचरित-मानस" की उपयोगिता में वृद्धि की है, क्योंकि उनकी दृष्टि में"रामचरित मानस" भगवान के अवतार की एक कथा है । कथा की कोई कड़ी कहीं अधूरी न रहे, उन्हें इसलिए क्षेपकों की रचना करनी पड़ी है । उन्हें तुलसीदास के कथा-शिल्प और काव्य -स्वरूप की कसौटी का कोई भान नहीं था ।

बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक क्षेपकों की संख्या कम अधिक होती रही है, किन्तु लवकुश काण्ड तो पूरा का पूरा क्षेपक ही है, सभी ऐसे संस्करणों में समान रूप से दिया गया है । इस लवकुश काण्ड की कथा वाल्मीकि रामायण और पद्मपुराण दोनों से ली गयी है । प्रायः सभी क्षेपक वाल्मीकि रामायण, पद्मपुराण, अध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण तथा शिव पुराण की कथाओं के आधार पर हैं ।

सबसे अधिक क्षेपक खेमराज श्री कृष्णदास वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई से प्रकाशित रामचरितमानस(रामायण) के संस्करण में हैं जिसके टीकाकार तथा सम्पादक पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र हैं ।

लवकुश काण्ड का आरम्भ करते समय रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में प्रस्तुत गरुड़ - भुशुण्डि संवाद से ही पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र उसका सम्बन्ध जोड़ते हैं और तुलसीदास की कथावस्तु में उसे मिलाने का प्रयत्न करते हैं:-

सुनि भुशुण्डि के बचन मृदु, देखि रामपद नेह ।
बोलेउ प्रेम-सहित गिरा, गरुड़ विगत सन्देह ।

+ + +

अब प्रभु मोहि कहहु समुझाई,
जानि पिता मैं करउं ढिठाई ।
यह इतिहास पुनीत कृपाला ।
जिमि मख कीन्ह राम महिपाला ।।

लवकुश काण्ड का नाम कहीं केवल "लवकुश काण्ड" कहीं "रामाश्वमेध लवकुश-काण्ड" और कहीं केवल "रामाश्वमेध" है ।

बालकाण्ड और लंकाकाण्ड के क्षेपकों का विस्तार प्रायः और काण्डों से अधिक है । बालकांड में प्रासंगिक और अवान्तर कथाएं पूरी की पूरी क्षेपक में कही जाती हैं और लंकाकाण्ड में रावण के परिवार के सभी प्रमुख वीरों का युद्ध दिखाना अनिवार्य समझकर अहिरावण तथा नारान्तक का युद्ध एवं मेघनाद की स्त्री सुलोचना का सती प्रसंग क्षेपकों का प्रमुख विषय है ।

पं० ज्वाला प्रसाद द्वारा सटीक संपादित बम्बई का रामचरितमानस (रामायण) का संस्करण क्षेपकों के कारण कलेवर में काफी विशाल हो गया है । उसके क्षेपकों की सूची नीचे दी जा रही है । प्रायः क्षेपकों की सबसे बड़ी संख्या इसी संस्करण में है, अन्य संस्करणों के क्षेपक इन्हीं क्षेपकों के अन्तर्भूत हो जाते हैं अतः क्षेपकों की जानकारी और उनकी सीमा समझने के लिए यह सूची पर्याप्त होगी:-

## बालकाण्ड

१- रावण का श्वेतद्वीप में मानमर्दन होना ।

२- बलिराजा, भगवान वामन और बलि से रावण की पराजय ।

३- सहस्रबाहु से रावण का हारना ।

४- नलकूबर का रावण का शाप देना ।

५- ऋषियों का रावण से दण्ड लेना । उनका शाप देना और सीता की उत्पत्ति ।

६- धनुष-चरित्र(मिथिलेश को शिव से धनुष की प्राप्ति) ।

७- राजा दिलीप से रावण का बैर होना ।

८- कौशल्या की कथा ।

९- चारों भ्राताओं की कुंडली ।

१०- बाल राम से मदारी के वानर रूप में हनुमान का मिलना ।

११- बाल-लीला(वणिक, बधिक, शूकर, सिंह, मगर सम्बन्धी लीलाएं) ।

१२- गंगोत्पत्ति वर्णन ।

१३- रावण - बाणासुर का आगमन।

१४- दशरथ जी का पत्री-बांचना ।

१५- कन्यादान का महा संकल्प ।

१६- राम कलेवा ।

## अयोध्या काण्ड

१७- राम सीता के विविध विलास ।

१८- विश्वावसु का गान करना, नारद आगमन और ब्रह्मा जी की विनती ।

१९- राम रक्षा सम्बन्धी प्रार्थना ।

२०- वल्कल पहनना ।

२१- श्रवणकुमार की कथा ।

२२- वशिष्ठ द्वारा १३ राजाओं का इतिहास ।

## अरण्य काण्ड

२३- ब्रह्मा जी का इंद्र द्वारा सीता को पायस भोजन कराना ।

२४- जानकी का पूर्व जन्म ।

## किष्किन्धा काण्ड

२५- बालि और सुग्रीव के जन्म की कथा ।

२६- बालि का शाप चरित्र ।

२७- साल वृक्ष की उत्पत्ति ।

२८- सुग्रीव द्वारा हनुमान को वानरों को बुलाने के लिए भेजना ।

२९- भूगोल वर्णन ।

३०- वानरों का अपनी अपनी उड़ान शक्ति का वर्णन करना ।

## सुन्दर काण्ड

३१- मैनाक और हनुमान का संवाद ।

३२- लंकापुरी की शोभा का वर्णन ।

३३- हनुमान का जानकी की खोज में चिन्तित होना ।

३४- हनुमान का लंका दहन करना ।

३५- जानकी का विलाप ।

३६- जानकी की व्यवस्था का वर्णन ।

३७- रावण की सभा में विचार ।

~~३८~~

## लंका काण्ड

३८- गोवर्धन की कथा ।

३९- शुक-सारण का रावण के आगे वानरों की संख्या का वर्णन करना ।

४०- रावण द्वारा जानकी को माया रचित शिर दिखाना ।

४१- लक्ष्मण का मूर्छा से उठना, धूम्राक्ष आदि का मरण ।

४२- मेघनाद का माया की सीता का वध करना ।

४३- मेघनाद की शक्ति और सुलोचना मिलने की कथा ।

४४- सुलोचना के सती होने की कथा ।

४५- अहिरावण की कथा ।

४६- अहिरावण के जन्म की कथा ।

४७- अहिरावण की राम-लक्ष्मण को हर ले जाना ।

४८- अहिरावण वध ।

४९- नारान्तक की कथा, उसका युद्ध और वध ।

५०- नारान्तक की स्त्री बिन्दुमती का सती होना ।

उत्तर काण्ड

५१- विभीषण का रत्नमाला लेकर जानकी के गले में डालना ।

लवकुश काण्ड

५२- (रामाश्वमेध कथा) ।

अन्य प्रक्षिप्त संस्करणों में क्षेपकों की संख्या प्रायः इसकी आधी है । पं० ज्वाला प्रसाद जी अपने संपादित संस्करण को सर्वांग पूर्ण करने के लिये नये नये क्षेपकों की खोज की है ।

लवकुश कांड प्रायः उत्तर काण्ड के बाद ही रखा गया है । पर किसी किसी संस्करण में उत्तरकाण्ड के बीच ही उसे भी क्षेपक रूप में डाल दिया गया है, इस तरह से रखने में रचनाकार का दृष्टिकोण तुलसीदास के "रामचरित मानस" की सीमा का उल्लंघन न करने का है, गुल्लू प्रसाद केदारनाथ बुकसेलर, कचौड़ी गली, बनारस के यहां से प्रकाशित "राम चरित मानस"(रामायण) में लवकुश काण्ड को अलग न मानकर उत्तर काण्ड के भीतर ही क्षेपक के रूप में डाल दिया है । लवकुश काण्ड और रामाश्वमेध की कथा समाप्त होने के बाद तक तुलसीदास के गरूड़ और भुशुण्डि का संवाद शुरू होता है । लवकुश काण्ड के क्षेपक का भी मनमाना विस्तार रचनाकारों ने किया है । कोई केवल रामाश्वमेध को ही लेता है, कोई सीता परित्याग, लवकुश - जन्म, लवकुश का जनेऊ, शास्त्रविद्या की शिक्षा आदि के साथ सांगोपांग कथा की पद्धति दुहराता है ।

इन यथाकथित लेखकों द्वारा लिखित क्षेपकों का कोई साहित्यिक मूल्यांकन नहीं है, तुलसीदास की शैली और शब्दावली तक का उन्होंने अनुकरण किया है । सभी क्षेपक दोहे और चौपाई में ही लिखे गये हैं, कहीं-कहीं उनमें अन्य छन्दों का प्रयोग भी हुआ है, जिनमें प्रमुखतः हरिगीतिका की है । अलंकार, भावव्यंजना और रस का इनमें कहीं दर्शन नहीं हो सकता । इनकी विशेषता इतनी अवश्य है कि वे अपने को तुलसीदास की शैली से इस कदर मिलाते हैं कि 'रामचरितमानस' मूल तथा क्षेपक की रचनाओं में साधारण पाठकों को अंतर नहीं मालूम होता । लवकुश काण्ड (बंबई संस्करण) की एक चौपाई है --

हरि इच्छा भावी बलवाना । तुम कहं तात सदा कल्याना ।
(लवकुश काण्ड, पृ० १३४४)

इस चौपाई की रचना में रामचरित मानस की इस चौपाई की स्पष्ट अनुकरण और छाया है --

हरि इच्छा भावी बलवाना । हृदय बिचारत संभु सुजाना ।

प्रायः "रामचरित मानस" के पद, भाषा और भावों के सहारे ही क्षेपकों की कथा प्रस्तुत की गयी है ।

इस प्रकार साहित्यिक दृष्टि से इन क्षेपकों का कोई महत्व न होने पर भी ये हमारे अध्ययन का विषय बनते हैं, क्योंकि इन्होंने सामान्य लोक दृष्टि में अपने को "रामचरितमानस" का समान-धर्मा बना लिया है, दूसरे प्रसिद्ध कवियों की रामकथा सम्बन्धी रचनाओं की तुलना में क्षेपक "रामचरित मानस" के साथ रहकर अधिकाधिक पाठकों द्वारा पढ़े गये हैं, समझे गये हैं, उन्होंने रामकथा का प्रचार किया है, रामभक्ति के आन्दोलन में सहयोग दिया है । पुराणों तथा बाल्मीकि रामायण एवं इतर संस्कृत ग्रंथों की रामकथा को हिन्दी में प्रस्तुत करने का बहुत बड़ा श्रेय इन क्षेपकों को है । क्षेपकों की अनेक कथाएं ऐसी हैं जो हिन्दी के दूसरे कवियों द्वारा नहीं लिखी गयी है और क्षेपकों में ऐसा राम-साहित्य है जो पहली बार हिन्दी में प्रस्तुत हुआ है, भले ही वह संस्कृत के किसी पुराण अथवा काव्य से छायानुवाद ही हो ।

## रामकथा परक प्रबन्ध, अभिनय एवं स्फुट काव्य

( संवत् १६५८ - १९७० तक )

रामभक्ति का आन्दोलन "रामचरित मानस" में साकार हो उठा और इतने विराट रूप में साकार हुआ कि फिर राम के जीवन पर ऐसी प्रशस्त रचना दूसरे कवि द्वारा संभव न हुई । उसका प्रभाव यह पड़ा कि जिन दूसरे कवियों ने राम के जीवन पर कृतियां लिखीं उन्होंने "रामचरित मानस" से अपने प्रबन्ध काव्यों में शैली, शिल्प में कुछ भिन्नता दिखाकर अपनी विशिष्टता प्रकट करने की कोशिश की है --

(१) प्रबन्ध काव्य में रीति पद्धति का समावेश ।

(२) रामचरित मानस के अवशिष्ट कथा-प्रसंग पर कथा काव्य ।

(३) पुराण-शैली ।

(४) आल्हा शैली ।

(५) भक्ति की अति रंजित शैली ।

किन्तु इन शैलियों में हुई रचनायें, किसी प्रकार भी "रामचरित मानस" की समता में जनता को आकर्षित न कर सकीं । साथ ही कृष्ण भक्ति के प्रभाव में आकर रामभक्ति के उपासकों ने तुलसीदास से रामभक्ति के स्वरूप और विषयवस्तु में ही आमूल परिवर्तन कर दिया और उन्होंने रसिक संप्रदाय की परम्परा राम की उपासना में चलायी, जिस परम्परा में बहुत बड़ा साहित्य लिखा गया । उस पर एक अलग अध्याय में विचार किया जायगा । उपर्युक्त पांच शैलियों में तुलसी के अनन्तर आधुनिक खड़ी बोली के युग तक कवियों ने अपनी कृतियां प्रस्तुत की हैं ।

प्रबन्ध काव्यों के अतिरिक्त रामकथा पर दूसरी प्रकार की कृतियां अभिनेय काव्य थे । जिनकी परम्परा तुलसीदास के बाद से आधुनिक काल में राधेश्याम कथावाचक के राधेश्याम रामायण तक है । वास्तव में इन रचनाओं का ध्येय केवल अभिनय था जिनका उपयोग रामलीला मंडलियां किया करती थीं । इनमें अभिनेय तत्वों और नाटक के शिल्प का कोई ध्यान नहीं

था, केवल आकर्षक संवाद-स्थलों की उद्भावना की ओर कवियों का ध्यान रहा है ।

तीसरी प्रकार की रचनाएं जो राम कथा पर हुई वह हैं उस के अंगभूत - चरितों का गान करते हुए प्रबन्ध काव्य के रूप में प्रस्तुत की गई हैं । इन अंगभूत चरितों में हनुमान और लक्ष्मण ही प्रधान हैं ।

चौथे प्रकार की रचनाएं हैं:- स्फुट साहित्य । तुलसीदास की "कवितावली" और "दोहावली" की शैली का ही अनुकरण इन रचनाओं में हुआ है ।

पांचवें प्रकार की रचनाएं हैं, वर्णनात्मक काव्य । जो प्रबन्ध काव्य की सीमा में ही आते हैं पर जिनके विषय और शैली में पर्याप्त अन्तर है । भक्ति काल से रीतिकाल तक इनकी पद्धति चलती रही है । पीछे से इस शैली की रचनाएं रसिक संप्रदाय के अधिक निकट हो गयीं । नाभादास का "अष्टयाम" इस शैली की कदाचित् पहली रचना थी ।

आगे क्रमशः विभिन्न प्रकार की रचनाओं का विश्लेषण उपस्थित किया जा रहा है ।

## प्रबन्ध काव्य

प्रबन्ध काव्य में रीति पद्धति का समावेश सबसे पहले आचार्य केशव दास ने किया है । रामचरित के अवशिष्ट कथा प्रसंग - विशेषकर रामाश्वमेध अथवा लवकुश चरित को काव्य का विषय अनेक कवियों ने बनाया पर उनकी रचनाएं "रामचरित मानस" के आठवें कांड अथवा क्षेपक के रूप में हुई हैं । स्वतंत्र काव्य के रूप में मधुसूदन दास का "रामाश्वमेध" प्रशस्त रचना है । भक्ति की अति रंजित शैली में "विश्राम सागर" आधुनिक काल में लिखा गया, उस पर कुछ दूरागत राम रसिक सम्प्रदाय का भी प्रभाव पड़ा है, भक्ति की अतिरंजना उसी का प्रभाव है ।

आल्हा शैली की रचना भी आधुनिक काव्य की प्रवृत्ति है, किन्तु उसके मूल में राम भक्ति का आन्दोलन ही प्रमुख है । रामचर्चा आल्ह शैली

में भी हो जाय तो आल्हा की तरह वर्षा काल में ढोलक की तान पर उसका भी गायन किया जाय, यह है इसकी रचना की मूल-प्रेरणा ।

प्रायः आधुनिक काल तक इस तरह की रचनाएं राम भक्ति के आन्दोलन के रूप में होती रही हैं ।

## केशवदास

(समय संवत् १६१२-१६७४)

केशवदास हिन्दी काव्य शास्त्र के प्रथम आचार्य माने जाते हैं । विस्तार से और व्यवस्थित रूप में पहली बार काव्य शास्त्र की चर्चा केशवदास ने की है । उन्होंने केवल काव्य शास्त्र में ही अपना पांडित्य नहीं दिखाया है बल्कि छन्दः शास्त्र में भी अपनी कुशलता दिखायी है । सही बात तो यह है कि काव्य-शास्त्र की अपेक्षा वे छन्दः शास्त्र में वे अधिक प्रमुख हैं । उनकी "रामचंद्रिका" में रामकथा-गायन, अलंकारों का प्रयोग तथा छन्दः रचना की निदर्शन - तीनों एक साथ हैं । इसकी रचना सं० १६५८ वि० में हुई । "रामचरित मानस" के बाद प्रबन्ध रूप में राम-कथा की यह प्रथम प्रमुख रचना है ।

"रामचंद्रिका" में जो प्रस्ताव केशवदास ने दिया है उससे तत्कालीन रामभक्ति के आन्दोलन की पुष्टि होती है । बाल्मीकि ने केशवदास से स्वप्न में मिलकर कहा है --

> सुखकंद हैं । रघुनंद जू ।।
> जग यों कहै । जगबंद जू ।।१३।।
> गुनी एक रूपी, सुनो बेद गावैं ।
> महादेव जाको, सदा चित्त लावैं ।।१४।।
>
> + + + +
>
> न राम देव गाइहै । न देव लोक पाइहै ।।१६।।

(रामचंद्रिका-पू०-पृ०६-७)

इसी प्रकार "रामचंद्रिका" के अन्य प्रसंगों के देखने से यह प्रतीत

होता है कि कवि केशवदास रामभक्ति को अपनी वाणी का विलास बनाए हुए हैं । वस्तुतः इस काव्य में कवि के रामभक्ति रस से सिक्त हृदय के दर्शन नहीं होते । प्रतिभा मंडित - पंडित बुद्धि का चमत्कार ही इस काव्य में अधिक है । इसीलिए यह काव्य रीति परम्परा का जितना प्रतिनिधित्व करता है उतना भक्ति परंपरा अथवा रस निर्भरकवि वाणी का नहीं । यह अवश्य है कि केशवदास ने राम भक्ति के आन्दोलन से प्रभावित होकर इस - ओर रचना करने की ठानी । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है --

केशवदास को कवि हृदय नहीं मिला था । उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए । वे संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पांडित्य और रचना कौशल की धाक जमाना चाहते थे । पर इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए भाषा पर जैसा अधिकार चाहिए वैसा उन्हें प्राप्त न थे । उनकी "रामचंद्रिका" अलग-अलग लिखे हुए प्रसंगों और वर्णनों का संग्रह सी जान पड़ती है । + + + रामायण की कथा का केशव के हृदय पर विशेष प्रभाव रहा हो, यह बात नहीं पाई जाती । उन्हें एक बड़ा प्रबन्ध-काव्य लिखने की इच्छा हुई और उन्होंने उसके लिए राम की कथा ले ली[१]।"

केशवदास ने प्रथम प्रकाश में भूमिका में लिखा है "वाल्मीकि से उन्हें रामकाव्य लिखने की प्रेरणा मिली और इसीलिए उन्होंने प्रमुख रूप से वाल्मीकि रामायण को ही अपनी "रामचंद्रिका" का आधार बनाया है । किन्तु "प्रसन्न राघव" आदि नाटकों की भी सहायता उन्होंने ली है । तुलसी-दास की भांति "नाना पुराण निगमागम" का अनुशीलन उनके पास न था और न तो "रामचंद्रिका" के माध्यम से सामाजिक दर्शन और राजनीतिक गति विधि की दिशा ही कवि केशवदास को निर्धारित करनी थी । उन्हें तो इष्ट था केवल अपनी प्रतिभा का पांडित्य प्रदर्शन । और वह प्रदर्शन उन्हें रामकथा की पृष्ठभूमि पर करना पड़ा क्योंकि तत्कालीन जनता रामकथा की रसिक बन चुकी थी ।

---

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३३-२३५ ।

ऐसा ज्ञात होता है कि केशवदास के समय में ही रामभक्तों ने राम लीलाएं करना प्रारम्भ कर दिया था, और ऐसे संवादों की उपादेयता बढ़ गयी थी जो अभिनय में काम आ सकें । तुलसीदास के बाद प्राणचंद चौहान के "रामायण महानाटक" और हृदय राम के "हनुमन्नाटक" की रचनायें भी इस प्रकार का संकेत करती हैं, ये रचनाएं संभवतः तुलसीदास के जीवन काल में और "रामचरित मानस" की रचना के ३५-४५ वर्षों के अनन्तर ही लिखी गयीं । रामकथा के अभिनय की ओर जनता का सम्मान देख कर ही ऐसा किया गया होगा । हिन्दी नाट्य कला का कोई समुचित विकास उस समय तक हुआ नहीं था । केशवदास ने कदाचित् उस समय की प्रवृत्ति देखते हुए ही "रामचंद्रिका" में अभिनय के उपयोग के लिए भी संवादों का सन्निवेश किया । केशवदास के ये संवाद बहुत अच्छे बन पड़े हैं, इनमें उनकी सूझ-बूझ, पांडित्य तथा उक्ति वैचित्र्य सब कुछ है । और स्पष्ट है कि "रामचंद्रिका" के इन संवादों की रचना में तत्कालीन रुचि का ही प्रभाव है । "रामचंद्रिका" के ये संवाद "रामचरित मानस" के उन प्रसंगों से आकर्षक हैं जिन पर ये लिखे गये हैं । इनमें पांच संवाद तो काफी लम्बे हैं --

१- सुमति विमति संवाद।
२- रावण-बाणासुर संवाद ।
३- राम-परशुराम संवाद ।
४- रावण-अंगद संवाद ।
५- लवकुश नरतादि संवाद ।

"रामचंद्रिका" में कुल ३९ प्रकाश हैं । कथा रामजन्म से लेकर लवकुश चरित तक है । पर कथा प्रसंगों का नियमित विस्तार और सन्निवेश काव्य में हो नहीं पाया जाता है । दार्शनिक, धार्मिक तथा मार्मिक प्रसंगों की सच्ची अवतारणा काव्य में है ही नहीं, सर्वत्र कवि का उक्ति वैचित्र्य और पांडित्य रामकथा की पृष्ठभूमि में नट की भांति अपना प्रदर्शन करता दीख पड़ता है । एक अक्षर से लेकर ३५ अक्षर तक के छंद इस काव्य में हैं । प्रत्येक प्रकाश में विभिन्न छंदों का प्रयोग हुआ है । कितने ही ऐसे छंदों की योजना कवि केशवदास ने की है, जो हिन्दी साहित्य में अन्य कवियों द्वारा प्रयुक्त नहीं हुए हैं ।

इतना सब होने पर भी केशवदास और उनकी "रामचंद्रिका" का राम-साहित्य में महत्व यथेष्ट है । तुलसीदास के "रामचरित मानस" के बाद यह प्रथम प्रबन्ध काव्य राम कथा पर है । आज भी रामलीला के संवादों में केशवदास की 'राम-चंद्रिका' के छंदों का उपयोग किया जाता है । महत्व की बात यह है कि छंद, शैली और कथा सभी में केशवदास ने अपना स्वतंत्र मार्ग अपनाया है, जबकि पीछे के कवियों ने कुछ न कुछ तुलसीदास का अनुकरण किया है ।

अलंकारों और उक्तियों का ऐसा प्रयोग "रामचंद्रिका" में हुआ कि शास्त्रज्ञ विद्वानों का ध्यान सहज ही उस की ओर आकर्षित होने लगा । तुलसीदास का "रामचरित मानस" सामान्य लोक और रामभक्तों के कंठ का हार हुआ परन्तु "रामचंद्रिका"सामान्य जनों में प्रचरित न होकर विद्वानों के अनुशीलन का विषय बन गयी । ऐसा अनुमान है कि शास्त्रज्ञों का ध्यान पहले-पहल रामचंद्रिका ने आकर्षित किया और "रामचरित मानस" ने बाद में । जानकीदास ने "रामचंद्रिका"पर अपनी पांडित्यपूर्ण टीका संवत् १८७२ में उसे बोधगम्य बनाने के लिए ही लिखी ।

धनुष्य भंग के प्रसंग में परशुराम के क्रोध का वर्णन करने में केशवदास अच्छा उक्ति चमत्कार दिखलाते हैं । परशुराम ने जब पूछा कि धनुष किसने तोड़ा, बन्दी उत्तर देना चाहता था कि "राम ने", पर जब तक उसके मुंह से केवल "रा" निकला परशुराम ने समझा- अच्छा, रावणराज ने तोड़ा है और उनका क्रोध रावण के ऊपर बरस पड़ता है ---

"तोरयो "रा" यह कहत ही समझयों रावणराज"

(रामचंद्रिका-पृ०-७-४)

ऐसा समझना परशुराम का संगत भी था क्योंकि उस समय धृष्टता के कार्यों में रावण की ही ख्याति थी । फिर परशुराम अपने फरसे को संबोधित करते हैं :--

यद्यपि है अति दीन, मूढ़ । तऊ शठ मारिबे ।
गुरू अपराधहिं कीन, केशव क्योंकर छांडिये ।
(रामचंद्रिका-७पृ०-७)

रावण की लंका को राख करने के लिए वे कृत संकल्प हो उठते हैं --

बर बाण शिखीन अलेख समुद्रहि सोखि सखा सुखही तरिहौं ।
अस लंकहि औटि कलंकित की पुनि पंक कलंकहि को भरिहौं ।
भल भूंजि कै राख सुखै करिकै दुख दीरघ देवन के हरिहौं ।
सित कंठ के कंठहि को कठुला दसकंठ के कंठन को करिहौं ।

(पृ० १११ छन्द ५)

परशुराम इतना सब कहते जाते हैं, रावण के ऊपर उतना क्रोध बरस रहा है पर किसी के कहने की हिम्मत नहीं है कि रावण ने नहीं राम ने यह धनुष तोड़ा है फिर जब वे स्वयं पूछते हैं -

"यह कौन को दल देखिबे ?

तब उत्तर मिलता है -

"यह राम को दल लेखिये ।"

(रा०पू०पृ० १११)

और वास्तविकता का ज्ञान परशुराम को होता है और वे राम के ऊपर जिस प्रकार बरसते हैं उसका श्रेष्ठ निदर्शन "रामचंद्रिका" में है। परशुराम ने फरसे को संबोधित करके कहा है -

केशव हैहयराज को मार हलाहल कौरन खाइ लिए रे ।
बालगि मैद महीपन को घृत घोरि दियो न हिरानो हियो रे ।।
मेरो कह्यो करि मित्र कुठार जो चाहत है बहुकाल जियो रे ।
तौं लौं नहीं सुख जो लग तू रघुवीर को श्रोण सुधान पियो रे ।।

(रा०पू०पृ०११६- छं० २१)

## सरयू राम पंडित

### (सं० १८०५ में वर्तमान)

इन्होंने संवत् १८०५ में एक कथात्मक ग्रंथ "जैमिनि पुराण" नाम से दोहे चौपाइयों तथा अन्य छंदों में लिखा, जो ३६ अध्यायों में समाप्त हुआ है । यह ग्रंथ केवल रामकथा के सम्बन्ध में नहीं है फिर भी इसका महत्व रामसाहित्य में है । महाभारत, पुराण की अन्य कथाओं के

साथ संक्षिप्त रामायण, सीता त्याग और लवकुश युद्ध का प्रसंग इसमें वर्णित है । उपर्युक्त विवेचित पंच शैलियों में यह पुराण शैली की रचना है ।

श्री मधुसूदन दास

सं० १८३९ में मधुसूदन दास ने "रामाश्वमेध" प्रबन्ध काव्य की रचना की । इसमें कुल ६८ अध्याय हैं । पद्म पुराण के पाताल खण्ड की सम्पूर्ण कथा को कवि ने थोड़ा विस्तार के साथ दोहे-चौपाई शैली में गाया है । तुलसीदास के रामचरित मानस की पूरी शैली का ही अनुकरण कवि करता है । अतः इसमें दोहा, चौपाई, सोरठा, हरिगीतिका, और बीच-बीच में संस्कृत के गेय छंदों का प्रयोग मानस की भांति रामाश्वमेध में भी है । लेकिन तुलसीदास की भांति प्रवाह पूर्ण एवं प्रांजल भाषा का प्रयोग मधुसूदन दास ने नहीं किया है ।

यह सब होने पर भी मधुसूदन दास में प्रबन्ध-पटुता और वस्तु योजना की क्षमता का नितान्त अभाव है । "रामाश्वमेध" काव्य का प्रबन्ध इतना अरूचिकर है कि इसे केवल पौराणिक कृति की संज्ञा दी जानी चाहिए न कि काव्य की । इसे हम इस प्रकार से समझ सकते हैं -- समस्त कथा को व्यास ने सूत से कहा है और व्यास उस कथा को कह रहे हैं जिसको शेष ने वात्स्यायन से कहा है । राम लंका जीतने के बाद पुष्पक विमान से सीता के साथ अयोध्या में प्रवेश करते हैं । उनका राज्याभिषेक होता है । वे अयोध्या के राज्य का संचालन करने लगते हैं । अब इसके आगे "रामाश्वमेध" की कथा प्रारम्भ होती है ।

एक दिन अगस्त्य जी पधारते हैं । राम उनकी पूजा करते हैं । अगस्त्य ने रावण का इतिहास सुनाया और यह बताया कि रावण ब्राह्मण पुत्र था । यह सुन कर राम व्यग्र हो गये । और उन्होंने कहा कि तब तो मुझे ब्रह्म-हत्या का दोष लगा । अब यह ब्रह्म-हत्या का पाप कैसे मिटे इसका मुझे उपाय बताइए । अगस्त्य ने रामचन्द्र को अश्वमेध यज्ञ करने का सुझाव दिया । अश्वमेध-यज्ञ शुरू हुआ । वशिष्ठ ने राम से कहा

कि सीता की स्वर्ण की प्रतिमा बना कर यज्ञ का संपादन किया जाय । अब यहाँ पर पाठक असमंजस में पड़ता है कि राम के राज्याभिषेक के बाद सीता क्या हो गयीं जो उनकी स्वर्ण की प्रतिमा निर्मित करनी है । पाठक को इसका उत्तर इस काव्य में ५० अध्याय के बाद मिलता है । जब शत्रुघ्न के साथ राम की सेना अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के पीछे - पीछे वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में प्रवेश करती है और लव उस घोड़े के गले में राम के विजय की यश-गाथा बांध कर क्षत्रिय स्वाभिमान में घोड़े को पकड़ लेते हैं और सेना को ललकार देते हैं । उसी समय वात्स्यायन लवकुश सीता के संबंध में शेष से प्रश्न करते हैं और शेष सीता के निर्वासन की सारी कथा का वर्णन करते हैं । अत्यन्त स्पष्ट है कि कथानक का यह क्रम पाठक के हृदय में बड़ी विरसता पैदा करेगा और कोई भी रोचकता काव्य के ऐसे प्रबन्ध में न आ सकेगी । काव्य केवल पौराणिक शैली की कहानी बनकर रह जायगा और ऐसा ही हुआ ।

कथानक की समाप्ति राम द्वारा लवकुश और सीता को ग्रहण करके अयोध्या लौटने और यज्ञ को पूरा करने के साथ परिणत होती है । रामाश्वमेध के कथानक के तीन प्रमुख आकर्षण हैं - १- लोक धर्म के अनुशासन में राम द्वारा सीता का निर्वासन । २- वाल्मीकि के आश्रम में रोती बिलखती सीता को शरण और लव और कुश का जन्म । ३- तीसरा सबसे अधिक रोचक प्रसंग है वह है अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के पीछे चलने वाली राम की विजयनी सेना के साथ लवकुश का तुमुल संग्राम और राम की सेना का पराजय । वैसे इस रामाश्वमेध काव्य में पहले दो प्रसंग तो बिल्कुल छोड़ दिए गए हैं और तीसरा प्रसंग ऐसा आया है कि उसका पता ही नहीं चलता । इसकी रोचकता उभर कर काव्य में आ ही नहीं पाती । लगभग ५० अध्यायों तक पौराणिक और अवान्तर कथाओं के वर्णन में ही कवि लगा रह गया और राम की सेना कितने पौराणिक राजाओं और असुरों के साथ विजय करने के बाद तब लवकुश के साथ युद्ध करने के लिए वाल्मीकि आश्रम में पहुंचती है और तीसरा यह रोचक प्रसंग नितान्त दब जाता है । सुबाहु, विद्युन्माली, वीरमणि, शिव, सुरथ आदि के युद्ध की श्रेणी में लव

और कुश मार्मिक युद्ध को भी मिला देना कवि की मार्मिक स्थलों के पहचान के संबंध में नितान्त अनभिज्ञता है ।

इस प्रकार रामाश्वमेध का प्रबन्ध नितान्त शिथिल और अरोचक है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने "हिन्दी साहित्य के इतिहास" में जो लिखा है कि "रामाश्वमेध" नामक एक बड़ा और मनोहर प्रबन्ध काव्य बनाया जो सब प्रकार से गोस्वामी जी के रामचरित मानस का परिशिष्ट होने के योग्य है । गोस्वामी जी के प्रणाली के अनुसरण में मधुसूदन दास को पूरी सफलता हुई है[1]।" आचार्य शुक्ल के इस कथन से सहमत होने के लिए रामाश्वमेध काव्य पढ़ने पर हमें आधार नहीं मिलता ।

भाषा के संबंध में अवश्य ही जहां तहां मधुसूदन दास ने प्रांजलता प्रस्तुत की है । साथ ही रामभक्ति के संबंध में जैसे विचार तुलसी-दास के थे एवं जिस प्रकार तुलसी दास भिन्न भिन्न काव्यों में भिन्न-भिन्न रामकथा मानते हैं ऐसे ही विचार मधुसूदन दास ने भी काव्य के पहले अध्याय में व्यक्त किया है---

जापै कृपा राम की होई । पार लहै मुनिवर सुनु कोई ।।
तदपि कहौं निज मति अनुकूला । रघुबर सुयस हरन जयशूला ।।
जेहि अनंत नभ सुनहु मुनीसा । खग सब उड़हिं सहित निज ईसा।।
पार न पाइ सकब मुनि कोई । यद्यपि प्रबल गगन चर होई ।।
अस बिचारि रघुपति गुनगाथा । बरनहुं सुमति जथा मुनिनाथा।।

रामचरित सत कोटि जग, अति पुनीत सुखदानि ।
जिहिं मुनि की जैसी प्रकृति,तिहि तस कहेउ बखानि ।।
(प्रथम अध्याय)

## पद्माकर

(संवत् १८१०-१८९०वि०)

पद्माकर रीतिकाल के प्रसिद्ध कवियों में हैं । इनकी जैसी

---

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०८-४०९ ।

मंजी भाषा और प्रवाहपूर्ण शैली कम कवियों में देखी जाती है । अतः साक्ष्य के आधार पर इनका जन्म बाद में हुआ था, और कानपुर गंगातट पर इन्होंने अंतिम जीवन बिताया ।

इन्होंने अपना कवि-जीवन जयपुर के महाराज जगतनारायण सिंह के आश्रय में पल्लवित किया और उनके नाम पर "जगद् विनोद" नामक रीति ग्रंथ की रचना की ।

अंतिम जीवन में जब इनका भक्ति और वैराग्य की ओर झुकाव हुआ तो इन्होंने "प्रबोध पचासा", "गंगालहरी", "राम रसायन" ग्रंथों की रचना की । "राम रसायन" का आधार वाल्मीकि रामायण है । इनकी रचना दोहे चौपाइयों में हुई हैं । पर इस चरित काव्य के लिखने में इन्हें सफलता कम मिली है विद्वानों को इस कृति का कृतिकार पद्माकर के होने में संदेह है । कवि ने कथा वाल्मीकि रामायण से ली है और शैली तुलसीदास से । प्रत्येक काण्ड के आरम्भ और अंत में संस्कृत के श्लोक हैं फिर दोहा चौपाई में आगे का प्रबन्ध लिखा गया है । इसमें सात काण्ड हैं, और काण्ड सर्गों में वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही विभाजित हैं । सीता के वियोग में रामचन्द्र ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंच रहे हैं । उसका वर्णन द्रष्टव्य है -

ऋष्यमूक परवत सुं निहारौ । जहं सुग्रीव रहत बल भारौ ।
है सिव की खोजब कर जाके । हूवे चित्र जु चित्र कर ताके ।
मैं प्रभु बच सुनि लछमन कहऊ । बहहि बिचार सुमम चित चहयऊ ।
तब अन्हाइ तहं दोनो भाई । करि तरपन चलि भे सुखदाई ।
चलि पंपासर देखते भेई । सफल फूल जहं बहु तरू हेई ।
मधुर मधुर खग गन धुनि छाई । या विधि बन छवि लखि रघुराई ।
पंपा निकर लखीयतु जोई । ऋष्यमूक पर्वत यह सोई ।
जहं सुकंठ निकसत कपिराई । सो देहहि मुहि सियहि बताई ।

स्पष्ट है कि राम रसायन की भाषा में वह प्रवाह नहीं है जो पद्माकर के कवित्त -सवैयों में पाया जाता है । फिर भी रचना महत्व

की है क्योंकि इसमें रामकथा तुलसीकृत "रामचरित मानस" की नहीं बल्कि आदि कवि के रामायण की है । सीधे-सादे शब्दों में राम कथा को कवि ने ब्रजभाषा में गाया है ।

## गणेश

(संवत् १८५० - १९१० तक वर्तमान)

ये नरहरि बन्दीजन के वंशज थे और काशीराज महाराज उदित नारायण सिंह तथा महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह के आश्रित थे । इन्होंने "बाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश" ग्रंथ लिखा जिसमें बालकाण्ड समग्र और किष्किंधा काण्ड के पांच सर्ग ही हैं ।

इन्होंने "हनुमतपचीसी" नाम से हनुमान जी की स्तुति में स्फुट रचना लिखी है । जिसकी चर्चा प्रसंगानुसार आगे आएगी ।

## नवलसिंह कायस्थ

(संवत् १८७३ से १९२५ तक वर्तमान)

नवलसिंह ने सबसे प्रमुख ग्रंथ "आल्हा रामायण" संवत् १९२२ में लिखा । आल्हा की शैली उत्तरी भारत की प्रमुख लोकगीत शैली है । राम भक्ति का जो आन्दोलन तुलसीदास के बाद धर्म और साहित्य में प्रारम्भ हुआ, उससे अवश्यंभावी थी कि आल्हा शैली में भी रामकथा गायी जाती । नवलसिंह ने सर्वप्रथम इस ओर ध्यान दिया, यह इनके कृतित्व की विशिष्टता है । ये झांसी के समथर नरेश राजा हिन्दू पति के आश्रय में रहते थे । "आल्ह रामायण" अभी अप्रकाशित ही है अल्हैतों के लिए रामकथा लिखना उनमें रामभक्ति का प्रचार कवि का उद्देश्य है जैसा कि ग्रंथ के अंत में कवि कहता है :

आला रवि वारंन के काजै कही श्री सरन माहि ।<br>
सार रामजस नाम सदा ही सज्जन संत आदरहिं ताहि ।<br>
आला छंदन की चौकरी कही सात सौ सोइ

करहि निज आपास गान मैं जिनके चित आला रुचि होइ
आला के लालच सौं जे जन पढ़हिं श्रवन कराहिं ।
गाहि बड़ी राह सौ नीकें ते सब अंत परम पद जाहि ।
उनइस से बाइस कौ भादौ सुदि आठै कुजवार ।।
दिवस सतैर बरस गांठ कौं श्री कृत आराधत किय त्यार ।

अल्हैतों को राम भक्ति की प्रेरणा देते हुए कवि ग्रंथ का आरम्भ करता है ---

आला कहिए सब देवन मै रघुकुल मनि श्रीराम ।
तिनके चरनन मै सिरधर कै मै श्री चरन करौ परिनाम ।
सिव कैलास सिखर बर बरनै उमाबरि नारि,
आला तुमरै रामभक्ति है भाखौ आला जस अघ हारि ।।
आला जे जन भजत राम कौ करै न बिषय की आस ।
आला ऐसी राम भजन कौ तेई सत्य राम के दास ।
आला जथा राम की पूजा आला है जिमि नाम ।
तैसे यह आला रामायन जन के पूर्ण करै सब काम ।।

"आल्हा रामायन" में भाषा का प्रसाद गुण, लोकरुचि की पहचान तथा रामभक्ति का सरल प्रस्तुतीकरण है । और इसका सर्वाधिक विशिष्ट महत्व है --एक नयी शैली में रामकथा का गायन ।

नवल सिंह ने राम और कृष्ण दोनों चरितों को लेकर कई पुस्तकें काव्य रूप में लिखी हैं । उनकी कुछ पुस्तकें "आला रामायन" से आकार में बड़ी हैं, पर शैली की दृष्टि से उनका महत्व उतना नहीं है जितना "आला रामायन" का है । नवल सिंह का दूसरा उपनाम "श्री सरन" है । उनकी रामकथा पर शेष पुस्तकें ये हैं -

(१) जन्म खंड ।
(२) सीता स्वयंवर ।
(३) राम विवाह खण्ड ।
(४) विलास खंड ।
(५) पूर्व श्रृंगार खंड ।

(६) मिथिला खंड ।

इनके ये ६ काव्य एक ही विषय के विस्तार हैं । कवि के काव्यों के अंत की पुष्पिका में इन्हें "रामचन्द्र विलासान्तर्गत" लिखा है अर्थात् "रामचन्द्र विलास" नामका मानसिक प्रबन्ध का ६ खंडों में विस्तार किया गया है । मिथिला खंड की पुष्पिका है---इति श्री मद्रामचन्द्र विलासे उमामहेश्वर संवादे विलास खंडे श्री जानकी रामस्य मिथिलाया यात्रा वर्णनं नाम श्री सरन नवल सिंह कृत समाप्त द्वादशो ध्याय ।।१२।। "रामचन्द्र विलास" नाम से प्रकट है कि रसिक सम्प्रदाय की भावना का प्रभाव राम भक्त कवियों पर पड़ने लगा था । नवलसिंह ने राम के वीर रूप की उपासना और कीर्तन का विस्तार न कर केवल उनके विलास-विनोद की चर्चा में छः ग्रंथ लिख डाले, यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है । इसका कारण मुगल साम्राज्य की सुखशान्ति तथा उसका विलासपूर्ण वातावरण भी हो सकता है किन्तु कदाचित् उससे भी अधिक कृष्ण-चरित का प्रभाव होना चाहिए ।

इन ग्रंथों की शैली और छंद वही हैं जो "मानस" के हैं । "मानस" की भांति शिव-पार्वती-संवाद की भी परंपरा अपनाई गई है । पुष्पिका के अंत में "उमामहेश्वर संवादे" पद भी आता है ।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त दो महत्वपूर्ण ग्रंथ "रामायण कोश" तथा "रूपक रामायन" नवलसिंह की विशिष्ट कृतियां हैं जो राम साहित्य की विधा को व्यापक करती हैं । उनके वर्णित विषय चाहे महत्वपूर्ण न हों किन्तु उनकी विधा निश्चय ही विशिष्ट है । उसका आरम्भ पहले पहले नवल-सिंह ने करके राम साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है ।

<u>रूपक रामायन</u>:- यह ग्रंथ ११५ हरिगीतिका छंदों में है । इसमें राम की सृष्टि का मूल बताकर सृष्टि रचना का रूपक आयोजित किया गया है । एक उदाहरण लीजिए:-

> विधि सेस सिव सनकादि नारद आदि भगवत पर जिते
> प्रत्यक्ष हरि के चरित पेषत रहत प्रति कल्पहिं ते ।

निज धाम जात परोच्छ मै हृदि मध्य अविलोकन करै ।
तिनको सुनित्य नवीन से महि इंद्रगन तें कबहूं टरैं ।।११५।।

इनके अतिरिक्त रामकथा पर आपकी शेष रचनाएं हैं---

(१) रामायण सुमिरिनी---इसमें १९ कवित्त हैं और राम का कीर्तन है ।
(२) राम रहस्य कलेवा --- जनकपुर में रामचन्द्र के कलेवा करने का वर्णन इस काव्य में सार छंद में है ।

यद्यपि नवलसिंह की रचनाएं भाषा, भाव और अन्य दृष्टियों से बहुत ऊंची नहीं हैं और उन्हें काव्य की कसौटी पर खरा नहीं उतारा जा सकता तथापि नवलसिंह की महत्ता राम साहित्य में सर्वथा अक्षुण्ण है । राम साहित्य के विषय और उसके निर्वाह की दृष्टि से उनका लिखा साहित्य उनकी प्रतिभा की विशिष्टता का द्योतक है । अभिरुचि, अनेकता तथा नवीनता तीनों गुण नवलसिंह के राम साहित्य में हैं । आचार्य शुक्ल जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इसी ओर लक्ष्य किया है ---
"उक्त पुस्तकों में अधिकांश बहुत छोटी - छोटी हैं फिर भी इनकी रचना की अनेक रूपता का आभास देती हैं।+ + + उद्धृत उदाहरणों के देखने से रचना इनकी पुष्ट और अभ्यस्त प्रतीत होती है[१]।

## राजा रुद्रप्रताप सिंह

### (१९वीं विक्रमीय शताब्दी का उत्तरार्ध)

रुद्रप्रतापसिंह प्रयाग जनपद के मांडा के राजा थे । उन्होंने रामकथा को लेकर बाल्मीकि रामायण तथा अन्य पुराणों के आधार पर एक विशाल ग्रंथ "सुसिद्धान्तोत्तम रामखण्ड" की रचना की, यह ग्रंथ "राम चरित मानस" की भांति ही दोहा, चौपाई तथा अन्य छन्दों की शैली में है किन्तु विषय-विस्तार तथा कथाक्रम के शिल्प की दृष्टियों से पुराणों से मेल खाता है और

---

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४२१-४२२ ।

इसे हिन्दी का महापुराण कहना चाहिए । इस ग्रंथ को रुद्रप्रताप सिंह के पौत्र राम प्रतापसिंह ने महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी से संपादित कर संवत् १९५७-६७ के बीच प्रकाशित कराया । रामप्रताप सिंह हिन्दी प्रेमी तथा स्वयं कवि भी थे । इस ग्रंथ को उन्होंने रामभक्तों के लिए बिना मूल्य वितरण करवाया, किन्तु पुराण शैली और भाषा की दुरूहता के कारण इसका यथेष्ट प्रचार न हो सका ।

इस ग्रंथ का महत्व भाषा की दृष्टि से भी है । मांडा ऐसा स्थान है जहां रीवां की बुन्देलखण्डी, अवधी और मिरजापुर की भोजपुरी की संधि भाषा का जन्म होता है जिसका प्रयोग इस ग्रंथ में हुआ है । भाषा का यह रूप देखिए--

सरेजत नेत्रन्ह सुख विहित जाग्रित नय द्रिग भूप ।
व्यक्त कोप सुप्रसाद दोउ यह राजन्ह के रूप ।।

अरण्यकाण्ड - दसवां विश्राम ।

\+ + + +

अवसि निसाचर जाहिं बिलाई । तुम्ह सम करकस भूपहि पाई ।।

आरण्यकाण्ड- १० विश्राम ।।

संपूर्ण ग्रंथ सात काण्डों अथवा सातपथों में विभक्त है । संवत् १८७७ से संवत् १८८३ तक आरम्भ से लंका काण्ड तक की रचना सम्पन्न हुई है यह स्वयं ग्रंथकार ने लिखा है, उत्तर काण्ड कब तक लिखा गया यह नहीं कहा जा सकता । अंतिम राजपथ(उत्तर काण्ड में श्री मद्भागवत महापुराण के अनुकरण पर सभी राजवंशों का वर्णन करते हुए ग्रंथकार ने दिल्ली के सुल्तान शासकों और मुगल शासकों का विस्तृत- वर्णन किया है, दिल्ली के शासन में मरहठों और अंग्रेजों का जो हस्तक्षेप हुआ था उसका भी वर्णन है । उस समय प्रयाग अंग्रेजों के शासन में था और कवि के अनुसार समग्र भारत पर उनका प्रभुत्व था-

गुंड विबस हुई मेदिनी,
आसतलज निधि तीर;
रामेशर नयपाल लौं
एकई छत्र सधीर ।। (उत्तरकाण्ड विश्राम ५३-९४९) ।

इसी प्रसंग में दिल्ली पर अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण का भी वर्णन मिलता है जिससे प्रकट है कि उत्तर कांड की रचना उसके बाद के १४ वर्षों के बीच जब तब हुई होगी ।

इसी काण्ड में और इसके पहले बालकाण्ड में भी कवि ने अपने बंश का विस्तृत वर्णन किया है जिसका सम्बन्ध कन्नौज के गहरवारों से है । इस प्रसंग में एक युद्ध का भी वर्णन है जिसमें कवि के पितामह उद्योत सिंह ने अवध के सूबेदार शम्सुद्दीन को हराया था ।

इतने विशाल काय ग्रंथ का प्रकाशन भी बड़े परिश्रम की बात है । पूरा ग्रंथ नव जिल्दों में विभक्त है, किष्किंधा पथ के तीन खण्ड हैं और वही सबसे बड़ा पथ है जिसकी कुल पृष्ठ संख्या १३१९ है । सम्पूर्ण ग्रंथ में लगभग ३७०० पृष्ठ और ४०८ विश्राम (सर्ग) हैं । प्रत्येक पृष्ठ में २० पंक्तियां, औसतन १६ अर्धाली और दो दोहे हैं । दोहा चौपाइयों के बीच अन्य मात्रिक तथा वर्णिक विविध छंदों का प्रयोग इस रामायण में है ।

वास्तव में यह ग्रंथ महापुराण ही है । यह बात इस ग्रंथ को पढ़ने के पहले इसकी विषय सूची देखने से ही स्पष्ट हो जाता है । संस्कृत में पुराणों का लक्षण बताते हुए लिखा गया है --

सर्गश्च प्रति सर्गश्च बंशो मन्वन्तराणि च ।
बंशा नु चरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ।।

(१) सृष्टि (२) सृष्टि को विस्तार (३) लय तथा पुनः सृष्टि (४) सृष्टि के आदि की बंशावली (५) मन्वन्तरों और उनमें होने वाली प्रधान घटनाओं का वर्णन तथा (५) बंशानुचरित - सूर्य तथा चन्द्र बंशी राजाओं का वर्णन ---पुराणों के प्रतिपाद्य यही पांच विषय हैं । किन्तु महापुराण की संज्ञा से अभिहित होने वाले पुराण विषय की इस सीमा के अन्दर ही नहीं बंधे हैं । विषयों की विशदता और अधिकता के कारण वे महापुराण संपूर्ण ज्ञानकोष की मूर्तिमान् राशि हैं ।

विषयों की इसी विशदता के कारण प्रस्तुत रामखण्ड भी महापुराण की कोटि में आता है । मिथिलापथ(बालकाण्ड) में ही सर्ग, प्रतिसर्ग,मन्वन्तर

आदि सृष्टि, बंशानुचरित, भूगोल और खगोल की विस्तृत भूमिका के साथ कथा-प्रबन्ध का प्रारम्भ होता है । राजपथ के बंशानुचरित में सूर्य और चन्द्र-बंशी राजाओं की सीमा तक ही न रह कर ग्रंथ कार ने दिल्ली के ऐतिहासिक सभी बंशों का वर्णन किया है तथा अंत में अपने राजबंश का भी संयमित वर्णन प्रस्तुत किया है । किष्किंधा पथ में आयुर्वेद का सम्यक वर्णन, स्थान स्थान पर अवान्तर कथाएं, भक्ति, पूजा, यज्ञ, मंत्र, तंत्र, तीर्थों , क्षेत्रों, श्राद्धों के सविस्तार वर्णन, व्यवहारों और दार्शनिक मतों के विवेचन भी उपलब्ध होते हैं । जैसे "शिवपुराण" आदि में शिवचरित के प्रधान माध्यम से अधिक से अधिक विषयों की अवतारणा की गयी है । और वह अवतारणा भी बहुत विस्तृत है । साथ ही साथ जो चरित वर्णन किया गया है उसमें भी विषय का संकोच नहीं है । ग्रंथ में राम का यह चरित भगवान शंकर ने पार्वती से वर्णन किया है किन्तु यह संवाद उतना प्रधान नहीं है जितना तुलसीदास के "रामचरित मानस" का शिव-पार्वती-संवाद । इस अंश में बाल्मीकि"रामायण" और "अध्यात्म रामायण" से अधिक साम्य प्राप्त होता है, कहीं कहीं कोई स्थल तो अनुवाद जैसे प्रतीत होते हैं। राजपथ(उत्तरकाण्ड) में रामाश्वमेध, राम का परम धाम गमन आदि के अतिरिक्त रावण आदि का जन्म और उनके विजयों की कथाएं संवाद प्रसंग में कही गयी हैं ।

इसके जनप्रिय न होने के दो कारण हैं---एक तो इसका पौराणिक रूप, जिसमें विषयों का इतना अधिक विस्तार हो जाता है कि रामकथा और अन्य कथाएं - उन विषयों के जंगल में खो जाती हैं और दूसरा कारण है भाषा की दुरूहता, जिसमें जानबूझ कर संस्कृत के शब्द भी दिये गये हैं, जिनमें से बहुत से तो हिन्दी के लिए अप्रसिद्ध प्रयोग हैं तथा बहुत से नये गढ़े हुये मालूम पड़ते हैं । जहां उनका प्रयोग भी हुआ है वे उस स्थल पर अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं । एक उदाहरण देखिए, शूर्पणखा की नाक काटने पर खरदूषण की ओर से राम की भर्त्सना दी जाती है ---

तुम्ह को केहि कारण बन आये
किमि बिरूप मिग-द्रिसहि कराये ।
किमि असुरेन्द्र स्वसा नहिं जानी ।
जानि करेउ तुम्ह आपन हानी ( अरण्यकाण्ड:बिश्राम-७) ।

यहां पर मिग दिसहिं (मृग दृशी) और असुरेन्द्र स्वसा के प्रयोग अस्वाभाविक मालूम पड़ते हैं । कहीं-कहीं वाक्य-गठन की अस्वाभाविकता भी दुरूहता का कारण बन गयी है । जैसे--"राक्षसों ने भयंकर धनुष उठाया" । इस अर्थ में नीचे का प्रयोग----

भीम धनुस निसिचर अपिकोर ।

हिन्दी में आचार्य केशव की कविता को प्रेतकाव्य कहा गया है तो इस कसौटी पर रूद्रप्रतापसिंह का राम खण्ड बैतालकाव्य है, जिसमें सामान्य पाठक को कथा प्रबन्ध का ओर छोर ही न मालूम होगा. एक कठिनाई इस काव्य में यह भी है कि जहां तहां अधिकता के साथ क्षेत्रीय बोली के शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

इतना सब होने पर भी इस राम खण्ड का महत्व है---पौराणिक, ऐतिहासिक तथा भाषा सम्बन्धी । पौराणिकता के विषय में ग्रंथकार ने अपने प्रतिपाद्य राम को ब्रह्म का रूप माना है और जैसे तुलसीदास ने भक्ति की बड़ी प्रशंसा की है, इस कवि ने भी भक्ति को उसी दृष्टि से देखा है । रावपथ के प्रारम्भ में पार्वती ने शंकर से अग्रिम कथा पूंछते हुए राम को भगवान कहा है, राम को ब्रह्मा,विष्णु और शिव की क्रमशः सृजन, पालन, तथा संहार शक्तियों का मूल-प्रेरक कहा है । आगे पार्वती शिव से कहती हैं कि उन राम के सबसे बड़े तत्ववेत्ता भी आपही है । यह स्पष्ट तुलसीदास के राम चरित मानस का प्रभाव है । राम और शिव के परस्पर ऐक्य का जो दृष्टिकोण तुलसीदास के"रामचरितमानस" में है, वही रामखण्ड में भी प्राप्त होता है ।

यद्यपि संपूर्ण ग्रंथ में संस्कृत के तत्सम शब्दों एवं धातु - उपसर्गों से बने नये शब्दों के प्रयोग के कारण भाषा की दुरूहता स्वतः सिद्ध है तथापि जहां तहां भाषा का ललित प्रयोग और उसका प्रवाह प्रशंसनीय है । दो

उदाहरण यहां दिये जाते हैं:-



हरी जाति इमि जनक किशोरी ।
सेन बिबस जिमि सुभग चकोरी ।।
जनस्थान बन लंघन कयऊ ।
किष्किंधोपरि आगत भयऊ ।
रिस्यमूक पर्बत स्रिंगोपरि ।
राजु बलीमुख बान कपीस्वर ।।
भान्त सान्त कपि कान्तन्ह देखी ।
पंच महर्षि समान बिसेखी ।।

+ + + + +

खरसरब मदलोचन कारी ।
क्वं गतासि त्वं जनक कुमारी ।।
मम ढिग तजि कुत गइसि सुबाले ।
निज गति निंदनि चलत मराले ।
बाल मराल गयन मद मोचनि ।
मां बिनु किमि रस है बरं लोचनि ।।

(आरण्यकाण्ड: बिश्राम २०)

इतना सब होने पर भी इस ग्रंथ में कवित्व कम, पुराण ही अधिक है । अगर इसे रामायण न कहकर "राम महापुराण" कहा जाय तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी । और फिर पुराणकार के रूप में रुद्रप्रतापसिंह की मौलिकता सर्वथा अक्षुण्ण है ।

अभी तक इस ग्रंथ पर हिन्दी आलोचकों और इतिहासकारों ने कोई ध्यान नहीं दिया है । विशेषतः भाषा के संबंध में इसका महत्व बहुत स्पष्ट है, एक विशेष संधि क्षेत्रीय बोली का प्रयोग, जिसके सम्बन्ध में ऊपर वर्णित है, इस ग्रंथ में है ।

## गोकुल नाथ

(बिक्रम १९वीं शताब्दी)

गोकुल नाथ, गोपी नाथ और मणिदेव ने, मिलकर काशी-नरेश उदित नारायण सिंह की आज्ञा से "महाभारत"तथा"हरिबंश" का समग्र अनुबाद हिन्दी कबिता में किया है । गोकुलनाथ ने इस अनुबाद के अतिरिक्त और भी पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें एक "स्सीताराम गुणार्णब" भी है । बैसे ये केबल राम भक्त नहीं थे, कबि थे, और कबिता के क्षेत्र में रामभक्ति का जो आन्दोलन चला था उसी से प्रभाबित होकर राम पर इन्हें कुछ लिखना इष्ट था । अतः "अध्यात्म रामायण" के अनुबादस्बरूप इन्होंने "सीताराम गुणार्णब" की रचना की ।

## महाराज रघुराज सिंह

(संबत् १८८०-१९३६)

रींबां नरेश रघुराजसिंह महाराज बिश्वनाथ सिंह के पुत्र थे, पिता की भांति इन्होंने भी रामभक्ति को लेकर बिपुल कबिता अबधी में लिखी। इनका "राम स्बयंबर" संबत् १९३४ में लिखा गया । इसकी शैली "रामचरित मानस" की है, बही दोहा-चौपाई तथा जहां-जहां बीच-बीच में दूसरे छंद, कबित्त छन्द का प्रयोग नया है । इसमें कुल २३ प्रबन्ध(प्रकरण) हैं । आकार "रामचरित मानस" से बड़ा है । इसका प्रकाशन बम्बई के बेंकटेश्बर प्रेस से हुआ है । २३ प्रबन्धों में पहले से लेकर २२बें प्रबन्ध तक रामजन्म और दशरथ का राम आदि के बिबाह के बाद जनकपुर से अयोध्या लौटने की कथा है और २३बें प्रबन्ध में शेष रामकथा कही गयी है । ग्रंथ की कथा का आधार बाल्मीकि "रामायण" है किन्तु संपूर्ण ग्रंथ में भाब का आधार"रामचरित मानस" ही है । कबि ने रामजन्म से लेकर राम बिबाह तक की कथा कही है जिसमें राबण द्वारा लोक की उत्पीड़न, देबताओं द्वारा भगबान से अबतार की प्रार्थना की कथाएं भी आ जाती हैं, बिस्तार के साथ कहने के लिए ही इस ग्रंथ की रचना

महाराज काशी नरेश ईश्वरी प्रसाद की प्रेरणा से की । राम के विवाह की प्रधानता होने के कारण ग्रंथ का नाम - राम स्वयंबर रखा गया । वैसे "राम स्वयंबर" नाम अनुपयुक्त है । यदि स्वयंबर शब्द रखना था तो इसके साथ "सीता स्वयंबर" नाम रखना चाहिए था अन्यथा "राम विवाह" अधिक उपयुक्त होता ।

ग्रंथ में काव्यतत्व का उद्रेक उतना नहीं होता जितना भक्ति का । प्रबन्ध को बड़े कौशल से निभाया गया है, भाषा बड़ी साफ है और काव्य रीति अभिधात्मक ।

रामभक्ति के आन्दोलन से प्रेरित होकर किस प्रकार अवधी के क्षेत्र में काव्यों की रचनाएं हुई और राम काव्य की रचना करना, कविता तथा जीवन के परमार्थ की एक परम्परा ही हो गयी, "राम स्वयंबर" ग्रंथ इसका एक पुष्ट प्रमाण है । कवि रघुराज सिंह ने काशी नरेश द्वारा रामभक्ति की प्रेरणा में इस काव्य को लिखा और इसे लिखने के लिए उन्होंने पूरी एक गोष्ठी जुटाई । और जैसा कि कवि स्वतः कहता है उसने अपने दरबारी कवियों की सहायता से इस राम-काव्य की रचना की । उसका कृतित्व इसमें कितना है, यह नहीं कहा जा सकता । कवि ने २३वें प्रबन्ध में उपसंहार करते हुए निवेदन किया है--

भाषा सुकवि सहायक मेरे । कहौं नाम मैं अब तिन केरे ।<br>
रसिक नरायन रसिक अखंडा । जग महं रघुपति भक्त उदंडा ।<br>
भाषा संस्कृत हूं निभनित । राम तत्व तजि और न जानत ।<br>
रसिक बिहारी राम पुजारी । राम सुतत्व धर्म धुरधारी ।<br>
द्विजबर श्री गोविन्द जिन्हि नामै । वात्सल्य रस राखत रामै ।<br>
महापात्र कवि सुमति किशोरा । बालगोबिंद विप्र कवि मोरा ।<br>
लिख्यो ग्रंथ संयुत मर्यादा । मम प्रधान हनुमान प्रसादा ।<br>
सब जुरि मिलि यह ग्रंथ बनायो । राम कृपा मम नाम लिखायो ।<br>
मैं मति मंद विदित अघखानी । ग्रंथ रचन की रीति न जानी ।

(राम स्वयंबर प्रबन्ध २३) ।

रामभक्ति से प्रभावित होकर और तुलसीदास ने "रामचरित मानस" द्वारा जिस रामभक्ति का आन्दोलन खड़ा किया, रघुराज सिंह ने यह बृहत् प्रयास किया । राम की परब्रह्म रूप में प्रतिष्ठा ही इस काव्य का अंतिम लक्ष्य है ---

भरौ राम मद गर्व अति, चंचल बुद्धि कुसंग ।
जो कछु होय भलो कबहुं, सो प्रभाव सतसंग ।

मुहिं अस जानि परत जग माहीं । राम सरिस कृपाल कोउ नाहीं ।
मुहि सम अघी अपावन मुख ते । राम स्वयंबर बिरच्यो सुखते ।
+ + + + +
कहौं सत्य करि राम दुहाई । रच्यो ग्रंथ केवल रघुराई ।।
(२३वां प्रबन्ध)

काशी में रामलीला हुआ करती थी । जिसे ऐसा कहा जाता है कि तुलसीदास ने ही आरम्भ करवाया था । काशिराज ईश्वरी प्रसाद के समय रीवां नरेश रघुराज सिंह ने जाकर वहां रामलीला देखी, और वहीं उन्होंने निश्चय किया "तुलसीदास कृत "राम चरित मानस" में रामकथा का जो अंश अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया गया हो, उसे विस्तार से कहने के लिए मैं अलग से एक काव्य लिखूं ।" इसके लिए प्रोत्साहन काशिराज ने दिया । इसके मूल में इस प्रकार रामभक्ति का आन्दोलन ही था —

तहां राम लीला को दरशन । लाग्यो करन राम रस सरसन ।
काशिराज तब मोंहि बुलाई । भास्यो सकल हेतु समुझाई ।
तुलसीकृत मह अति संक्षेपा । कहं लगि परी अधिक परिलेपा ।
तातें रचहु ग्रंथ यक ऐसो । तुलसीकृत रामायण जैसो ।
उक्ति युक्ति गोस्वामी केरी । बाल्मीकि की रीति निबेरी ।।
(२३वां प्रबन्ध) ।

ग्रंथ के आरम्भ में कवि इसी लक्ष्य का प्रकाशन करता है ---

रघुपति भक्त प्रधान, लखि उपजत अनुराग ।
यह सापन सब भांति तें, लहत सुमति बड़ भाग ।

कवि कथा का सूत्र बाल्मीकि रामायण से लेता है पर उसका विस्तार "तुलसीदास के "रामचरित मानस" की ही शैली पर ही होता है । धर्म और भक्ति की भावना को "मानस" की पद्धति पर अधिक बढ़ा-चढ़ाकर कहा गया है । परशुराम के प्रति राम की यह उक्ति बाल्मीकि रामायण के अनुसार नहीं है, "मानस" की शैली पर ही उसको परिबृंहण किया गया है ---

जप तप योग याग कबहूं नियम व्रत
ब्रह्मचर्य शम दम विप्र धर्म होइ रे ।
छोड़ि निज धर्म धरयो क्षात्रिन को धर्म पुन
बाण फरसी को धरि आयो कोप भोइ रे ।
हौं तौ रघुराज सुत ब्राह्मण बिचारि बचौं
नातौ पुनि चीन्ह न परैगो मुख धोइ रे ।
विप्र बध अघनास गावैं मोहिं बारे मुख
डारैं रघुवंसी माहिं कालहूं को जोइ रे ।

(२२वां प्रबन्ध) ।

## बंदीदीन दीक्षित

(वैक्रम २०वीं शताब्दी पूर्वार्ध)

बंदीदीन दीक्षित ने संवत् १९५१ में "विजय राघो खंड" प्रबन्ध काव्य की रचना आल्ह शैली पर की और राम चरित मानस के कथा के अतिरिक्त नयी उद्भावनाओं का समावेश उसमें किया । वैसे ग्रंथ में ७ काण्ड ही हैं पर प्रत्येक काण्ड उल्लासों में बंटा है । कथा में बंदी दीन दीक्षित की नयी कल्पनाएं इस प्रकार हैं---

(१) वन में राम-लक्ष्मण के मृगया खेलते समय इन्द्र द्वारा राम के लिए कमल में अमृत भेजना, राम लक्ष्मण का उसे पान करना (बा०का० १३५) ।

(२) विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण के स्थान पर दशरथ द्वारा कैकेयी की सम्मति से भरत शत्रुघ्न को भेजना ।

(३) जनकपुर में राम को देखने के लिए नागरिकों की व्याकुलता का दृश्य उसी प्रकार है जैसे कृष्ण की बंशी की टेर सुनकर समस्त गोपियां अपना काम काज छोड़कर उनकी ओर भागती थीं ।

(४) कलेवा के लिए चारों भाइयों को लक्ष्मी निधि घोड़े पर सवार होकर जनवासे में बुलाने जाते हैं ।

(५) चित्रकूट में भरत अयोध्यावासियों और सेना को देखकर लक्ष्मण का क्रोध । देवताओं की आकाशवाणी द्वारा उन्हें वास्तविक स्थिति का ज्ञान ।

(६) लंका काण्ड में राम द्वारा रामेश्वर (शिव लिंग) की स्थापना में यज्ञ क्रिया कराने के लिए रावण को बुलाना तथा यज्ञ कार्य के लिए सीता को मांगना ।

इन नवीनताओं में पहली और दूसरी कल्पनाएं ही लेखक की या तो अपनी है, या समसामयिक अन्य ग्रंथों की हैं । पांचवीं और छठीं उद्भावनाएं संस्कृत ग्रंथों से ली गयीं हैं । लेकिन हां, ये कथाएं "रामचरित मानस" में नहीं हैं, और तुलसी की राम कथा से इनमें नवीनता आ जाती है ।

किन्तु कहीं कहीं नवीनता कोरी कल्पना और आदर्श की महिमा ही रह गयी है और ऐसा मालुम पड़ता है कि भक्तों के झूठे चमत्कार की भांति कवि का चमत्कार दिखाना चाहता है । राम ने सेतुबन्ध पर शंभु की स्थापना रावण की विजय के लिए की थी । रावण उनके आग्रह पर स्वयं उनका पुरोहित बना था । उसे शंभु की स्थापना में रावण-विजय का संकल्प स्वयं पढ़ता था, पर स्वयं रावण इस संकल्प को हृदय से नहीं पढ़ सकता था और हृदय से संकल्प न पढ़ने पर यज्ञ और कार्य दोनों पूरे न होते । अतः रावण राम से कहता है ----सारा संकल्प तो मैं पढ़ लूंगा रावण-मारण हित इतना आप पढ़ियेगा ---

पढ़त संकलप को आयो जब रावण मारणार्थ यह काम
डिगै कदाचित जो मेरो चित रावण मारणार्थ यहि ठांम ।
औरक और पढ़ि जावों मैं तो तुम काज वादि ह्वै जायं ।

+ + +

रावण मारण-हित इतनो पद तुम निज मुख ते कह्यो उचार ।

यह रावण-का राम से यह कहना कि संकल्प में -"रावण-मारण-हित" इतना पद तुम पढ़ना --कवि की उक्ति-कल्पना में ठीक नहीं बैठता है और भोंड़ापन ही लाता है ।

भाषा में प्रवाह और प्रांजलता नहीं है, कवि ने मुहावरों और लोकोक्तियों के लाने का प्रयत्न किया है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि ने ग्रंथ को नवीन शैली, किन्तु लोक प्रिय आल्ह शैली में लिखा । आल्ह शैली में रामकथा को लिखने का नवल सिंह के बाद यह दूसरा प्रयास था ।

विवाह आदि के प्रसंग में सखियों के अशिष्ट परिहास के प्रसंग, कवि के ऊपर रसिक संप्रदाय के प्रभाव को लक्षित करते हैं । कवि के चरितों में उदात्तता नहीं आई है और कवि के पौराणिक पात्र कल्पित प्रतीत होते हैं

## "रघुनाथदास राम सनेही"

(संवत् १९११ में वर्तमान)

आपने संवत् १९११ में "विश्राम सागर" नाम से एक बड़ा काव्य लिखा जिसमें रामकथा का भी वर्णन है । इस ग्रंथ में भक्ति के चमत्कार की बातें और उपदेश ही अधिक हैं, काव्यत्व कम है, भाषा परिमार्जित है । काव्य क्षेत्र में तो नहीं, भक्तों के संप्रदाय में इसका आदर अधिक है । इस ग्रंथ में कुल ८९ अध्याय हैं, जिनमें ४७ अध्यायों तक कई पौराणिक और धार्मिक प्रसं हैं । १२ अध्यायों में कृष्ण की कथा है । अंतिम तीस अध्यायों में राम की कथा है । सम्पूर्ण ग्रंथ दोहा चौपाई की शैली में है । रामकथा का आधार "रामचरितमानस" न होकर वाल्मीकि"रामायण"है ।

यह ग्रंथ विक्रम की बीसवीं शताब्दी में लिखा गया । रघुनाथ दास राम सनेही स्वामी अग्रदास जी के शिष्य परम्परा की दसवीं पीढ़ी में आते हैं, स्वयं लेखक ने विश्रामसागर के निम्नांकित कवित्त में कहा है--

श्री रामानुज संप्रदाय द्वारा अग्रदास जू के तहां के महन्त भे गोबिंदराम जानिए।
तिनहीं के शिष्य संतदास तस्य कृपाराम जू के रामचरण पिछानिए ।
रामचरण जू के रामजन्न तस्य कान्हर भे कान्हर के शिष्य हरिराम को -
बखानिए ।
हरीराम जू के देवादास रामनाथ भाल देवादास जू के रघुनाथ मोहि जानिए ।।

कथा प्रसंगों की भावना में अनेक अंशों में इसका लेखक तुलसीदास से प्रभावित है । राम के वनगमन के समय ग्राम-वधुओं की यह आकुलता देखिए जो "रामचरितमानस", "कवितावली", "गीतावली" के इस प्रसंग से बहुत प्रभावित है--

एक अली लखि गइ निज गेहा ।
कहत सखिन से सहित सनेहा ।।
सखि एहि ग्राम पथिक द्वै आये ।
गौर श्याम छवि धाम सुहाए ।।
तिन संग सुन्दरि एक जेहि लखि लाजत जग मेव
चारि सुमन फल चारि पशु बिहंग चारि श्रुति देव ।
सुनि पुरजन सब देखन धाए ।
उतरे प्रभु जहं तहं चलि आए ।।
नख सिख सुभग सरूप निहारी ।
सीता ढिंग आई मृग नारी ।।
पूछहिं हे स्वामिनि सुकुमारे ।
ए दोउ बालक कौन तुम्हारे ।।
देवर लछमण कहेउ सिय बैननि ।
निज पति प्रभुहिं बताएहु सैननि ।।
कौसलपुर है इनकर धामा ।
नृप दसरथ के सुत अभिरामा ।।
कारण कौन फिरत बन मांहीं ।।
कोमल पद पद-त्रानहुं नाहीं ।।

सासु सबति कीन्हेहु उतपाता ।
दिय बन बर्ष सात अरु साता ।।
सुनि सिय बचन सकल बिलखानी ।
बोली बिधिगत जात न जानी ।।

श्री रामनाथ ज्योतिषी

रामचन्द्रोदय काव्य:-

ब्रजभाषा में लिखा हुआ यह काव्य केशवदास की "रामचंद्रिका" पद्धति की रचना है जिसमें पांडित्य प्रदर्शन और काव्य-कौशल दोनों समान तुला पर हैं । इसकी रचना संवत् १९९१ वि० में हुई । कविवर रामनरेश त्रिपाठी ने इस काव्य की भूमिका में लिखा है---"इस समय श्री रामचंद्रोदय काव्य हमारे सामने है । आप कहेंगे कि संस्कृत और हिन्दी में रामचरित सम्बन्धी अनेक ग्रंथ के रहते हुए इस ग्रंथ के लिखने की क्या जरूरत थी । इसकेलि मैं ऊपर लिख चुका हूं कि कवि प्रत्येक को अपनी मौलिक दृष्टि से देखने के लि स्वतंत्र है । इस ग्रंथ में रामकथा कहने के बहाने कवि ने अनेक ऐसे विषयों पर प्रकाश डाला है जिन पर अभी तक किसी भी हिन्दी कवि ने इतनी सूक्ष्मता से विचार नहीं किया था । हमारी प्राचीन और अर्वाचीन सामाजिक अवस्था के बीच में कितना बड़ा बिन्ध्याचल पहाड़ आ खड़ा हुआ है । इसका दिग्दर्शन कवि ने अपने काव्य में कराया है । रामकथा का आश्रय लेकर कवि ने मनुष्य जीवन के अनेक प्रश्नों का गम्भीर और सार्थक विवेचन किया है ।"

काव्य में १६ कथाएं (सर्ग) हैं । इसमें विविध छंदों का प्रयोग हुआ है प्रबन्ध का निर्वाह सफल नहीं है । संवादों के लिए नाम अलग से देना पड़ा है ।

ग्रंथ की सातवीं कला तक राम-विवाह की कथा कही गयी है और आगे षड्ऋतु वर्णन । राम का विभव, धर्म नीतितथा वैद्य विद्याओं के वर्णन में ही सारा काव्य समाप्त हो गया है । एक प्रकार से यह काव्य रसिक संप्रदाय के राम का चरित काव्य है जिसमें बनवास और युद्ध के प्रसंग नहीं आये हैं ।

विवाह के बाद कवि पूर्णकाम हो जाता है ---

आगे चलीं जोतिसी लली जू मंद मंद गति
पाछे रघुचंद भीरू भांवरी भराई मैं ।
घूमती तिरीछे नैन देखतीं मयंक-मुख
बहुरि सकोचि जातीं प्रेम सुघराई मैं ।।

आठवीं कला में राम और सीता के (अष्टयाम की चर्चा) उसी रसिक संप्रदाय की परंपरा का पालन है । पूरा काव्य पढ़ने पर हमारा ध्यान धर्म शास्त्रीय चर्चाओं तथा भगवान राम के विभवों की उपदेशात्मक झांकी पर टिक जाता है । नीति और धर्म के उपदेशों तथा वर्णनों में कवि ने "रामचरित - मानस" का ही अनुगमन किया है और उसी शैली में अपनी उक्तियां कहीं हैं:-

लोक बेद बिधि बिबिध बिधि,
करि सुभ समय बिचारि ।
गुरुपाछे सुत सहित नृप,
चले संभु उर धारि । (पृ०१५०)

## बिहारीलाल विश्वकर्मा "कौतुक"

कौतुक जी का "कौशलेन्द्र कौतुक" प्रबन्ध १९९३ वि० में प्रकाशित हुआ । यह ग्रंथ यद्यपि प्रबन्ध शैली पर ही लिखा गया है, परन्तु वस्तुतः यह तुलसीदास की कवितावली की कोटि की रचना है जिसमें कथा सूत्र अविच्छिन्न नहीं रहता परन्तु कथाक्रम से प्रत्येक प्रसंग पर कुछ न कुछ कह दिया जाता है । "कवितावली" में रामकथा के प्रत्येक प्रसंग पर कालक्रम से कवित्तों, सवैयों की रचना हुई है, एक तरह से स्फुट काव्य होकर भी यह प्रबन्ध काव्य है, ठीक उसी तरह ही रचना "कौशलेन्द्र कौतुक" है । "कौशलेन्द्र कौतुक" में "कवितावली" की अपेक्षा स्फुट काव्यत्व कम है, प्रबन्धत्व ही ज्यादा है । और कवितावली से यह आकार में दुगना है । इसमें "कवितावली" की तरह किन्तु उससे अधिक विविध छंदों का प्रयोग हुआ है । भाषा पर कवि का पूरा अधिकार है । भाषा ब्रज-भाषा है । शैली में प्रवाह और भावों में प्रांजलता है ।

कवि तुलसीदास के "रामचरित मानस" से प्रभावित है और रामभक्ति आन्दोलन की परंपरा की ही परोक्ष रूप में एक कड़ी है । तुलसीदास की कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए वह अंतिम काण्ड में कहता है :-

कछुक प्रभुति करतूति है न मेरी यह ।
"कौशलेन्द्र कौतुक"प्रसाद तुलसी को है ।

+ + +

अपने ग्रंथ का प्रारूप कवि इस रूप में प्रकट करता है -

विरचे विचित्र यामें विविध प्रबन्ध छंद
मधुर मनोहर रहस्य सियपी को है ।
विपुल प्रसंग अघ-निग्रह को संग्रहित,
सत्य धर्म नीति को निबाह विधि नीको है ।
भरियत भदेस भाव पूरन मृदुल मानो
टेंढो बेंढो मोदक संवारों धनोछी को है ।
सांची सब भांतिन सो विगत विषाद यह
कौशलेन्द्र कौतुक प्रसाद तुलसी को है ।

(उत्तरकाण्ड उपसंहार) ।

"कौशलेन्द्र कौतुक" के उत्तर काण्ड में संत, असंत, धर्म, अधर्म आदि विषयों की चर्चा "रामचरित मानस" के उत्तरकाण्ड की पद्धति पर की गयी है । भाषा और शैली की दृष्टि से ग्रंथ महत्व का है ।

रामकथा को लेकर प्रबन्ध काव्यों के लिखने की यह परिपाटी भक्त और कवि बनने का एक उपलक्षण सा हो गया । जो भी रामभक्त, हुआ, जिसमें थोड़ा बहुत कवि का स्फुरण रहा उसने एक रचना रामकथा पर अवश्य लिख दी । इस तरह के अनेक अप्रसिद्ध ग्रंथ बस्तों में बंधे पड़े होंगे, जो खोज विवरणों में भी नहीं आ सके हैं । अब तक रामकथा पर ऐसे प्रबन्धों को लिखने की परम्परा अक्षुण्ण रूप से चल रही है ।

बंदीदीन दीक्षित का "विजयराघोखण्ड" काव्य रामकथा में अनाप-शनाप परिवर्तन ही कहा जायगा । ऐसे काव्यों से जन-मानस में रामकथा के

संबंध में संभ्रम ही पैदा होता है । जैसे समय बीतता गया रामकथा पर अनेक ग्रंथों की रचना होती रही वैसे -वैसे परवर्ती रामभक्तों के लिए यह एक समस्या बनती गई कि वे कैसे कोई नयी वस्तु रामकथा में लाकर उपस्थित करें जिससे उनकी मौलिकता प्रकट हो । रामकथा का कोई प्रसंग शेष तो था नहीं अतः पुराण आदि में रामकथा से संबंधित अप्रसिद्ध प्रसंगों को उपस्थित करने की मनोवृत्ति इन राम भक्त कवियों में आई । "विजयराघोखण्ड" उसका सटीक उदाहरण है ।

प्रस्तुत प्रसंग में चर्चित महत्वपूर्ण प्रबन्धों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकाशित प्रबन्ध ये हैं:-

१- रामसुधा (बूद चन्द्र जनकृत) १८८६ ई० ।

२- रामदर्पण (बुद्धाबाई कृत ) १९६६ वि० ।

३- पंचदेव रामायण (पंचदेव कृत) ।

४- श्रीराघवगीत (प्रयाग नारायण कृत) ।

५- रामकीर्तन अथवा वीर रामायण(महावीर प्रसाद त्रिपाठी कृत)।

## रामकथा को लेकर रामलीला सम्बन्धी अभिनेय काव्यों की परम्परा

### (संवत् १६६७ - १९७० वि०)

तुलसीदास के रामचरित मानस के बाद रामकथा को अभिनीत करने की अभिरुचि ने बहुत जोर पकड़ा और उस दृष्टि से नाटक-शैली (संवाद के रूप) में अनेक रचनाएं कवियों ने की । केशवदास की रामचंद्रिका में जो पात्रों का नाम संवाद से अलग पाया जाता है उसमें अभिनेय काव्य की रुचि का ही प्रभाव स्पष्ट होता है । अभिनय के स्वरूप की केवल संवाद में इतिश्री समझी जाती थी । इस शैली की प्रसिद्ध रचनायें ये हैं:-

प्राणचन्द्र चौहान(संवत् १६६७) का हनुमन्नाटक ।

हृदयराम (संवत् १६८० ) का हनुमन्नाटक ।

विश्वनाथ सिंह रीवां नरेश (संवत् १७७८ से १७९७ तक वर्तमान) का "आनंद रघुनंदन" नाटक ।

राम (जन्म संवत् १७३०) का हनुमान नाटक

इन ग्रंथों में हृदयराम का हनुमन्नाटक संस्कृत के "हनुमन्नाटक" का ही छायानुवाद है ।

रीवां नरेश विश्वनाथ सिंह ने "आनंद रघुनंदन" नाटक के अतिरिक्त राम साहित्य पर और भी रचनाएं लिखी हैं:-

"अष्टयाम आह्निक", "गीता रघुनंदन", "शान्तिका", "रामायण", "गीता रघुनंदन"प्रामणिक", "विनय पत्रिका की टीका", "रामचंद्र की सवारी", "आनंद रामायण", "गीतावली पूर्वार्ध", "संगीत रघुनंदन" ।

इन ग्रंथों में से अधिकांश वर्णनात्मक प्रबन्ध हैं, शेष संगीत काव्य और स्फुट रचनाएं हैं । "अष्टयाम आह्निक" और "रामचन्द्र की सवारी", वर्णनात्मक प्रबन्ध मात्र है पर महाराज विश्वनाथ सिंह की ख्याति उनके "आनंद रघुनंदन" नाटक के कारण है । इसे हिन्दी के पहले नाटकों में भी माना जाता है । सर्व प्रथम नाटक के नाम पर होने वाली रचनाओं में इस नाटक में ही गद्य का हीं प्रयोग हुआ । यह गद्य ब्रजभाषा गद्य है । पर गद्य में संवादों के देने से इसकी विशेषता बढ़ गयी ।

तुलसीदास के "रामचरित मानस" के बाद राम चरित को रंगमंच पर लाने की परंपरा चली और उसके लिए अभिनेय काव्यों की रचना कवियों ने शुरू की, उन रचनाओं में "आनंद रघुनंदन" शैली का विकसित विन्दु है । शुक्ल जी ने लिखा है---"पहले कहा जा चुका है कि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समय की सारी प्रचलित काव्य पद्धतियों पर रामचरित का गान किया केवल रूपक या नाटक के ढंग पर उन्होंने कोई रचना नहीं की । गोस्वामी जी के समय में ही उनकी ख्याति के साथ साथ रामभक्ति की तरंगे भी देश के भिन्न-भिन्न भागों में उठ चलीं थीं । अतः उस काल के भीतर नाटक के रूप में कई रचनाएं हुई ।[1]" ऐसी रचनाओं की विकसित शैली ही "आनंद रघुनंदन" नाटक है ।

## वर्णनात्मक प्रबन्ध काव्य (संवत् १६४२ से १९५०)

रामचरित को लेकर वर्णनात्मक प्रबन्ध काव्यों की रचना का सूत्रपात

---

१- हिन्दी साहित्य का इतिहासः पृ० १६७ ।

प्रसिद्ध रामभक्त नाभादास के अष्टयाम से होता है । ऐसी रचनाओं में राम के दरबार, उनके स्वरूप, दिन चर्या तथा उनसे संबंधित अन्य विषयों और वस्तुओं का वर्णन मात्र होता है, जिनमें कवित्व कम और वर्णन ही प्रधान रहता है ।

नाभादास जी ने दो "अष्टयाम" बनाये हैं । एक ब्रजभाषा गद्य में और दूसरा "रामचरित मानस" की शैली पर दोहा चौपाइयों में । इनमें भगवान राम के आठ प्रहर की दिन चर्या का वर्णन है । उदाहरण--

(गद्य) तब श्री महाराज कुमार प्रथम श्री वशिष्ठ महाराज के चरन छुई प्रनाम करत भए । फिरि ऊपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए । फिरि श्री राजाधिराज जू को जोहार करिकै श्री महेन्द्र नाथ दशरथ जू के निकट बैठत भए ।

(पद्य)

अवधपुरी की शोभा जैसे । कहि नहिं सकहिं शेष श्रुति तैसी ।
रचित कोट कल धौत सुहावन । विविध ब रंग मति अति मन - भावन ।
चहुं दिसि विपिन प्रमोद अनूपा । चतुर बीस जो जस रस रूपा ।
सुदिसि नगर सरजू सरि पावनि । मनिमय तीरथ परम सुहावनि ।
विगसे जलज, भृंग रस फूले । गुंजत जल-समूह दोउ कूले ।

परिखा प्रति चहुं दिसि लसति, कंचन कोट प्रकाश ।
विविध भांति नग जगमगत, प्रति गोपुर पुरवास[१] ।।

ऐसे वर्णनात्मक ग्रंथों की रचना में उन कवियों ने भी ध्यान दिया । जिन्होंने बड़े प्रबन्ध काव्य लिखे । महाराज विश्वनाथ सिंह, महाराज रघुराजसिंह आदि ने भी इस शैली में रचनाएं कीं ।

नाभादास के अष्ट याम के अतिरिक्त इस शैली की अन्य प्रसिद्ध रचनाएं हैं:--

१- अष्टजाम - कुमान ।

---

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास: पृ० १६६ ।

कवियों
ान

२- रामचन्द्र की सवारी --रीवां नरेश विश्वनाथ सिंह ।

३- जानकी शरण मणि--जनकराज किशोरी शरण ।

४- सत्योपाख्यान ----ललकदास ।

५- रामाष्टयाम --- रघुराजसिंह ।

६- रामलीला प्रकाश-- सरदार ।

आगे चलकर ऐसी रचनाओं का झुकाव रसिक साधना के मेल में अधिक हो गया और रसिक संप्रदाय के कवियों की कृतियों में इस शैली का अन्तर्भाव हो गया ।

वस्तुतः रामभक्ति के प्रचार के साथ जैसे - जैसे भक्ति और साधना के नाम पर मंदिरों में भगवान की पूजा के लिए अनेक सामग्रियां और साज-सज्जा इकट्ठा किये जाने लगे, मन्दिर भगवान राम के राजसी दरबार जैसा होने लगा, मंदिरों में सजावट और राजसी विभवों की उपलब्धि उनकी महत्ता की कसौटी हो गयी, राम की पूजा में, राम लीला में, राजाओं के राजा राम के सोने चांदी के सजाव सजाना भक्तों की पूजा का एक अंग बन गया, राजाओं ने ऐसे उपकरणों के जुटाने में अपना अहोभाग्य समझा, उसी के साथ ऐसे वर्णनात्मक काव्यों की रचना का भी सूत्रपात हुआ । भगवान राम की पूजा अर्चा कर ऐसी वस्तुओं का वर्णन करना कवि-भक्तों की रचना का एक प्रतिपाद्य हो गया। "रामचन्द्र की सवारी" जैसी रचनाएं इसका उदाहरण हैं । बाद में ऐसी रचनाओं की प्रवृत्ति इन्हीं परिस्थितियों के कारण "रसिक संप्रदाय" के अधिक निकट हो गयीं । रसिक साधना के विकास में इसे भी एक उपकरण कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

## राम कथा के अंगभूत चरितों पर लिखे काव्य

### (संवत् १६९६- २०१८ वि०)

रामभक्ति के प्रचार के साथ साथ राम भक्तों की भक्ति का प्रचार भी बढ़ा । रामकथा के अंगभूत चरित हनुमान तथा लक्ष्मण- विशेष रूप से कवियों की रचना के आधार बन गये । इनमें भी हनुमान जी की भक्ति का प्रचार जितने जोर-शोर से हुआ, मंदिरों में उनकी पूजा की ओर जैसे-जैसे लोक अभि-

रुचि जागृति होती गयी भक्ति भाव से प्रेरित होकर राम भक्ति कवियों ने हनुमान जी के वीर चरित का गायन भी बहुतायत से किया । हनुमान जी पर की गयी रचनाएं उनकी भक्ति की लोकप्रियता की प्रतीक हैं, लक्ष्मण के चरित को लेकर लिखे ग्रंथ अपेक्षाकृत बहुत कम हैं ।

हनुमान्-

हनुमान जी को लेकर मंत्र सिद्धि की रचनाएं भी तुलसीदास के बाद हुईं । "हनुमान चालीसा" नाम की प्रसिद्ध रचना, जिसका अब तक बहुत अधिक प्रचार है, तुलसीदास की कृति कही जाती है । उसके बाद "बजरंग बाण", "संकट मोचनाष्टक" की भी रचना हनुमान-भक्तों की है जो मंत्र-सिद्धि की ~~कामना पर~~ रचनाएं हैं । "बजरंग बाण" पर "सावर मंत्र", "हनुमत्कवच", "हनुमान बडवानल" जैसे स्तोत्र ग्रंथों की रचना-शैली का प्रभाव बहुत स्पष्ट है, "बजरंग बाण" निश्चित रूप से मंत्र-तंत्र परक उपासना की दृष्टि से लिखी गयी रचना है । "साबर मंत्र", "हनुमत्कवच" आदि की तरह अर्थहीन ध्वनियों का समावेश इस रचना में है--

हन् हन् हनुमन्त हठीले
बैरिहिं मारि ब्रज की कील

(बजरंग बाण) ।

ॐ एहि एहि एहि ॐ हं ॐ हं ॐ ह ॐ हं
ॐ नमो भगवते श्री महा हनुमते- - - - -"

(हनुमद् वड़वानल)

इसके अतिरिक्त काव्यत्व की दृष्टि से भी हनुमान जी के वीर चरित को लेकर कई रचनाएं कवित्त-सवैया की शैली में लिखी गयीं । इनपर तुलसीदास के "हनुमान बाहुक" का प्रभाव लक्षित होता है । हनुमान के चरित पर रचना करने वाले जिनकी रचनाएं प्राप्त हैं, प्रमुख कवि हैं--

(१) भगवंतराय खीची--ये जिला फतेहपुर के असोथर के राजा थे । कहा जाता है कि इन्होंने "कवितावली" की शैली पर कवित्तों में सातों काण्ड रामायण की रचना की थी, पर वह ग्रंथ प्राप्त नहीं है ।

हनुमान जी की प्रशंसा में इनके पचास कवित्त मिलते हैं: "हनुमत पचीसी" नाम से इनकी एक दूसरी रचना भी मिलती है जिसका रचना - काल १८१७ वि० है । कविता की शैली ओजस्विनी है--

विदित बिसाल ढाल भालु कपि- जाल की है
ओट सुरपाल की है तेज के कुमार की ।
जाही सौं चपेटि कै गिराये गिरि गढ, जासौं
कठिन कपाट तोरे लंकिनी सौं मार की ।
भनै भगवंत जासौं लागि लागि भेंटै प्रभु
जाके त्रास लखन को छुभिता कुमार की ।
ओड़े ब्रहम अस्त्र की अवाती महाताती बंदौं
युद्ध - मद-माती छाती पवन-कुमार की ।।

(२) गणेश - ये नरहरि बंदीजन के वंश के गुलाब कवि के पुत्र थे । संवत् १८५०-१९१० वि० तक वर्तमान रहे । काशी नरेश उदितनारायण सिंह और ईश्वरी प्रताप नारायण सिंह के आश्रित थे । वैसे इन्होंने बाल्मीकि रामायण के कुछ अंश का अनुवाद भी किया था । पर "हनुमत पचीसी" इनकी प्रसिद्ध रचना है । इसमें छप्पय और कवित्त प्रयुक्त हुए हैं ।

ग्रंथ के आरम्भ का छप्पय है--

आनन परम रसाल बाल दिनकर कर पावन ।
विस्तृत उरसि बिसाल दौर दंडौं हर कानन ।
जुगल पंज बलवंत भाव गंजत पंचानन ।
गनि सकत नहिं रसा दरत अवि पसा तरानन ।
पूरि पूरि तेज लंगूर करि फूंकि लंक दानव दहत ।
त्रय ताप हानि हनुमान सोइ आनि ध्य न काहे न गहत ।

(३) कुमान -- ये चरखारी नरेश महाराज विक्रम साहि के आश्रित थे-। इनका कविता-काल संवत् १८३० से संवत् १८८० तक माना जाता है ।[1] इन्होंने हनुमान जी के चरित पर तीन काव्य लिखे हैं:--

---

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास: पृ० ४२० ।

(१) हनुमान नख शिख ।

(२) हनुमान पंचक ।

(३) हनुमान पचीसी ।

और लक्षमण के चरित पर इन्होंने एक काव्य लिखा है--"लक्ष्मण शतक" जिस में मेघनाद और लक्ष्मण के युद्ध का फड़कते हुए शब्दों में अच्छा वर्णन किया गया है । इनका कविता में उपनाम "मान" था । "लक्षमण शतक" से एक कवित्त का उदाहरण दिया जाता है --

आयौ इंद्रजीत दसकंध कौ निबंध बंध
  बोल्यौ रामबंधु सों प्रबन्ध किरवान कौ ।
कौ है अंसुमाल कौ है काल बिकराल,
  मेरे सायुहि भऐल रहे मान महेसान कौ ।
तू तौ सुकुमार यार लखनकुमार ! मेरी
  मारबे कुमार कौ सहैया घमासान कौ ?
बीर न चितैया, रनमंडल रितैया, काल
  कहर बितैया हौं जितैया मघवान कौ ।।

(४) हरितालिका प्रसाद द्विवेदी - ये जिला रायबरेली के भोजपुर गांव के निवासी थे । इन्होंने हनुमान जी की स्तुति और विरुदावली में ९ कवितों की रचना की है । ग्रंथ का आरम्भ इस सवैया से होता है -

श्री मिथिलेस सुतापति को लखि छिप्रहि पाइपियादे पधारे ।।
पीठ चढ़ाइ धराधर पै चलि धार धराय बहोरि जोहारे ।
बालि बली को बली बल भ्जारि अनंद सुग्रीव के राज संवारे ।
जै जै श्री रघुनंदन इत जै अंजनी नंदन बाय दुलारे ।

उदाहरण के लिए यह छंद पर्याप्त होगा ।

(५) लक्ष्मीनारायण सिंह ईश- काशी के चौधरी लक्ष्मीनारायण सिंह ईश ने "लंका-दहन" नाम से ९ सर्गों का काव्य लिखकर हनुमान के वीर चरित पर एक बड़ी और ओजस्विनी रचना दोहा, कवित्त और सवैया में की है । ग्रंथ का रचना-काल सं० २००२ वि० है । छंद भाव, भाषा और अलंकार से

अलंकृत उत्तम कोटि की हैं । हनुमान और राम का यह संवाद देखिए--

सुनि कपि मुख तें सिया की दुःखदायी कथा
आए भरि लोचन बिसाल रघुबर के ।
हेरत ही औचक फणीन्द्र कुल केहरि के
प्रबल प्रचंड दोर दंड जुग फरके ।
बोले कर जोरि "नाथ दुख उर आनौ कहा,
मानौ जौ कहौ तौ अस्त होत दिनकर के ।
ल्याऊं गढ लंकहि उखारि, जानकी के हेत
सहित सहाय खल खेचर निकर के ।"
बोले राम-"एहो कपि तुम सब लायक हौ
मेरे प्रिय पायक सहायक अनन्य हौ ।
संभव असंभव को सबिधि सपैमा एक
बिस्व बीच जन्म लिए ही पर जन्य हौ ।
दुख दल हारक संहारक दनुज बंस
ज्ञानिन गुनिन मैं जनाए अग्रगण्य हौ ।
जायौ जेहि कोख ते सजायो ताहि गौरव तैं
धरम धुरीन धीर तुम धन्य हौ । १।२३-२४।।

लंका-दहन की प्रबन्ध - कल्पना वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड के आधार पर हुई है, जैसा कि कवि ने मंगलाचरण में स्पष्ट कहा है--

"ईशहिं ध्याइ, कपीस को गाइ,
रजायस आयस अंतर ही को ।
चाहत कीस कथा लिखिबौ गहि कै
प्रथा आदि कबीक कहीबी । १०।

भक्ति भाव और मुक्ति कल्पना की प्रेरणा इस ग्रंथ की रचना के मूल में है --

सोई अवतार सरकार की सराहौं सदा
जासों कुलिसार को प्रसार होय जग मैं
जाके पदपात के पिछौरे परिलोक बीच
पावैं गति रोधना विमूढ़ व गूढ़ मग मैं ।

१।३६।।

(६) ब्रह्माश्रम- स्वामी ब्रह्माश्रम ने संवत् २०१८ में "हनुमान हृदय" नाम से ३३ कवित्त सवैयों का एक ग्रंथ लिखा, जिस पर हनुमान बाहुक की शैली की छाप है पर जिसका प्रबन्ध अब तक में लिखे सभी हनुमच्चरित -सम्बन्धी काव्यों से विलक्षण है । ग्रंथ की भूमिका में हनुमान-हृदय के प्रबन्ध को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है ।

विंध्याचल के जंगल में पीड़ित एक संत कैलाश के कुंज में रामचरित का गान करते हुए हनुमान को देखता है और उन्हें अपनी रक्षा के लिए पुकार रहा है । उसी की विनय के कवित्त "हनुमान हृदय" में है, हनुमान अंत में उसे पहुंच कर कृतकृत्य करते हैं । कवित्तों में कवि की मौलिकता स्पष्ट है । हनुमान जी के स्वरूप वर्णन के बिम्बग्राही दो कवित्त देखिए--

को विदार - कोरक - से बाहु है विराजमान,
बन्य अक्ष माल लसै उर में गदाधारी के ।
शोभित है जटाजूट पारिजात मंजरी से,
बाकी ज्यों तिलक चारू, भौंह धार बारी के ।
लोचन हैं गीले लाल, ताजे फूले वारिजात
ब्रह्मरस मुसकान ब्रह्म छवि हारी के ।
राम भाव में रंगीले, तनु ताण्डव सुशीले,
मेरो नैन उन्मीले ऐ रूप ! नृत्यकारी के ।

+ + + +

जयति बंकिम भौंह, गोल उन्नत ललाट
केश कुंचित पिंशगी जाल ज्यों दामिन की
शोभित तिलक भाल, बाहु बक्ष है विशाल
पिंग मुति नैन मुदे दीठि दामकिन की ।

हेम के वदन जय जय नख बज्रिन की ।

गिरि कंध बीर वन्ध तेरो रूप पद्मवन

गिरा गिरै रस-अर्थ, अर्थ के अलिन की ।

हनुमान जी पर वर्णित अन्य रचनाओं के नाम हैं--

रायमल्ल पाण्डे-- हनुमच्चरित्र १६९६ वि०

राम -- हनुमान नाटक १७३० वि०

सरदार -- हनुमत भूषण १९३५ वि०

## रामचरित पर स्फुट रचनाएं

कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने भक्ति-भाव से प्रेरित होकर राम-कथा पर स्फुट रूप से कवित्त सवैयों की रचना की हैं । इनमें सेनापति का नाम महत्वपूर्ण है । राम विषयक उनकी रचनाएं उक्तियां स्फुट रूप से उनके "कवित्त रत्नाकर" में संगृहीत हैं । इन्होंने "कवित्त रत्नाकर" की रचना संवत् १७०६ में की । ये अनूपशहर के रहने वाले थे । रामचरित संबंधी इनके लिखे कवित्तों की संख्या लगभग ६० होगी । ये कवित्त बहुत ही ओज-पूर्ण हैं । अंगद के दृढ़ संकल्प का यह वर्णन देखिए--

बालि कौ सपूत, कपि-कुल -पुरहूत, रघु-

बीर जू कौ दूत, धारि रूप बिकराल कौं ।

जुद्ध-पद गाढ़ौ पाउं रोपि भयौ ठाढ़ौ, सेना-

पति बल बाढ़ौ रामचन्द भुवपाल कौ ।

कच्छपि कहलि रह्यौ, कुंडली टहलि रह्यौ

दिग्गज दहलि, त्रास पर्‌यौ चकचाल कौं

पाउं के धरत अति भार के परत, भयौ

एकै है परत मिलि सपत-पताल कौं ।

४थीं तरंग।५५

## गद्यात्मक रचनाएं-

खड़ी बोली गद्य के आविर्भाव काल में रामचरित को लेकर तीन

रचनाएं हुई :--

१- राम प्रसाद निरंजनी ने "भाषा योग वाशिष्ठ" लिखी ।

२- दौलतराम - ने पद्मपुराण को गद्य में अवतरित किया जिसमें रामचरित का अंश भी आता है ।

३- सदल मिश्र ने "रामचरित" नाम से रामकथा का ग्रंथ लिखा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास के बाद राम कथा को लेकर हिन्दी के अवधी क्षेत्र के कवियों ने बराबर नयी नयी रचनाओं से हिन्दी भंडार समृद्ध किया । सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि शैली, विधा, तथा विषय की दृष्टि से इन रचनाओं में अनेकता आती रही है, यही इस प्रयास की सबसे बड़ी विशेषता है । प्रबन्ध काव्य, खण्डकाव्य, नाटक, चरित वर्णन, स्फुट काव्य सब प्रकार की रचनाएं इस परंपरा में हुई हैं और जब गद्य का आविर्भाव हुआ तो उसमें भी रामकथा को लेकर हमारे लेखक आए, रामकथा की लोकप्रियता और रामभक्ति का आन्दोलन ही इसके मूल में सर्वत्र अनुप्रेरणा देता रहा, इसमें संदेह नहीं ।

## तुलसीदास के अनन्तर रामकाव्य का मध्ययुग
### (२) मधुराभक्ति प्रमुख

### राम साहित्य में रसिक संप्रदाय और उसका कृतित्व

### रसिक - संप्रदाय का स्वरूप

रसिक संप्रदाय की रामभक्ति तुलसीदास के रामचरित मानस में निरूपित रामभक्ति से एक भिन्न दिशा में आविर्भूत और पल्लवित हुई है । तुलसीदास की रामभक्ति और रसिक संप्रदाय की रामभक्ति का उद्देश्य तो एक कहा जा सकता है पर उनकी साधना और उनके सिद्धान्त नितान्त विपरीत हैं । रसिक संप्रदाय की इस भक्ति का इतिहास तुलसीदास के आविर्भाव से कुछ पूर्व का है । ऐसा समझा जाता है कि यदि तुलसीदास के "राम चरित मानस" की रचना न हुई होती तो यह रसिक संप्रदाय तुलसीदास के काल में ही अधिक पल्लवित हो जाता । "रामचरित मानस" के प्रचार ने इसके विकास को अवरुद्ध किया और इस प्रकार अवरुद्ध किया कि दो शताब्दी बाद भी इसका प्रचार-प्रसार अयोध्या और रामतीर्थों तक ही सीमित रहा और छिटपुट स्थानों में ही इस संप्रदाय के इने गिने महात्मा ही यह रहस्यमयी साधना करते रहे । लोक जीवन के अनुकूल यह नहीं प्रमाणित हुआ ।

इनका जीवनदर्शन, "विषस्य विषमौषधम्" के सिद्धान्त पर आधारित है । प्रत्येक भक्त का लक्ष्य इन सांसारिक बाधाओं से मुक्ति ही है । सांसारिक बाधाएं प्रत्येक साधक के मार्ग में एक समस्या बन कर आती हैं । जिससे भक्त अपने भगवान के पास में नहीं पहुंच पाता, पहुंच भी जाता है तो टिक नहीं पाता । रसिक संप्रदाय ने सांसारिक भोगों को ही प्रकारान्तर से अपनी साधना का मार्ग बना लिया । डा० भगवती प्रसाद सिंह ने अपनी पुस्तक में इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है --

"रसिक भक्तों का आचार-विचार निर्मल और पवित्र था । सांसारिक

के प्रपंचों से विरक्त होकर ये भक्त, दम्पति(राम-सीता) के दिव्य शृंगार में रस लेते थे और उसे भक्त की रसभूति का प्रसाद समझते । इनका सारा समय, आराध्य के नाम, रूप, लीला और धाम के चिंतन में बीतता था । साधारण दृष्टि से सांसारिक जीवन में सरसता के जितने उपकरण हो सकते हैं, इन भक्तों के साधनात्मक जीवन में परिष्कृत और सूक्ष्म रूप में वे सभी विद्यमान थे । उपास्य को जिस रूप में चाहें, पूजने की उन्हें स्वतंत्रता थी । आरम्भ में ही एक नाता जोड़कर उसका आजन्म निर्वाह करना इनकी साधना का मूल उद्देश्य होता था[1]।"

ये सम्बन्ध निम्न प्रकार के होते थे --१- सखी भाव का सम्बन्ध, २- सखाभाव का संबंध, ३- दासभाव का संबंध, और ४-वात्सल्य भाव का सम्बन्ध ।

इनमें सखीभाव का सम्बन्ध जितने व्यापक रूप से प्रचारित हुआ, उतने अन्य सम्बन्ध नहीं । सखी भाव का अर्थ है सीता की सखी अपने चित शरीर को सीता की सखी मानकर सीता-राम की सेवा में अपने को लगाना तथा युगल मूर्ति के ध्यान और अर्चना में अपने को अर्पित कर देना । सखियों के विविध वर्गों और भेदों के अनुसार सेवा-कार्य को अपनाते हुए युगल सरकार (राम-सीता) के विहार में अपनी सेवाएं अर्पित करना । इस प्रकार के भक्तों की साधना है ।

यहाँ मैं डा० भगवती प्रसाद सिंह के ग्रंथ से ही सखी सम्बन्ध का संक्षिप्त परिचय दे रहा हूं जिससे इस साधना के प्रकार पर थोड़ा प्रकाश पड़े सखियों की सात प्रकार की अवस्था होती है --

१- मधुर सखी -- ६ वर्ष से नीचे
२- मंजरी सखी-- आदि मंजरी ६ वर्ष की
मध्य मंजरी ७ वर्ष की
अंत मंजरी ८ वर्ष की

---

१- रामभक्ति में रसिक संप्रदाय पृ० ११९ ।

३- मुग्धा सखी - आदि मुग्धा ९ वर्ष की
मध्य " १० वर्ष की
अंत " ११ वर्ष की

४- वयः संधिनी सखी - ११$\frac{१}{२}$ वर्ष की

५- मध्य सखी - आदि मध्या १२ वर्ष की
मध्य " १३ वर्ष की
अंत " १४ वर्ष की

६- प्रौढ़ा सखी - आदि प्रौढ़ा १५ वर्ष की
मध्य प्रौढ़ा १६ वर्ष की

७- नायिका - जिनकी आयु १६ वर्ष के ऊपर हो ।

वर्ग-निर्णयः-

१- मिथिला से सीता जी के साथ आयी हुई निमि वंशी सखियां
२- अवधपुरी की रघुवंशी सखियां

संप्रदाय में प्रथम वर्ग का ही आधिक्य है ।

सेवा-प्रकारः-

रघुवंशी सखियों की निम्नांकित सेवाएं हैं---

संगीत सेवा, पुष्पाभूषणसेवा,
ताम्बूल सेवा, सेज बिछाने की सेवा,
वस्त्र सेवा, दर्पण सेवा,
आभूषण सेवा, सुगन्ध सेवा,
व्यंजन सेवा, संरक्षण सेवा,
अंजन सेवा, . मुर्छल सेवा,
अंगराग सेवा, छत्र सेवा,

व्यजन सेवा, चंवर सेवा ।

युगल सरकार के विहार के समय सेवा करने वाली सखियों के वर्गः

१- मंजरी- युगल सरकार के विहार में संकोच व्यवहार करने वाली ।

२- सखी - युगल सरकार के रस केलि में आत्यन्तिक अभाव वाली ।

३- अली - युगल सरकार की परस्पर केलि में धृष्टता करने वाली ।

४- सहचारी- युगल सरकार की विहार लीला में निस्संकोच भाव से आने जाने वाली ।

५- किंकरी- युगल सरकार की रासलीला में डर कर जाने वाली ।

आगे डा० भगवती प्रसाद सिंह जी लिखते हैं--

"जब वर्ग और सेवा निर्धारित हो जाने पर चित् देह का अन्तरंग सेवा सम्बन्धी नाम रखा जाता है । इसे आत्म-सम्बन्धी नाम भी कहते हैं । यह नाम मंत्र दीक्षा के समय रखे गये शरणागति सूचक नाम से सर्वथा भिन्न होता है । सखी भावोपासकों के भावना सम्बन्धी नाम अली, लता, सखी, प्रिया, कली, कला, मंजरी इत्यादि उपाधियों के सहित रखे जाते हैं --जैसे अग्र अली, रूप कला, प्रेमलता, प्रिया सखी और युगल मंजरी । ये नाम प्रायः उपास्य के साधना-शरीर के भाव-संबंध अथवा सेवा के स्वरूप पर आधारित होते हैं ।

इसके पश्चात् सद्गुरु शिष्य को उसके दिव्य जीवन से सम्बद्ध निम्नलिखित तत्वों का बोध कराता है ---

१- अपना संबंध श्री मिथिला जी से जानना ।

२- श्री जानकी जी के साथ हुए राम के पाणिग्रहण के साथ अपना भी पाणिग्रहण मानना ।

३- अपने को किशोरी जी (सीता जी) की सखी मानकर उनके संबंध से ही अपना सुख विचारना ।

४- अपनी इष्ट-सिद्धि श्री जानकी जी की कृपा-कटाक्ष से ही संभव

मानना[1]।"

युगल सरकार के आठो यामों के विहार और लीला के चिंतन को ही भक्त अपना इष्ट बनाता है, और अपना जिस प्रकार का सम्बन्ध वह युगल सरकार से जोड़ता है, अष्टयाम में उसी प्रकार की भावना का ध्यान करता है । इस सम्बन्ध में डा॰ भगवती प्रसाद सिंह का दिया हुआ यह परिचय ही पर्याप्त होगा ।

"सम्बन्ध-व्याख्या के अनन्तर उसके व्यावहारिक बोध और योग के लिए आचार्य शिष्य को निरन्तर अपने सम्पूर्ण सम्बन्धों का चिन्तन करते रहने का उपदेश करता है । उसकी दृढ़ता के लिए संप्रदाय में अष्टयाम भावना, मानसी पूजा अथवा अष्टयाम लीला के चिंतन का विधान है । उसके अभ्यास से साधक को उपास्य से अपने सच्चे नाते का अनुभव होने लगता है । उसका मन सांसारिक विषयों एवं प्रपंचों से ऊपर उठकर प्रिय की नित्य केलि भावना में तदाकार हो जाता है । साम्प्रदायिक शास्त्रों में यही सम्बन्ध रस भोग की दशा मानी जाती है[2]।"

मधुर भाव की इस उपासना की साधना और उसके प्रकारों का इसी प्रकार सप्रपंच विस्तार हुआ है । इसमें भी विशेष - विशेष संप्रदाय हैं । कई प्रकार के तिलक हैं । प्रत्येक संप्रदाय और तिलक लगाने वाले मधुरभाव के उपासक अपने गुरुओं की विभिन्न गद्दियों की परंपरा से संबंध रखते हैं । विशेष तिलक उनकी गुरु-परंपरा और साधना-सिद्धान्तों के प्रतीक होते हैं । कुल ११ प्रकार के तिलक इस संप्रदाय में प्रचलित हैं ।

मधुर भाव की इस उपासना में मूलतःराधा कृष्ण की मधुर उपासना का अत्यन्त निकट का प्रभाव है । सहजिया जैसे वैष्णव संप्रदायों की परकीया रति ही मधुर भाव की उपासना के इस आमुख के अधिकारी हैं । डॉ॰ भुवनेश्वर नाथ मिश्र "माधव" ने लिखा है --"वैष्णव सहजियों ने प्रेम में परकीया

---

१- रामभक्ति में रसिक संप्रदाय, पृ॰ २३७-२३८ ।

२- वही, पृ॰ २४० ।

भाव ही लक्ष्य माना । मानव प्रेम के द्वारा ही दिव्य प्रेम की परिकल्पना हुई । प्रेम केवल प्रेम के लिए ही जहाँ लोक और वेद की शृंखला को तोड़कर अपने प्रेमास्पद का वरण करता है वहीं वह आदर्श है । विवाहिता पत्नी के प्रति चिर सहवास, प्रगाढ परिचय के कारण प्रेम का रस-रहस्य बहुत कुछ नष्ट प्राय हो जाते हैं, उसमें उतना तीव्र आकर्षण, रहस्य, उत्कंठा आदि का भाव नहीं रहता जितना परकीया प्रेम में होता है । स्वकीया में प्रेम कर्तव्य प्रधान, समाज बन्धन का आश्रित, रंग में फीका और रस में उदास हो जाता है । + + + वैष्णव सहजियों ने प्रेम के इस परकीया भाव की तीव्रता को अपनी प्रेम साधना का आदर्श माना । किंवदन्ती है कि स्वयं चैतन्य देव ने सार्वभौम की कन्या साठी के साथ सहज साधना की । इतना ही नहीं, प्रायः सभी वैष्णव भक्त कवियों ने किसी न किसी कुमारिका के संग में सहज साधना की[1]।"

आगे वे लिखते हैं---

"कृष्ण ही हैं रस और राधा है रति । कृष्ण ही हैं काम और राधा हैं मादन । कृष्ण काम या कन्दर्प रूप में जीव-जीव के प्राण को अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं । राधा है मादन जो भोक्ता को आनंद विकास की प्रदात्री है । रस और रति, काम और मादन के बीच जो दिव्य प्रेम की अखण्ड धारा प्रवाहित हो रही वह सहज है[2]।"

इसी प्रकार आरोप साधना के विषय में कहते हैं-"पुरुष का कृष्ण रूपकों और स्त्री का राधात्व में अनुभव या भावना को आरोप की साधना कहते हैं । निरन्तर शुद्ध चिंतन और शुद्ध भावना के द्वारा अपने अंदर के सारे मल-आवरण आदि विकारों को नष्ट करके अपने अन्दर के सारे पशु का बलि देकर साधक सर्वथा पवित्र हो जाय और पुरुष में कृष्ण का और स्त्री में राधा की भावना दृढ़ करे । इसी प्रकार भावना दृढ़ होते होते जब पुरुष को अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् अपने कृष्णत्व का और स्त्री

---

१- रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० ७०-७१ ।
२- वही, पृ० ७२ ।

को अपने राधात्व का अनुभव होने लगे तब उनका प्रेम साधारण स्त्री-पुरूष का पार्थिव प्रेम न होकर राधाकृष्ण का दिव्य प्रेम हो जाता है । प्रेम की यह दिव्य अनुभूति ही सत्य की अनुभूति है[1]।"

इस प्रकार कृष्ण भक्तों की इन साधनाओं और इन सिद्धान्तों ने राम-सीता की भक्ति साधना के रूप में नया अवतार लिया ।

रामभक्ति के मधुर उपासकों का अंतिम लक्ष्य है - भगवान राम के नित्य लीला धाम की प्राप्ति । जहां सीता और उनकी सखियों के साथ कुंज में नित्य लीला-विहार करते रहते हैं । यही भक्त का कैवल्य है । इस लीला-विहार का दिव्य लोक साकेत धाम है और इस लोक में अयोध्या के कुंज, सरयूतट+आदि।यमुना के तट के स्थान पर सरयू तट और गोलोक के स्थान पर साकेतधाम ---केवल इतने ही अन्तर को चाहे जो समझा जाय, नहीं तो श्रीमद्भागवत में जिस रासलीला, और राधाकृष्ण के विहार की चर्चा की गई है अथवा परवर्ती कृष्ण-काव्यों-"गीतगोविन्द" आदि में जो मधुर वर्णन राधाकृष्ण की भक्ति के प्रसंग में हुए हैं, उन्हीं का नया अवतरण रामभक्ति के मधुर उपासकों ने रामभक्ति साहित्य में उपस्थित किया।

## मधुर उपासना का ऐतिह्य

रामभक्ति की मधुर उपासना के आदि स्रोत ग्रंथ के रूप में हम छः ग्रंथों को ले सकते हैं : (१) शिव संहिता (२) लोमश संहिता (३) श्री हनुमत्संहिता (४) बृहत्कौशलखण्ड (५) भुशुंडि रामायण (६) राम लिंगामृत । इनमें रामलिंगामृत का ही रचना काल शक संवत् १५३० और लेखक का नाम अद्वैत ब्राह्मण दिया हुआ है । शेष रचनाओं के लेखक और रचनाकाल का भी पता नहीं है । इसी प्रकार मधुर उपासना को लेकर उपनिषद् ग्रंथों का भी निर्माण हुआ है --

(१) श्री रामतापनीयोपनिषद् (२) विरक्तभरोपनिषद् (३)सीतोप-

---

१- रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना: पृ० ७२ ।

निषद् (४) मैथिली महोपनिषद् (५) राम रहस्योपनिषद् ।

क्योंकि सभी भारतीय दार्शनिक संप्रदायों के ग्रंथ मूलरूप से संस्कृत में रहे हैं और यदि किसी संप्रदाय का ग्रंथ संस्कृत में नहीं है तो उसकी प्रामाणिकता में भी संदेह हो जाता है । इसके फलस्वरूप संस्कृत में कई एक ग्रंथ इस रूप में इस संप्रदाय ने उपस्थित किये हैं जो इस मधुर उपासना और उपासकों की परंपरा का इतिहास, उसकी पुरातनता और प्रामाणिकता प्रस्तुत करते हैं । उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त ये ग्रंथ भी संप्रदाय में हैं -

१- बृहद्ब्रह्मसंहिता २- अगस्त्य संहिता, ३- वाल्मीकि संहिता ४- शुक संहिता ५- वशिष्ठ संहिता ६- सदाशिव संहिता ७- महाशंभु संहिता ८- हिरण्य गर्भ संहिता ९- महा सदाशिव संहिता १०- ब्रह्म संहिता ।

मधुर उपासना के गुरुओं की परंपरा को बहुत पीछे ले जाकर श्री हनुमान जी से उसे आरम्भ किया जाता है । वशिष्ठ आदि भी उसी परंपरा में रखे जाते हैं । इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है कि मधुर भाव के उपासकों ने केवल अपनी मान्यताओं की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए ऐसा किया है । उन्होंने अपनी गुरु परंपरा की जो सूची उपस्थित की है उसमें हनुमान जी आदि के नाम भी उपासना के क्षेत्र में दूसरे बताये गए हैं - यथा --

| नाम | रसिक साधना का नाम |
|---|---|
| श्री हनुमान जी | श्री चारु शीला जी |
| श्री ब्रह्मा जी | श्री विश्वमोहिनी जी |
| श्री वशिष्ठ जी | श्री ब्रह्मचारिणी जी |
| श्री पराशर जी | श्री पापमोचना जी |
| श्री व्यास जी | श्री व्यासेश्वरी जी |
| श्री शुकदेव जी | श्री सुनीता जी |
| श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी | श्री पुनीता जी |

आदि ।

संप्रदाय की परंपरा में ये नाम निश्चित रूप से संप्रदाय का गौरव बढ़ाने के लिए हैं । संप्रदाय के इतिहास में यह गुरु परंपरा श्री रामानंद और तुलसीदास तक जाती है । इसके बाद आधुनिक रसिक परंपरा के भक्तों की नामावली तो स्पष्ट ही है ।

हिन्दी साहित्य में रसिक संप्रदाय का आरम्भ स्वामी अग्रदास जी (संवत् १६३२ में वर्तमान) से होता है । उनके "अष्टयाम" और "ध्यान मंजरी" इसी संप्रदाय के ग्रंथ हैं । अग्रदास जी के शिष्य नाभादास जी अपने "भक्तमाल" में रसिक सन्तों के नाम भी गिनाए हैं । पर रसिक सम्प्रदाय का वास्तविक प्रचार-प्रसार १९वीं शती के आरम्भ में रसिकाचार्य महात्मा रामचरणदास जी के संगठन और प्रयास के फलस्वरूप हुआ । इस समय रसिक संप्रदाय की भावना ने जोर पकड़ा । अनेक महात्मा इस संप्रदाय में दीक्षित हुए और अनेकों ने रसिक संप्रदाय के गीत साहित्य की रचना की ।

इस प्रकार राम-रसिक कृष्ण संप्रदाय के भक्तों द्वारा रसिक साहित्य की रचना का आरम्भ स्वामी अग्रदास से ही मानना चाहिए । यद्यपि डा० भगवती प्रसाद सिंह और पं० भुवनेश्वर मिश्र "माधव" ने संस्कृत की अनेक कृतियों तथा तुलसीदास की कृतियों को भी शृंगार वर्णन के आधार पर उसमें सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है । संस्कृत ग्रंथों में "जानकी गीत" की जो चर्चा श्री भुवनेश्वर मिश्र "माधव" ने की है वह रसिक संप्रदाय का ग्रंथ है, इसकी रचना गलताश्रम के पीठाधीश्वर स्वामी हर्याचार्य ने की थी । इसकी समानता "गीत गोविन्द" और "राधा विनोद" से की जाती है । यह रसिक भावना और रसिक सिद्धान्तों पर लिखा गया रसिक संप्रदाय का काव्य है । रसिक सम्प्रदाय की सखियों का इसमें उल्लेख भी हुआ है । मंगला चरण का यह श्लोक रसिक भावना की ही अभिव्यक्ति है:--

नवरागभरा विताप्लवृधेः
सरयू कुंज गृहेषु राघवस्य ।
जनकात्मजया समं समन्ताद्
विजयते रति केलयोऽनवद्याः ।

रसिक संप्रदाय मुख्यतः पांच नामों से अभिहित है -

जानकी संप्रदाय, रहस्य संप्रदाय, रसिक संप्रदाय जानकी वल्लभी संप्रदाय, और सिया संप्रदाय ।

## रसिक सम्प्रदाय की आध्यात्मिक साधना का मूल

वैसे हमको यही स्पष्ट दिखाई देता है कि कृष्णोपासकों की कृष्ण और राधा की केलि-प्रियता ही रामोपासक रसिक भक्तों के लिए भी आदर्श बनी । एक तरह से वृंदावन के कुंज तट और यमुना का पुलिन ही सरयू के तट पर कल्पित किये गये, कृष्ण-भक्ति की रस-केलि चिंतना यहाँ तक बढ़ी कि रामभक्त,रसिकों में राम और सीता का केवल नाम ही अपनी रचनाओं में शेष रहा नहीं तो कृष्ण भक्तों और रामभक्तों की रचनाओं को पढ़ा जाय तो कोई भी अन्तर उनमें नहीं है । रस-केलि वर्णन के अनुकरण में राम-रसिकों ने भगवान राम का वह लोक रक्षक रूप, जिसमें वे दुष्टों के संहारकर्ता बन कर हमारे सामने आते हैं, बिल्कुल ही विस्मृत कर दिया । वह राम-साहित्य केवल राम-नाम रहने से ही जाना जा सकता है । डा० भगवती प्रसाद सिंह ने अपने ग्रंथ में इसकी चर्चा करते हुए लिखा है कि --

"सत्रहवीं और अठारवीं शती में रामभक्ति के भीतर बढ़ती हुई शृंगारी प्रवृत्ति की प्रेरणा से रामभक्तों की कृष्णोपासकों में घनिष्ठता बढ़ी किन्तु उसके साथ ही सगुण भक्ति की इन दोशाखाओं में उपास्य की शृंगारिकता को लेकर पारस्परिक स्पर्द्धा की प्रवृत्ति भी उद्बुद्ध हो गयी । भक्त अपने इष्ट को बढ़ाने की होड़ में उतर पड़े ।

बाल अली जी कृष्णावतार की लीलाओं को ऐश्वर्य मिश्रित होने के कारण शुद्ध माधुर्य कोटि की नहीं मानते । वैभवपूर्ण होने से कृष्ण की रास-क्रीड़ा में भी वे माधुर्य का ह्रास देखते हैं । + + +

इसके विपरीत राम की साकेत लीला में वैभव, मायाजनित नहीं सहज सिद्ध है । चक्रवर्ती पुत्र होने से महलों में उनका रास-विलास स्वाभाविक रूप से स्वतः चलता रहता है[1] ।"

---

1- रामभक्ति में रसिक संप्रदाय, पृ० ११८ ।

इसका सीधा अर्थ यह है कि राम सीता के रूप में इन परवर्ती रामरसिक भक्तों ने कृष्णलीला का ही अनुकरण किया है । कृष्ण और राम की लीला में इस साम्य का आधार उनका विष्णु का अवतार होना ही है । विष्णु के अवतार राम भी हैं, और कृष्ण भी हैं, इस प्रकार कृष्ण और राम की लीलाओं में स्वभावतः साम्य स्थापित हो जाता है लेकिन विचित्रता यही है कि कृष्ण का ही अनुकरण रामभक्तों ने किया, राम की लीलाओं का अनुकरण कृष्ण भक्तों ने नहीं किया ।

इस विचार परंपरा में और गहराई पर जाने पर यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है कि यह अनुकरण न राम का था, न कृष्ण का था । यह मानव की अपनी भावनाओं की तृप्ति थी । पर उसका एक विकास परंपरागत सम्प्रदाय के रूप में पहले से चला आ रहा था । भावुकता प्रधान यह विष्णुभक्ति ही रसिक संप्रदाय में हजार वर्ष पूर्व के मूल को लेकर विकसित है । काम-केलि की लीलाओं, प्रसाधनों और स्वरूपों को अपनी भक्ति का अंग बनाकर वैष्णव भक्तों ने आध्यात्मिक साधना का जो प्रतिमान भक्ति के क्षेत्र में रखा था वह १९वीं - २०वीं शताब्दी में रामोपासना के भी क्षेत्र में मूर्तिमान होता है ।

इस प्रसंग में "ब्रह्म वैवर्त पुराण" का एक प्रसंग ध्यान देने योग्य है । स्मरण रहे कि "ब्रह्म वैवर्त पुराण" वैष्णवों का, रस-भक्त वैष्णवों का अत्यन्त प्रिय ग्रंथ है और उसका चौथा खण्ड जिसमें कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है, वह तो उनका सर्वस्व ही है । एक प्रसंग में नारायण ऋषि नारद मुनि से कृष्ण और राधा की जलकेलि का वर्णन इस प्रकार करते हैं-

> जलं ददौ राधिकायै सकामो माधवः स्वयम् ।
> ददौ सा च माधवाय कामुकी जलमञ्जलिम् ।।
> वस्त्रं जग्राह कृष्णस्य सा बाहुना बभूव ह्रीः
> मालां चिच्छेद कबरीं चकार शिथिलां हरिः ।।

तां च नग्नां दर्शयित्वा गोपिकां क्रीडि कौतुकात् ।
सस्मितां प्रेरयामास दूरतो यमुनाजले ।।
सावेगेन समुत्थाय बलाज्जग्राह माधवम् ।
गृहीत्वा मुरलीकोषात् प्रेरयामास दूरतः ।।
गृहीत्वा पीत वस्त्रं चकार तं दिगम्बरम् ।
वन मालां च विच्छेद ददौ तोयं पुनः पुनः ।।
हरिं पुनः समाकृष्य प्रेरयामास वार्यपि ।
गम्भीरे शीतलजले मुने निमज्ज जगत्पतिः ।।
कृत्वा वक्षसि नग्नां च चुचुम्ब च पुनः पुनः ।।

-ब्रह्म वैवर्त पुराण खंड ४ अध्याय २८ ।

नारायण और नारद ऋषि भक्ति से विभोर होकर इस प्रसंग की चर्चा कर रहे हैं जिसमें जल-क्रीड़ा में कृष्ण ने राधा का वस्त्र और राधा ने कृष्ण का पीताम्बर खींच लिया और इस प्रकार दोनों नंगे हो गये । इस नग्नावस्था में दोनों ने एक दूसरे का आलिंगन किया, चुम्बन किया, जल में डुबकियां लगायीं, एक दूसरे को जल में डुबाया आदि, आदि । राधा-कृष्ण के भक्ति रस का यह एक सामान्य उदाहरण है ।

इसी पुराण में एक स्थल पर राधा केशव के निगूढ़ तत्व को स्पष्ट करते हुए श्री नारायण उनकी इस रमण लीला को वेदों और पुराणों का गोपनीय रहस्य कहते हैं । राधा की माता को रतिकेश्वरी, कामुकी, सुस्थिर यौवना, योनातीति विशारदा, सिद्ध योगिनी कह कर राधा को भी माता के समान कामुकी और कलाविद् बताते हैं जिनके साथ रसोत्सुक होकर कृष्ण रास-लीला कर रहे हैं --

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।
गोपनीयञ्च वेदेषु पुराणेषु पुराविदम् ।।
पुनः सकामो भगवान् कृष्णः स्वेच्छामयो विभुः
रेमे सरमया सार्द्धं विदग्धश्च विदग्धया ।।
वेदवेदांगनिपुणाः योगनीतिविशारदा ।
नाना रूपधरासाध्वी प्रसिद्धा सिद्धयोगिनी ।।

तत्कन्या राधिका देवी मातृतुल्या च कामुकी ।
चकार नानाभावं सा सुशीला स्वामिनं प्रति ।। .

खण्ड ४ अध्याय ६९ ।

और इन वैष्णवों ने वेदवेदांगों के लिए रहस्य-रूप इस रासलीला की बड़ी महिमा गाई है । ब्रह्मा सहित सभी देवगण इस रासलीला पर निछावर हैं । शेष और शंकर भी इसे देखने आते हैं ।

रामरसिक संप्रदाय में मिथिला की सखियों को सम्प्रदाय में जो स्थान मिला है, वह इसी का प्रभाव है ।

"ब्रह्मवैवर्तपुराण" कृष्ण भक्त रसिक संप्रदाय की परतें उलट कर हमारे सामने रख देता है । इसका महत्व इसलिए अधिक है कि यह उस संप्रदाय के ग्रंथ रूप में नहीं लिखा गया है पर उस युग की वैष्णव-भक्तों की लोक प्रसिद्ध प्रवृत्तियाँ अपने आप इसमें आ गयी हैं । ऊपर के उद्धरणों में रसिक शब्द कई बार स्पष्ट रूप से आया है, यह रसिक शब्द कृष्ण भक्त रसिकों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है जो उस युग में प्रसिद्धि पा रहे होंगे । संभवतः ब्रह्मवैवर्त पुराण का यह रूप १४वीं शताब्दी के पूर्व का न होगा ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण का एक और प्रसंग इस विषय की ही पुष्टि करता है । प्रजापति ब्रह्मा स्वर्गीय वेश्या मोहिनी की काम-भावना का निरादर करते हैं । मोहिनी अपने काम भाव के निरादर से दुखी होकर ब्रह्मा को शाप देती है---आपका यह इंद्रिय निग्रह केवल विडम्बना है, दासी तुल्य, विनीत इस मोहिनी का निरादर जो आपने किया है अब आपको लोक में कोई आदर न मिलेगा । आपका यह अभिमान भंग होकर आपका नाम, आपके स्तुति लोगों के कार्य में विघ्न पैदा करेगी और आपकी कभी पूजा न होगी:--

दासी तुल्यां विनीतां च दैवेन शरणागताम ।
यतो हससि गर्वेण ततो पूज्यो भवाचिरम् ।।

तदेव वचनं स्त्रीणां गुरुर्णाति यो नरः सदा ।
भविता [illegible] स [illegible] ।।

अध्याय ३३ ।

ब्रह्मा इस घटना से घबड़ाए और नारायण के पास पहुंचे । नारायण ने ब्रह्मा को दोषी ठहराया और कहा--स्त्री जाति प्रकृति का अंश है, जगत् का बीज है, स्त्रियों का अपमान, अवहेलना, सीधे सीधे प्रकृति उपेक्षा है--

स्त्री जातिः प्रकृतिरंशा जगतां बीज रूपिणी ।
स्त्रीणां विडम्बनेनैव प्रकृतेश्च विडम्बना ।।

और नारायण ने ब्रह्मा के सामने जो घटना प्रस्तुत हुई थी उस पर अपनी व्यवस्था दी --

न तद् भारतवर्षश्च पुण्य क्षेत्र मनुत्तमम् ।
क्रीड़ा क्षेत्रे ब्रह्म लोके [illegible] ।।
यदि तद् भारते दैवात्कामिनी समुपस्थिता ।
स्वयं रहसि कामार्ता न सा [illegible] जितेन्द्रियैः ।
त्यक्त्वा परम नरकं व्रजेदिति विडम्बतः ।।

अध्याय ३४ ।।

ब्रह्मा ! यह लोक पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष नहीं है फिर इस क्रीड़ाक्षेत्र ब्रह्मलोक में तेरा यह कैसा इन्द्रिय निग्रह ! जो तूने मोहिनी का तिरस्कार किया । यह परम्परा जिसमें इन्द्रिय-निग्रह-वश हठात् स्त्री की उपेक्षा की जाती है भारतवर्ष की है किन्तु भारतवर्ष में भी देववश [illegible] में काम व्याकुल कामिनी आकर रति की याचना करे तो जितेन्द्रियों को भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए -

ध्रुवं भवेत् सो परापो तस्मात्ज्ञानतः ।
जो इस प्रकार कामिनी का त्याग करता है वह निश्चय ही नरक में जाता है ।

यह उन चिन्तकों को उत्तर रहा होगा जो ऐसे रसिक वैष्णवों पर सामान्य लोक के भीतर आक्षेप तथा तिरस्कार पैदा करते रहे होंगे । किसी सटीक युक्ति पुराणकार ने खोज निकाली । भारतवर्ष में ही इन्द्रिय संयम किया जा सकता है । अतः कृष्ण का गोलोक तथा राम का साकेत धाम दोनों इस रसिक भक्तों की दृष्टि में [illegible] से बाहर हैं ।

वैष्णवों की इन मान्यताओं ने ही कृष्ण और राम के रसिक भक्तों को अनुप्रेरित किया है । विष्णु की भक्ति के सम्बन्ध की जो भी पद्धतियां प्रचलित थीं, जब कृष्ण और राम भक्तों ने कृष्ण और राम के वीर रूप को अलग रखकर केवल उनके मधुर रूप की उपासना आरम्भ की तो पहले विष्णु की वह शृंगारी भावना कृष्ण के उपासकों में आई और फिर राम के भक्तों ने भी राम के व्यापक जीवन को संकुचित कर उन्हें साकेत-धाम की लीला में सीमित कर वहीं मधुर उपासना का नाच शुरू किया ।

भक्ति, योग और वैराग्य के साधकों के सामने काम पर विजय एक बहुत बड़ी समस्या रही है । धर्म के अनेक संप्रदाय जो [illegible] के इतिहास में इस देश में प्रभावित हुए सभी ने अपने अपने ढंग से इस समस्या को पचाने की कोशिश की है । इनमें योग और हठयोग के साधकों ने तो काम - भावना का दमन करने में ही अपनी साधना की श्रेष्ठता मानी है । पर इनके अतिरिक्त अनेक संप्रदाय किसी न किसी रूप में इस काम-भावना के सामने नतमस्तक हैं । इनमें भी शैव और तांत्रिकों तथा इनके इस कोटियों ने काम-भावना को विशुद्ध धार्मिक रूप प्रदान कर अपने को लोक के अधिक निकट रखा । साथ ही वे लोक के लिए बहुत कुछ बोधगम्य रहे । उनके संप्रदाय में यौन-योग को साधना का एक अंग मान लिया गया । कापालिकों की पंचमकारी साधना प्रसिद्ध है । प्रत्येक कापालिक अपनी साधना के लिए एक स्त्री अपने साथ जरूर रखता है । दूसरे अनेक संप्रदायों की तरह दर्शन की मीमांसा में इन्होंने यौनाचरण को माया के अलौकिक आवरण में नहीं लपेटा । कामभावना को आत्मसात करने की प्रक्रिया ही कृष्ण और राम भक्तों की रसिक साधना के रूप में आयी जिसमें साधना का पौरुषेय रूप तिरोहित हो उठा और एक मात्र साधक ने सब प्रकार से अपने को राम को समर्पित कर दिया । काम भावना

को जो मोड़ इस रसिक संप्रदाय के पूर्व शाक्त साधना क्षेत्र में प्राप्त हुआ था उसको इसमें ज्यों का त्यों [illegible] किया । पहले राधाकृष्ण की जिस जलकेलि का वर्णन ब्रह्म वैवर्त पुराण में उद्धृत किया गया है उससे ही श्री युगलानन्य शरण "[illegible]" जी के युगल सरकार के सखियों सहित इस जलकेलि से मिलाइए--

> कांचित कला निकेत बाम कूदत स्वतंत्र जल ।
> गहत लाल कर कंज जाम मौक्क मधुक कल ।।
> प्रीतम प्रेम [illegible] परम पंडिता रहत मधि ।
> ललित समेत अथाह नीर मज्जति विचित्र विधि ।।
> ललित लड़ैती लाल सखिन [illegible] ।
> नवल नीर कन कंज करन सींचत विचित्र तर ।।
> कोमल करपद कंज आघात हरत शुचि ।
> कांहि केलि कमनीय रमन रमनी समेत रुचि ।।
>
> -युगलविनोद विलास से उद्धृत ।

और जैसे दुर्गा [illegible] में ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी शक्ति की वंदना करते हैं वैसे राम-रसिक भक्तों की आराध्या सीता रानी जू सर्वोपरि हैं, उनकी चेरी बने बिना आत्मा की गति (आत्म [illegible]) मुश्किल है श्री सीताराम शरण "[illegible]" का यह दोहा देखिए--

> राग रास मंडल रचौं, श्री [illegible] कुमार ।
> कवन कबहुं वह सनींगी, जनकसुता सुकुमार ।।
> ब्रह्मादिक की गति नहीं, सुनि भाय सुराग ।
> चेरी तन धारे बिना, दूर महल मरु बाग ।।
>
> -युगलोत्कंठ प्रकाशिका से उद्धृत ।

## रसिक सम्प्रदाय और राम भक्ति की तंत्र-मंत्र परक प्रतिष्ठा

जैसे जैसे रसिक संप्रदाय राम को उनके अब तक के निरूपित यथापद लोक मर्यादा-स्वरूप से हटाकर साकेत लीला में सीमित कर बैठा वैसे वैसे राम का लोक नायक रूप तिरोहित हो गया और केवल उनके "राम" नाम

की महिमा ही शेष रह गयी । अतः एक ओर रसिक संप्रदाय ने अपना एक दर्शन प्रस्तुत किया और दूसरी ओर नाथ पंथियों, शाक्तों तथा शैवों की पद्धति का अनुसरण कर रसिक भक्तों ने राम नाम को तंत्र और मंत्र के क्षेत्र में भी प्रतिष्ठित किया ।

राम - सीता को तंत्र-मंत्र के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करते हुए रसिक संप्रदाय ने पूरा का पूरा भवानी-शिव का अनुसरण किया है । जैसे शिव का आधा शरीर भवानी का है और वे अर्द्ध नारीश्वर कहे जाते हैं, उसी प्रकार रसिक भक्तों के राम सीता की आज्ञा के परिपालक हैं । ब्रह्म-यामल तंत्र के ये श्लोक इस बात के प्रमाण हैं--

रमा [illegible] रघुवीर रमा शक्त्यैक निग्रहः ।<br>
रमानिग्रह [illegible] रमा ध्यान [illegible]: ।।<br>
रमा विहार निरतो रमाज्ञा [illegible] : ।<br>
रमा कर्मैक सन्तुष्टो रमारमण वल्लभः ।।<br>
रमा केलि कुलाचारो [illegible] गुणो गुरुः ।।<br>
राजधारी राजबुद्धिः [illegible] विराग ही ।<br>
राजसेवा राजनीतिः रति वो रतिश्वरः ।।<br>
रामादि पांग मामोगी [illegible] वरः ।।

+ + +

रमा तरंग संहिता रामयामी रतिप्रिया ।[1]

इसी प्रकार षडाक्षर मंत्र "रामायनमः" रसिक भक्तों में जब प्रतिष्ठित हुआ उसमें युगलनाम रखकर उसकी प्रतिष्ठा की गयी ।

रसिक सम्प्रदाय के दर्शन सिद्धान्त को अभिव्यक्त करने वाले संस्कृत भाषा में जिन संहिता और उपनिषद् ग्रंथों का नाम गिनाया जाता है जिनकी सूची इसी अध्याय में पहले दी जा चुकी है वे सब रसिक सम्प्रदाय की महिमा का विस्तार करने के लिए परवर्ती रचनाएं ही

---

१- रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय: पृ० ९२-९३ से उद्धृत ।

प्रतीत होती है । उन संहिता और उपनिषद् ग्रंथों में स्पष्ट रूप से रसिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों और साधनाओं का प्रभाव है जो किसी भी प्रकार १६वीं विक्रम शताब्दी के पूर्व नहीं कहे जा सकते ।

## प्रसिद्ध कवि और रचनाएं

### वर्णनात्मक एवं प्रबन्धात्मक

इस [illegible] में अधिकांश मुक्तक रचनाएं हुई हैं जिनमें कुंज [illegible], जलकेलि, फाग तथा विहार शृंगार के अन्य प्रसंग हैं । थोड़ी प्रबन्धात्मक रचनाएं हुई हैं जिनमें "अष्टयाम" ही अधिक हैं । कुछ प्रबन्ध काव्य हैं जिनमें रसिक संप्रदाय के सिद्धान्त और भावना की छाप हैं ।

प्रबन्धात्मक रचनाओं में इनका नाम लिया जा सकता है --

अग्रदास की रचना "अष्टयाम" ।

नाभादास की रचना "अष्टयाम"।

गुणी सुखराम दास टंडन-"रामविलास" (१९३[illegible] ई० में माला [illegible] टंडन गुजरात (पंजाब) से प्रकाशित ।

बनादास - "उभय प्रबोधक रामायण"(नव. किशोर प्रेस, लखनऊ से १८९२ ई० में प्रकाशित) ।

महात्मा सूर किशोर -"श्री मिथिला विलास"(खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर १८९५ ई० में प्रकाशित) ।

रामप्रिया शरण- "सीतायन ग्रंथ"(बालकाण्ड) (लखनऊ प्रिन्टिंग प्रेस से १८९० में प्रकाशित) ।

रामचरन कवि -"जानकी समर विजय"(अद्भुत रामायण के अनुवाद ।रचनाकाल १९३३ ई० ) ।

इन ग्रंथों में रामचरण कवि के "जानकी समर विजय" को छोड़कर सभी ग्रंथ रामसीता के विलास का ही किसी न किसी रूप में वर्णन करते हैं । "जानकी समर विजय" में राम-रावण के युद्ध का वर्णन है, जिसमें जानकी काली के वेश में पहुँच कर रावण की सेना का संहार करती है और उसी के फलस्वरूप राम की विजय हो जाती है । इसी-लिए ग्रंथ का नाम "जानकी समर विजय" है । प्रस्तुत ग्रंथ में सीता की इस महिमा-कथा में रसिक संप्रदाय और शाक्त सम्प्रदाय का सम्मिलित प्रभाव है । राम संग्राम में मूर्छित हो गये हैं तब जानकी उन्हें समर विजय कर, आकर हाथ पकड़ कर जगाती हैं-

जानकी जीति निशाचरि पारि बहे बपु [illegible] छूटे ।
जाइ जगाइ के पानि गह्यो रघुनंदन जू मुरछा सन छूटे ।।

रघुनाथ जी को हाथ पकड़कर जगाने का यह भाव रसिक संप्रदाय की प्रवृत्ति का द्योतक है ।

"सीतायन" ग्रंथ में जानकी जी के बाल चरित्र का वर्णन है जिसमें ब्रह्मा आदि सखी रूप धारण कर बाला जानकी के शृंगार की वस्तुएं बेंचने आते हैं । पूरा ग्रंथ इसी हास-विलास और विनोद से पूर्ण है । अनेकधा जानकी जी के नख शिख का और शृंगार का वर्णन इसमें किया गया है । "मिथिला विलास" भी इसी प्रकार प्रबन्धात्मक रचना होते हुए भी रसिक संप्रदाय की भावनाओं से ओतप्रोत है । जनक लली और उनकी सखियों के हास विलास का वर्णन ही कवि का लक्ष्य है -

जनक लली मधुरे सुर गावत, नइ नइ तान सुनावै,
सहचरि चन्द्रकला अलि बीन बजावै ।

(२१)

बनादास का "उभय प्रबोधक"-रामायण" बड़ी रचना है और यह ग्रंथ रसिक संप्रदाय की भक्ति से प्रभावित होकर भी तुलसीदास के भक्ति मार्ग की भी रचना है । ग्रंथ में सात खण्ड हैं -(१) गुरू खंड(२) नाम खण्ड (३) अयोध्या खंड (४) विपिन खंड (५) विहार खण्ड (६) ज्ञान खण्ड (७) शान्ति खण्ड ।

बिहार खंड की रचना में कवि रसिक संप्रदाय से अनुप्राणित हुआ है और इसीलिए इस ग्रंथ को इस शाखा के अन्तर्गत रखना चाहिए ।

ग्रंथ में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया तथा अन्य छंदों का प्रयोग हुआ है ।

ग्रंथ की रचनातिथि, राम के विवाह की तिथि है इस तिथि के प्रति कवि [illegible] ही उसे रसिक सम्प्रदाय का समर्थक संकेत करती है--

> हिम ऋतु अगहन मास सित पंचमी है
> राम जी कैा बिबाह दिन जगत विदित है ।
> सम्वत सहस नव शत की प्रभाव जानी
> ताषि एक तिंस पुनि बरषा लिखित है ।
> बनादास रघुनाथ चरित प्रकास किये
> बुद्धि तो नवीन पुनि लागी अति चित है ।

(६२)

गुणी सुखराम टंडन की कृति "राम [illegible]" में [illegible] अयोध्या काण्ड तथा वनकाण्ड की कथा है । इसमें भी उन प्रसंगों और भावों का अधिक विस्तार है जो रसिक संप्रदाय की भावना से अधिक मेल खाते हैं । फलस्वरूप वनकाण्ड में यह कहा जाता है कि श्री राम शबरी को दर्शन देने के लिए आये हैं । शबरी राम के दर्शन के लिए व्यग्र है । इस प्रसंग का बहुत विस्तार किया गया है । राम ऋषियों के समक्ष उनके द्वारा उपेक्षित शबरी की महिमा इस प्रकार प्रकट करते हैं---

> तुम शबरी चरणामृत पावहु हरि भाषे सीता शुद्ध हिये
> उन शबरी पदुपखार जल में रूपो सरित बिमल पिय दर्श हिए ।

शबरी के चरणामृत के मिलाने से नदी का वह जल, जिसमें कीड़े पड़ गये थे शुद्ध हो गया ।

अग्रदास और नाभादास की अष्टयाम की रचनाएं रसिक संप्रदाय के आदि ग्रंथ हैं । सम्प्रदाय की पूजा ध्यान आदि की विधियां और उनके सम्बन्ध में अन्य विवेचन इन मूल ग्रंथों और पुनः उनकी टीकाओं में किया

गया है । अग्रदास जी का अष्टयाम संस्कृत में है । शेष दोनों ग्रंथ हिन्दी में हैं । अग्रदास जी के दोनों ग्रंथों पर [illegible] टीकाएं हैं ।



"अष्टयाम" में आठ प्रहर की सेवाओं का विवेचन है जिसमें मंगला [illegible] से लेकर शयन काल तक की राम और सीता की विविध लीलाओं और उनके संभारों का वर्णन होता है । वस्तुतः आठ प्रहर में राम-सीता की किस प्रकार सेवा करनी चाहिए, उसके साधन और विधि क्या हों, यही तो रसिकों का मूल धर्म और सिद्धान्त हैं । इसमें बाहरी सेवा तथा मानसी सेवा (ध्यान) दोनों ही सम्मिलित होते हैं । "अष्टयाम" में राम के सखा और सखियों का उल्लेख है तथा उनकी स्थिति, पूजा में कहां उनका स्थान होना चाहिए, इसके विवेचन हैं । राम के इन सखाओं में रामायण में प्रसिद्ध, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, जाम्बवान, हनुमान कोई नहीं हैं । आठ सखा, आठ सखियां और आठ दासियों के नाम गिनाए हैं । सखाओं के नाम हैं (१) सुलोचन मणि (२) सुभद्र मणि (३) सुचन्द्र मणि (४) जयसेन मणि (५) वसिष्ट मणि (६) शुभशील मणि (७) अनंग मणि (८) रसेन्दु मणि । पुनः सखियों में लक्ष्मण जी भी एक सखी हैं । सखियां कभी पुरुष रूप से और कभी स्त्री रूप से राम की सेवा करती हैं---

लक्ष्मणा श्यामला, हंसी, सुभगा च चतुर्विधाः ।
स्त्रियः पुंरूपेण [illegible] ॥

"अष्टयाम" में वर्णित सखा और सखियों के ये नाम इस बात की ओर भी पुष्टि करते हैं कि रामायण आदि में प्रसिद्ध राम-साहित्य से रसिक सम्प्रदाय का राम साहित्य सर्वथा भिन्न है ।

इनकी सेवाएं भी विभाजित हैं ---लक्ष्मण जी- ताम्बूल सेवा श्यामला जी - गंध और मोदक आदि पक्वान, हंसी जी - अंगों में चंदन आदि का लेप और सुभगा जी वस्त्र-धारिक (वस्त्र) पहनाती हैं ।

लक्ष्मणा ताम्बूल सेवां श्यामला गंध - मोदकम् ।
हंसी चंदन लिप्तांगं सुभगा वस्त्रधारकम् ॥

अग्रदास जी की "ध्यान मंजरी" में भी राम के इन्हीं ऐश्वर्य का वर्णन है --

नूपुर पुरट सुचारु रचित मणि माणिक सोहै ।
रचिकल सुर संगीत सुनत परिजन मन मोहै ।
युगल अरुण पद पद्म चिन्ह कुलिशादिक मंडित ।
पद्मा नित्य निकेत शरणागत भव भय मंडित ।।
दक्षिण भुजशार सुभग सुहावन सुन्दर राजैं ।
दिव्या युष सुविशाल बाम कर धनुष्य विराजै ।।
षोडश बरस किशोर राम नित सुन्दर राजै ।
राम रूप को निरखि विभाकर कोटिक लाजै ।।
अस राजत रघुबीर धीर आसन सुखकारी ।
रूप सच्चिदानंद बाम दिसि जनक कुमारी ।।

सीता जी के ध्यान में भी यही शोभा अग्रदास जुटाते हैं---

पहुँचियाँ मणिनील जटित युग कंकण राजै ।
मनहुं कनक के फूल कुरैअलि पंक्ति बिराजै ।।
लहगा कटि परदेश भाँति छवि शोभित गहिरी ।
अरुण असित सित पीत मध्य नाना रंग लहरी ।।
हरित नगन पर जरित युगल केहरि अस राजै ।
तिन पर घुंघरू और अग्र बिछिया सुबिराजै ।

फिर पार्षदों का ध्यान है -

दक्षिण भुज रिपुदमन गौर तन तेज उदारा ।
उभय हेतु अनुसार धरे कृत खंडित धारा ।।
शेष लिए कर भरत लिए चंवर दुरावै ।
अवनि सुवन कर जोरि सुप्रभु कीरति गावै ।।

श्री नाभादास ने अपने अष्टयाम में अन्तःपुर का वर्णन किया है ---

पुनि तहं ते षोडश सहचरी । गाइ उठीं प्रीतम रंग भरी ।।
तिन ते अलि नव अष्ट सुहाई । निज निज थल गावत छवि छाई ।।
अंतःपुर जहं सिय पिय राजै । शोभा कहत शेष श्रुति लाजै ।।
रतन जड़ित परयंक सुहावा । वर्ण रत्न मणि खचित सुपावा ।।
विविध विचित्र चित्र रंग राजै । निरखत अलि अलि सहित समाजै ।।
अति अद्भुत उपमा छवि छाये । श्रुति संहिता पुराणन गाये ।
तेहि ऊपर अति ललित बिछौना।क्षीर फेन सम कोमल लौना ।।
तेहि ऊपर सुमनन की शोभा । कहत न बनै देखि मन लोभा ।।

नाभादास जी आगे इसी प्रकार अन्तःपुर की सखियों की सेवा उनके कटाक्ष आदि का वर्णन करते हुए भोजन और नृत्यसंगीत के साथ शयन का वर्णन कर अष्टयाम का उपसंहार करते हैं ।

अग्रदास और नाभादास जी की रचनाएं राम-रसिक सम्प्रदाय की मूलभूत प्रेरक कृतियां हैं, इनके आधार पर ही रसिक संप्रदाय का विस्तृत साहित्य लिखा गया । और फिर उसमें शृंगार और नृत्य संगीत से आगे बढ़कर राम-सीता की होली की कीड़ा का, जल केलि का नग्न वर्णन रसिक कवियों ने किया ।

## स्फुट कृतियां

नाभादास जी के बाद वर्णनात्मक सबसे प्रबन्ध रचना तो कम ही मिलती है, स्फुट रूप से पदों की रचना करने वाले कवि ही अधिक हैं, उनकी एक लम्बी सूची है । ये अपने ग्रंथ को दूसरे को दिखाना पसंद नहीं करते केवल सम्प्रदाय का व्यक्ति या जिसकी पूर्ण श्रद्धा उनपर हो वही इन ग्रंथों के देखने के अधिकारी होते हैं । स्वाभावतः ये ग्रंथ अधिकांश अप्रकाशित ही हैं । जो प्रकाशित हैं वे प्रायः अयोध्या अथवा नवल किशोर प्रेस लखनऊ से । प्रमुख रचनाओं और उनके कर्ता रसिक काव्यों की सूची इस प्रकार है --

१- बाल अली जी (काव्य काल संवत् १७२६-१७४९ वि०) रचनाएं-

नेह प्रकाश, ध्यान मंजरी ।

२- बालानंद(जन्म सं० १७१०), रामभक्तों की लश्करी शाखा के संस्थापक ।

रचनाएं- स्फुट पद ।

३- रूपलाल "रूपसखी"(१९वीं शती विक्रमी) रचनाएं- दोहे ।

४- सूरकिशोर (संवत् १७६० में उपस्थित) रचनाएं- स्फुट पद ।

५- रामसखे(अठारहवीं शताब्दी) रचनाएं- पदावली, नृत्यराघव मिलन दोहावली ।

६- कृपानिवास(अठारहवीं-उन्नीसवीं वि० शती)

रचनाएं-लगन पचीसी, अनन्य चिंतामणि, राम रसामृत सिन्धु, रसपद्धति भावना, पच्चीसी, पदावली ।

७- रामचरणदास(जन्म सं० १७६०) रचनाएं- [illegible], रसमालिका, अष्टयाम-पूजा विधि, रामपदावली, झूलन, कौशलेन्द्र रहस्य, राम नवरत्न सार संग्रह ।

८- जीवाराम"युगलप्रिया"(१९वीं शती विक्रमी) रचना- युगलप्रिया पदावली ।

९- जनकराज किशोरी शरण "रसिक अली"(१९वीं शती विक्रमीय)

रचना- सिद्धान्त मुक्तावली ।

१०- स्वामी युगलानं शरण जी(२०वीं शती)

रचनाएं- प्रेमभाव प्रभा दोहावली, युगलविनोद विलास।

१२- सीतारामशरण"रसरंग मणि"(२०वीं शती वि०)

रचनाएं- सीताराम शोभावली प्रेम पदावली ।
श्री रामरास बन्दना, श्री रामरसरंग विलास ।
राम झांकी विलास ।

१३- रामशरण (जन्म संवत् १८६४) रचनाएं- सोहर, पदावली ।

१४- हनुमान शरण मधुरअली(२०वीं शती वि०) रचनाएं-लीला, पदावली

१५- बैजनाथ कुरमी (जन्म संवत् १८९० वि)- रचनाएं- तुलसीदास जी के ग्रंथों की टीका तथा रामरसिका संयोग पदावली ।

१६- श्री शीलमणि (जन्म संवत् १८७०) रचनाएं- विवेक गुच्छा, सियावर मुद्रिका ।

१७- जानकी वर प्रीति लता (जन्म संवत् १८७९) रचनाएं- मिथिला महात्म्य, स्फुट पद ।

१८- ज्ञान अलि सहचरि जी - रचना - सियावर केलि पदावली ।

१९- सियालाल शरण "प्रेमलता"(जन्म संवत् १९२८) रचनाएं- बृहद् उपासना रहस्य, प्रेमलता पदावली ।

२०- रामनारायण दास(२०वीं शती विक्रम) रचना- भजन रत्नावली ।

२१- युगल मंजरी जी (२०वीं शती वि०) रचना- भावनामृत- कादम्बिनी

२२- रामवल्लभशरण "प्रेमनिधि"(जन्म संवत् १९१५) रचनाएं- बृहत्कोशल खण्ड और शिवसंहिता की टीका । स्फुट पद ।

२३- रामवल्लभशरण"युगल विहारिणी" (जन्म सं० १९१६ ) रचना- युगल विहार पदावली ।

२४- सीताराम शरण भगवान प्रसाद "रूपकला"(जन्म संवत् १८९७) रचनाएं- नाभादास के भक्तमाल की टीका, भक्ति सुधा बिन्दुस्वाद तिलका । रामायण रस-बिन्दु, मानस अष्टयाम, प्रेमगंग तरंग ।स्फुट पद ।

२५- सीताराम शरण शुभशीला(२०वीं शती विक्रमीय) रचना- युगलोत्कंठ प्रकाशिका ।

२६- रामा जी (जन्म संवत् १९३८) रचना- स्फुट पद ।

इन कवियों के अतिरिक्त अभी ५० ऐसे कवि रसिक संप्रदाय के हैं जिनकी रचनाएं प्राप्त हैं, कुछ की प्रकाशित भी हैं पर इन प्रतिनिधि कवियों की चर्चा करके रसिक संप्रदाय के साहित्य का परिचय पूर्ण हो जाता है । इनमें दो प्रकार के रचनाकार हैं (१) जिन्होंने राम

साहित्य के ग्रंथों की टीका की है (२) जिन्होंने स्वतंत्र रचना की है । टीका ग्रंथ पद्य में भी है और गद्य में भी है । टीकाकारों में श्री रामवल्लभशरण "प्रेमनिधि" और "रूपकला" जी का लिखा नाभादास के भक्तमाल की टीका --भक्त सुधा बिन्दु स्वाद तिलक, की प्रशंसा जार्ज ग्रियर्सन ने सन्दर्भ ग्रंथ के रूप में की है ।

इन कवियों ने जो कविताएं लिखी हैं उन्हें चार वर्गों में बांटा जा सकता है -(१) अष्टयाम की चर्चा (२) मानसिक ध्यान के पद (३) राम-सीता के विलास और रस का उन्मुक्त चित्रण (४) विरह और वैराग्य की अभिव्यक्ति ।

इसमें राम-सीता के विलास का उन्मुक्त चित्रण इतना खुलकर इन कवियों ने किया है कि रीतिकाल के शृंगारी साहित्य ही इससे इस सम्बन्ध में होड़ ले सकता है । डॉ. भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव ने रसिक संप्रदाय के लिए दर्शन की विस्तृत व्याख्या अपने ग्रंथ में की है--रागमयी भक्ति और मधुर रस का स्वरूप--उनकी परिधि के भी बाहर ये रचनाएं--हो उठती हैं । इनकी परम्परा और भक्ति दर्शन की व्याख्या तो चाहें जहां से आई हो पर इसमें संदेह नहीं कि ये कृष्ण भक्तों के रसिक आदि के आदर्शों से और "ब्रह्मवैवर्त पुराण" के वर्णनों से बहुत ही अनुप्रेरित हैं ।

ऊपर कहे गये चारों वर्गों की प्रतिनिधि रचनाओं के चुने हुए उदाहरण नीचे दिये जाते हैं --

> ता मधि एक सिंहासन सोहै ।
> रचित विविध मणि अति मन मोहै ।
> तापर महापद्म इक राजै ।
> दल सहस्र मौक्तिक मय भ्राजै ।
> तापर राजत सिया रघुनंदन ।
> अति पुंष्प कन्दर्प मद-गंजन ।
> सिया करै सौरंद शृंगारा ।
> चोरन चित अवधेश कुमारा ।

मांग सिन्दूर तेल रवि वेनी ।
वंदन सोरि मध्य सुख देनी ।।
पान खाति बोलत मृदु बैना ।
दमकत दशन हरत प्रभु चैना ।
भूषण जे हिमि रतन जड़ाये ।
कन्दुकादि अंग अंग मन भाए ।
मणि मानिक जे पट मे पोहे ।
कम्पन विनु अंगन अति सोहे ।

-रामसखे जी ।

हे जीवन धन लाड़िली
हे सुखसागर मीत ।
हे मन भावन भामिनी ।
दीजे युगपद प्रीति ।
हे नटनागर नागरी
छवि आगरि गुणखानि ।
हे शरणागत रक्षिका
निज चेरी कर जानि ।।

-ज्ञान अलि सहचरि जी ।

+ + +

सब रहस साज बनाये बन बिहरत सो रस पाये ।
बहुरंग के फूल उतारी बनमाल गुहि पिय प्यारी ।
बहुभूषण सुमन बनावे रवि प्रीतम को पहिरावे ।
प्रभु निजकर फूल उतारी बहु कंचुकि हार संवारी ।
सब सखियन को पहिरावे रचि फूलन मांग गुहावे ।
रचि सेत सुमन बहु सारी सुचि रंग बिरंगी किनारी ।।

+ + + +

परि केलि प्रभु मानव ललिय ललि लाल कौतूहल रची ।
जलकेलि क्रीड़ा मोड़ जहं अह्लाद क्रीड़ा कल मची ।
जलजात कर उछारहिं जल जलजात कैंपहि अलि लखी ।
तेहि संग भ्रमरि उड़ाहिं गुंजत देखि कवि शारद नवी ।
जनु पुर शशि टूटहिं विधंकि महि बाल तेहि रस लूटहीं ।
जनु स्वरन संपुट वेष्टि रस अलि मालि बपरि लै लूटही ।

\+ \+ \+ \+

झूलत लड़िली लाल हिंडोल ।
नील सघन पल्लव तरु शोभित जनु बितान घनमाल ।
गर्जहि मधुर मधुर पिय मन लै कोकिल शब्द सुराल ।
बरषात मेह झरत तरु झूलत बोलत मोर रसाल ।

\+ \+ \+ \+

कोउ जल कनक मठाधर यह पग पाँय के ।
जनु मरकत मणि पत्र लिखित यश सीय के ।।
जनक लली पय जावक चित्र लील दई ।
कनकपत्र जनु लिखति रामपन मोल लई ।

— रामचरणदास जी करुणासिंधु ।

लगन निबाहे ही बनि आवै ।
भाव कुभाव अभाव जानदे नेही नाम कहावै ।
दृग अटके मन सौंपि दियो अब पीतम हाथ बिकावै ।
अपनो मन न रह्यो भयो परबस कैसो ही न्याव चुकावै ।
तन दहु द्रवन पवन हंसि उपटे तदपि लगन ललचावै ।
शीश उतारि चरण ठुकरावै तब निज भाग सिहावै ।।

—कृपा निवास ।

शरद ऋतु जानि के प्यारी ।
रच्यो ब्रज रास प्रभु प्यारी ।।

धरे मणि मोति की माला ।
सोहि संग सुंदरी बाला ।।
नवत अवनागरी राजे ।
मधुर धुनि नुपुरे बाजे ।।
टेरत बर तान को प्यारे ।
गावत स्वर सुंदरी न्यारे ।।
घुमरि घुमि लेत है घुमरी ।
सुधी जब ब्याह की सुभरी ।।
भरी आनंद में प्यारी ।
पकड़ कर राम की सारी ।।
मिलि सिय राम श्री प्यारी ।
नारायण राम बलिहारी ।।

–श्रीनारायण दास

भली बनी छवि आजकी, नहीं कही कछु जात ।
मुनि जन लिय करि देति हैं, नारिन की का बात ।।
छोड़ि जुलुफ गल बाँहि दै, दिय मगज कुं आजार ।
दीरघ दृग घायल करत श्री नृपराज कुमार ।।

–युगल मंजरी जी ।

परि करि प्रत श्री स्वामिनी सुख विवर्धनी नाथ ।
हमको दीजै सुख सदा अब गहि लीजै हाथ ।।
पद पंकज देखे बिना वृथा जन्म जग जात ।
सीतावर जुत मिलहु अब छिन पल कल्प बिहात ।।

–"शुभशीला" जी

चातक त्रिपित जल पाय ।
अंबुज नयन बैन रसभीनैं जब हेरत मुसकाय ।
यक टक रही राह पुतरी ज्यों देश दशा बिसराय ।
परत न चैन रैन दिन मोको कब मिलिये धाय ।

तिहारी छवि देखि सांवरे मन मेरे नहिं कल रे ।
निशि बासर मोंहि और न भावत कौन करी छल रे ।
चाहत पान माधुरी मुख की नयन रहि तपत रे ।
बैजनाथ प्यारे लालन ऊपर वारि पियो जल रे ।।

-बैजनाथ कुरमी

होली खेलत राम सिया जोरी ।
इत सिय संग सखी बहुराजैं रघुवर संग साजन जोरी ।
कंचन बन मिथिला पुर माहीं धूम मची अति बहु भोरी ।
केशर रंग गुलाब पनीर बहन लगे खोरी खोरी ।
अबिर गुलाल कुमकुमनि पारत पिचकारिन तनु सरबोरी ।
"प्रेमलता" सुर लखत मुदित मन बरखत सुमन सुभरि भोरी ।।

-"प्रेमलता"

अधिक विलग अब जनु करि बालम
        लेहु मोहि बेगि बुलाय रामा ।
जनमा अनेक की गाँव मोरे प्रीतम
        एहु में छब्बिस साठ रामा ।।
जर जर पै हिया भजन ना बने कछु
        ठाढ़िम हूँ बिनु लाठि रामा ।
लगत पहाड़हु ते दिन भारी
        तोहि बिनु परम सुजान रामा ।।
बीतत चिन्तत सोचत रतिया
        जस तस होत बिहान रामा ।।
दहं के सैंया महोत्सव प्यारे
        अब जनु गुड़िया के खेल रामा
वास निवास वहां तोर सियवर
        आऊँ तजि जग के झमेल रामा ।।

सेऊं मैं निशि दिन, सिय पद पंकज

लखि पिय परम निहाल रामा । ।

"रूपकला" सिय किंकरि किनबे

होहु पिय बेगि दयाल रामा ।।

-"रूपकला" जी

- - -

## पांचवां अध्याय

## राम काव्य का आधुनिक युग

### रामचरित पर नवीन दृष्टि

पौराणिक काल और भक्ति युग ने राम और कृष्ण को भगवान के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित कर उन्हें इस देश की आध्यात्मिक आत्मा से जिस रूप में अभिन्न कर दिया था और धर्म ग्लानि एवं असुरों के अत्याचार के समय जिस तरह उनके द्वारा रक्षा की मोहक कल्पना को मानसिक संतोष में बैठा दिया था --पौराणिक और भक्ति युग का वह विह्वल करने वाला भाव-प्रवाह देश की जनता में उमड़ता हुआ भी देश की पराधीनता देख कर अवरुद्ध था, अंग्रेजों की दमन नीति और धर्म की दृष्टि में इन म्लेच्छों का धर्म-प्राण देश पर शासन - अवतार वाद की समस्त भाव-धारा को गन्धर्व नगर की परिकल्पना बनाये हुए था । धर्म की हानि हो रही थी, देश गुलाम था, फिर भी भगवान अवतार नहीं ले रहे थे, भगवान राम की अयोध्या, भगवान कृष्ण का गोकुल सभी हतप्रभ हैं, पर उस ज्योति का कोई पता नहीं है । इस परिस्थिति ने साहित्यिक बुद्धि और हृदय से पूर्ण जन-चेतना को अतिमानवीय कल्पनाओं से हटाकर मानवीय विचारों की ओर उन्मुख किया ।

ठीक इसी समय भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन में बालगंगाधर तिलक के क्रान्तिकारी विचारों ने जनता को भक्ति से कर्मयोग की ओर प्रेरित किया । हमारे राम और कृष्ण भक्ति के भगवान ही नहीं, कर्मयोग के, जन्मभूमि को मुक्ति दिलाने वाले वीर पुत्र के वीर चरित के आदर्श बन गये। और बाल गंगाधर तिलक के बाद महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन, चरखा, खादी तथा कुटीरोद्योग ने राम और कृष्ण को किसानों और मजदूरों के बीच ला खड़ा किया ।

राम और कृष्ण के इन आदर्शों की प्रतिष्ठा में केवल भावना और विचारों के मोड़ की ही जरूरत पड़ी । राम और कृष्ण की जो प्रतिष्ठा

भक्तियुग ने यहां के जन-मानस में कर दी थी, वह तो पहले से ही स्थिर थी, उसे निकाला नहीं जा सकता था । हां, यही किया जा सकता था कि वनवास स्वीकार करने वाले राम-सीता गांधी की अहिंसा धर्म और कुटीर-उद्योग के गांधी बन सकते थे जैसा कि "साकेत" में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने किया । इस प्रकार तत्कालीन महापुरुषों के गुणों और उत्कृष्ट कार्यों का आरोपण राम और कृष्ण के चरितों में किया गया । मैथिली शरण गुप्त के साकेत में तो अनेक अंशों में महात्मा गांधी का ही गुणानुवाद है । गांधी जी के चरित और विचारों की छाप"साकेत"काव्य में है । और यह कहा जाय कि राम और गांधी के समन्वय से नये कल्पित किसी राम का चरित ही "साकेत" में है तो यह अत्युक्ति नहीं होगी । यद्यपि बहुत अंशों में "साकेत" में गुप्त जी भक्ति- विभोर भी हो रहे हैं। और उन्होंने राम को भगवान ही माना है । केवल महापुरुष और वीर ही नहीं ।

राम के साथ-साथ उनकी कथा के अन्य अलौकिक चरित भी लौकिक आदर्शों के रूप में प्रतिष्ठित किये गये और उनकी पौराणिक गाथाओं में बहुत कुछ काट-छांट की गयी । रामकथा के साथ ऐसे अन्य चरितों- भरत, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव, निषाद, शबरी, विभीषण-- में भी आधुनिक युग के अनुरूप कोई न कोई आदर्श प्रतिष्ठित किया गया । गांधी जी के अछूतोद्धार आन्दोलन के फलस्वरूप शबरी और निषाद के साथ राम का व्यवहार के विशेष आदर्श के रूप में चित्रित किया जाने लगा । वानर और ऋक्ष, बन्दर भालू से हटकर मानव जाति के रूप में सामने आये ।

नारी-जागरण का जो आन्दोलन शुरू हुआ, उसने कैकेयी की निंदा को तिरोहित करने का प्रयत्न किया । वैसे गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस में कैकेयी द्वारा राम के लिए वर मांगने की घटना को सरस्वती की प्रेरणा कहकर उस प्रवंचना का जन-भावना में अमोघ परिष्कार कर दिया था । पर इस युग में कवियों और लेखकों ने शुद्ध मानवीय स्तर पर उसे निर्दोष करने का प्रयत्न किया । केदारनाथ

मिश्र "प्रभात" की "कैकेयी" काव्य तो इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर लिखा गया ।

रामकथा में नवीनता की खोज करने की धुन आरम्भ से ही लेखकों के मन पर सवार रही । रामचरित उपाध्याय के "रामचरित चिंतामणि" के प्रकाशन के साथ, उसमें रामकथा को राजनीति के माध्यम से प्रस्तुत देखकर रामकथा के आधार पर काव्यों में नये प्रयोग करने की रुचि कवियों में स्वतः जागृत हुई । इस समय खड़ी बोली में जो कविता शुरू हुई, दूसरी ओर से छायावाद की शैली का आरम्भ हुआ, उसने कवियों को नवीनता की खोज में बरबस प्रेरित कर दिया । जन मानस में हमारी कविता का क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी ओर कवियों का ध्यान कम रहा। साहित्य क्षेत्र में उनकी कृति की नवीनता की चर्चा उन्हें विशेष आकर्षित करती रही, चाहे वह नवीनता केवल कुछ समय के लिए हो । लोग इसकी ओर कौतुकता से उन्मुख हुए कि तुलसीदास और संस्कृत के बाल्मीकि ने रामकथा में क्या कहने से छोड़ दिया है, उसे कह दिया जाय । इस सम्बन्ध में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला की बहुत चर्चा रही । पहली बार इस उपेक्षित चरित का जिक्र कवीन्द्र - रवीन्द्र ने अपने एक लेख में किया, जिसे देखकर मैथिली शरण गुप्त इस पर एक काव्य लिखने की योजना बनायी लेकिन बाद में वह काव्य पूरी रामकथा को लेकर लिखा गया, यद्यपि उसमें प्रधानता उर्मिला के चरित की ही रही । गुप्त जी के अतिरिक्त श्री बालकृष्ण शर्मा "नवीन" ने केवल उर्मिला को लेकर ही "उर्मिला" नाम से अपना बड़ा प्रबन्ध काव्य लिखा ।

अधिकांश तुलसीदास के रामचरित मानस को ही अपने प्रबंधों का आधार इन कवियों ने बनाकर कथा में नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । वैसे बाल्मीकि रामायण को जिन लोगों ने आधार बनाया उनमें डा० बल्देव प्रसाद मिश्र और नाटककार पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त बाल्मीकि रामायण तथा अन्य पुराणों को आधार बनाकर रामचरित पर सांगोपांग विशाल प्रबन्ध था चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास "वयं रक्षाम:" है । ऐतिहासिक एवं विश्लेषण की दृष्टि से

इतनी बड़ी और विद्वतापूर्ण रचना आधुनिक राम साहित्य में पहलीबार आयी है । [illegible] रचनाएँ रामकथा की नवीनता की [illegible] सीता की माँ, [illegible] रैदास की एक रात — ऐसी रचनाएँ हैं।

राम चरित में नवीन दृष्टिकोण इस युग की रामचरित संबंधी एकांकी रचनाओं में भी जमकर अंकित हुआ, विशेषतः लक्ष्मी नारायण मिश्र के "अशोकवन" एकांकी में । रामचरित में कथा के धरातल पर नवीन दृष्टि मैथिलीशरण गुप्त के "साकेत" से आरम्भ होती है लेकिन इसका सूत्रपात का समस्त श्रेय केवल गुप्त जी को नहीं है । हमें ऐसा समझना चाहिए कि गुप्त जी के काव्य में आकर रामकथा पर नवीन चिंतन ने सर्वथा निखरा रूप धारण करलिया लेकिन उसके सूत्रपात का श्रेय रामचरित उपाध्याय को है । उनके "रामचरित चिंतामणि" का प्रकाशन संवत् १९७७ के आस पास हुआ । "रामचरित चिंतामणि" ने रामकाव्य की जो परंपरा चलाई उसमें पौराणिकता और नवीन दृष्टि दोनों का समन्वय है । बल्कि यों कहना चाहिए कि पौराणिकता के अस्तित्व को स्थिर रखते हुए नवीन चिंतन की रेखाएं खींची गयी हैं । रामचरित उपाध्याय के प्रबन्धकाव्य "रामचरित चिंतामणि" की यह काव्य परंपरा अभी तक चलती आ रही है । इसलिए खड़ी बोली के युग के आरंभ में पूर्वाग्रहगृहीत नवोन्मेष वाही रामकथा काव्यों की भी एक परंपरा है । उनका एक अलग वर्ग है । उन पर आरम्भ में ही विश्लेषण कर लेना उचित होगा ।

## पूर्वा ग्रह समन्वित नवीन दृष्टि

### रामचरित उपाध्याय

### (जन्म संवत् १९२९)

खड़ी बोली में रामकथा को लेकर सर्व प्रथम प्रबंध काव्य की रचना पं० रामचरित उपाध्याय ने की । आपका "रामचरित चिंतामणि" संवत् १९७० के आस पास प्रकाशित हुआ । इस प्रबन्ध काव्य में कुल २५ सर्ग हैं । रामकथा के प्रमुख प्रसंगों को प्रांजल भाषा तथा अपनी नयी शैली में उपाध्याय जी ने प्रस्तुत किया है । काव्य शास्त्र की कसौटी पर उपाध्याय

जी की कविता खरी उतरती है । संवादों के प्रसंग विशेषतः द्रुतविलम्बित छंद में लिखे हैं और उनमें अलंकार का प्रत्येक छंद में प्रयोग है । अंगद-रावण संवाद तो इस दृष्टि से सुन्दर है । दो उदाहरण देखिए--

कुशल से रहना यदि है तुम्हें,
दनुज ! तो फिर गर्व न कीजिए ।
शरण में गिरिए रघुनाथ के,
निबल के बल केवल राम हैं ।२८।

+ + +

सुन कपे ! यम इन्दु कुबेर की
न हिलती रसना मम सामने,
तदपि आज मुझे करना पड़ा
मनुज -सेवक से वदवाद भी ।३८।

(सर्ग १९)

उपाध्याय जी के प्रबन्ध काव्य में कवि का झुकाव काव्यत्व की ओर है, यद्यपि इस ग्रंथ की रचना उन्होंने रामभक्ति से प्रभावित होकर ही की है पर यथास्थान रावण के वैभव की प्रशंसा कर उन्होंने कवि-धर्म का पालन किया है । हनुमान जी सीता की खोज करने के बाद जब इन्द्रजित द्वारा पकड़े जाते हैं और रावण की सभा में उपस्थित होते हैं, उस समय हनुमान जी का यह सोचना बहुत यथार्थ है -

करने लगे विचार पवनसुत विस्मित मन में
ये नृप लक्षण कहां मिलेंगे प्राकृत जन में ।
धन्य रीति है, धन्य नीति है, धन्य प्रभा है,
इस रावण की धन्य शांति है, धन्य सभा है ।

सर्ग १७-७ ।

यद्यपि काव्य में कवि ने कोई नया दृष्टिकोण नहीं उपस्थित किया है तथापि विषय की प्रांजलता और शैली की मौलिकता एवं भाषा की सफाई, इस काव्य की अपनी विशेषताएं हैं ।

## श्री शिवरत्न शुक्ल "सिरस"

सिरस जी ने रामभक्ति से प्रभावित होकर रामकथा पर दो काव्य लिखे हैं - "श्री राम तिलकोत्सव" और "श्री रामावतार" । "रामावतार" छोटा सा ग्रंथ है, जिसमें रामावतार की [illegible] विवेचना ही है। "राम तिलकोत्सव" ३२ सर्गों का ग्रंथ है जिसकी कथा राम के राज्या-भिषेक से आरंभ होती है और अनेक प्रसंगों की उद्भावना के साथ ३२ सर्ग तक जाती है । कवि ने वर्तमान युग में उद्भूत अनेक राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों को रामकथा और रामराज्य की नीति में समेटना चाहा है, विश्व का समस्त भूगोल और वर्तमान आन्दोलनों को अपने काव्य में उपस्थित कर रामकाव्य को इस दृष्टि से सर्वथापूर्ण करने की चेष्टा की है । २५वें सर्ग में रामचन्द्र जी के व्योम-विहार का वर्णन है, और उस व्योम-विहार के माध्यम से विश्व के अनेक देशों की जानकारी कवि ने उपस्थित की है । इस प्रकार इस ग्रंथ में काव्य तो कम है, राम साहित्य की परंपरा का निर्वाह ही अधिक है । वैसे भी अनेक वर्णिक वृत्तों में कवि ने अपनी कल्पनाएं निबद्ध की हैं, पर उनमें काव्यत्व नहीं आ सका है । वस्तुतः कवि का उद्देश्य रामभक्ति के प्रसार में अपना भी एक कंधा लगाकर कृतकृत्य होना है । ग्रंथ की समाप्ति पर उसने जो कहा है उससे यही स्पष्ट होता है --

> रघुबर यश चर्चा चित्त को शान्ति देती,
> विषय विलय होते मोहादि भी मंद होते ।
> शुचि मन, मति होके विश्ता बोध लाती,
> प्रभु गुण गण हैं मंदार क्या न देते ?

इस ग्रंथ की रचना में "हरि औध" के "प्रियप्रवास" की स्पष्ट छाया है । छोटी सी कथा को आधार बनाकर बड़े प्रबन्ध की योजना और वर्णवृत्तों का प्रयोग । "प्रियप्रवास" की वर्णवृत्त-शैली से हिन्दी के अनेक कवि प्रभावित हुए थे और उन्होंने वर्णिक वृत्तों में काव्य की रचना शुरू की । सिरस जी का "राम तिलकोत्सव" भी उसी शैली की नकल है ।

यह प्रमुख प्रबन्ध काव्यों का परिचय हुआ । इनके अतिरिक्त भी कुछ प्रबन्ध काव्य ऐसे हैं जो राम भक्ति आन्दोलन से प्रभावित होकर वर्तमान युग में लिखे गये ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में, किन्तु अप्रकाशित ही रह गये । इन प्रबन्ध काव्यों में किसी कवि ने राम कथा को कोई नई दिशा नहीं दी है बल्कि रामकथा में पुराणों तथा अन्य ग्रंथों से प्रसंगों को बढ़ाकर नयापन मात्र लाने की कोशिश की है । केवल रामचरित उपाध्याय को छोड़कर शेष कवियों द्वारा संस्कृत कवियों और "रामचरित मानस" की कल्पना का ही चर्वित चर्वण हुआ है । रामचरित उपाध्याय ने यद्यपि रामकथा को कोई नई दिशा नहीं दी तथापि उनका ग्रंथ शैली भाषा एवं विषय के प्रस्तुतीकरण में सर्वथा मौलिक है ।

"रामचरित चिंतामणि" लिखकर श्री रामचरित उपाध्याय ने राम-प्रबन्ध काव्य-परंपरा को एक स्वस्थ रूप प्रदान किया पर शिवरत्न शुक्ल "सिरस" के "रामतिलकोत्सव" ने उसे फिर विकृत कर दिया ।

## राधेश्याम कथावाचक

सबसे अधिक लोक प्रिय श्रव्य काव्य आधुनिक युग में लिखा गया - राधेश्याम कथावाचक का "रामायण" जिसे उन्हीं के नाम पर "राधेश्याम-रामायण" कहते हैं । तुलसीदास के "रामचरितमानस" के बाद यह काव्य ही सर्वाधिक लोकप्रिय रामकथा काव्य है । इसकी जितनी उपादेयता श्रव्य के रूप में है उससे अधिक अभिनेय रूप में है । रामलीला में जहाँ तुलसीदास की चौपाइयों को गाकर व्यास जी अभिनेताओं को आगामी कथा और संवाद का संकेत देते हैं वहाँ अभिनेता अधिकांश राधेश्याम रामायण के संवादों का रंगभूमि पर पाठ किया करते हैं ।

राधेश्याम जी ने रामकथा को कहने की एक नई शैली और छंद की सृष्टि करके, जो लोक गीतों तथा आल्ह शैली के निकट पड़ती है, राम साहित्य में नितान्त मौलिक कार्य किया है । इनके इस कार्य की प्रशंसा साहित्य क्षेत्र में तो कम हुई पर इसने उत्तरी भारत के सामाजिक विनोदों में महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है । इस ग्रंथ की महत्ता इसी से आंकी

जा सकती है कि इसके अनेक संस्करण हुए, अनेक दूसरे लेखकों ने राधेश्याम की शैली पर "रामायण" लिखे, "राधेश्याम के रामायण" की बिक्री इतनी अधिक हुई कि, मूल "राधेश्याम रामायण" के जाली संस्करण प्रकाशित करके बेंचे गये । राधेश्याम जी अच्छे गायक भी थे और अपनी रामायण का जब वे पाठ गायन करते थे, जनता मुग्ध हो जाती थी । "राधेश्याम की रामायण" का यह व्यापक प्रचार लोकप्रियता की दृष्टि से "रामचरित मानस" से होड़ लेता है और "रामचरित मानस" में जिस रुचि के साथ क्षेपक लिखे गये, उसी तौल पर "राधेश्याम रामायण" की नकल पर रामायणों की रचना प्रकाशकों ने करवाई । इस प्रकार रामसाहित्य में "राधेश्याम रामायण" की रचना एक महत्वपूर्ण अध्याय है और इसकी महत्ता को किसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

"राधेश्याम रामायण" की साहित्यिक मर्यादा में केवल इतनी कमी खटकती है कि इसकी भाषा में एक रूपता और साहित्य की भाषा का निखार नहीं है । इसके बाद भाव, विचार और प्रबन्ध का जहां तक प्रश्न है, "राधेश्याम रामायण" "रामचरितमानस" तथा "रामचन्द्रिका" के बाद अपना तीसरा स्थान रखता है । कहीं कहीं कवि राधेश्याम जी ने प्रबन्ध निर्वाह में कवि कल्पना का अच्छा उत्कर्ष दिखाया है जिसे पढ़कर हृदय गद्गद् हो उठता है । कहीं विषय के अनुरूप शब्दों का चयन कवि की प्रतिभा को द्विगुणित सौन्दर्य के साथ काव्य को चमका देता है । इस काव्य की यह भी विशेषता है कि कवि ने "रामचरित मानस" की शैली, भाव, विचार, तथा प्रबन्ध का अनुकरण बहुत कम किया है, रामकथा को प्रायः मौलिक रूप में उपस्थित करता है । उसमें युग के अनुसार राष्ट्रीय, सामाजिक तथा क्रान्तिकारी विचारों की मौलिक अनुभूति अभिव्यक्त होती चली है ।

रामकथा के प्रायः सभी महत्वपूर्ण प्रसंगों का समावेश इस रामायण में हो गया है । मेघनाद-वध और सुलोचना - सती के प्रसंग में कवि की एक कल्पना लोकमन को पुलकित कर देती है ---सुलोचना अपने पति मेघनाद का सिर लेने के लिए, जिससे वह सती हो सके, रामदल की ओर

पालकी पर चढ़कर आ रही है । रामदल में उस पालकी को आती देखकर अनेक कल्पनाएं होती हैं, अनुमान यही होता ही कि यह सीता की पालकी है । रावण-पुत्र-वध देखकर निराश हो उठा है और सीता को राम की सेवा में भेज कर भगवान राम से अब संधि चाहता है । हनुमान ने इन बातों को सुनकर कहा--यदि ऐसा हुआ तो बड़ा मुश्किल होगा, लंका का राज्य तो भगवान विभीषण को दे चुके हैं और अब जब रावण भी भगवान की शरण में आ गया तो उसे क्या देकर शरणागत धर्म की रक्षा की जायेगी। हनुमान के इस विकल्प को सुनकर भगवान राम ने जो उत्तर दिया, वह राम का अत्यन्त उदात्त चरित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है -

कह दूं ? बतला दूं- क्या है वह ? जो सम्मुख आई कठिनाई
रावण भी शरण आ गया तो, लंकेश कौन होगा भाई ।।
भक्त विभीषण तनिक भी चिंता को हों प्राप्त
उससे पहले यह विषय, प्रभु ने किया समाप्त ।
बोले हम भारतवासी हैं शरणागत को न भुलायेंगे ।
इनको लंकेश बनाया तो - उसको अवधेश बनायेंगे ।।
अब तक दो भाई फिरते थे बन-बन में बनबासी होकर ।
अब चारों भाई विचरेंगे सब जग में सन्यासी होकर ।।

(सुलोचना सतीखंड)

राधेश्याम रामायण आठ काण्ड और २५ कथाओं में विभक्त है । अंतिम चार कथाएं उत्तर रामचरित अथवा सीता के बनवास से संबंधित हैं जिनके लेखक पं० मदन मोहन लाल शर्मा हैं और संपादक पं० राधेश्याम कथावाचक हैं । ऐसा मालूम पड़ता है कि उत्तर राम चरित के चारों खण्डों को रामायण में मिलाने का निश्चय बाद में किया गया है । उत्तर रामचरित को किन्हीं कारणों से पं० राधेश्याम कथावाचक ने नहीं लिखा किन्तु बिना इस कथा को लिखे सम्पूर्ण रामकथा अधूरी रहती थी अतएव इनके छोटे भाई श्री मदन मोहन लाल शर्मा ने संवत् १९८१ में इन चारों खंडों को लिख कर पूरा किया । मदन मोहन लाल शर्मा ने भी इन चारों में खण्डों में शैली और भाषा का जहां तक प्रश्न है पूर्ण रूप से कथावाचक

जी का अनुसरण किया है और कोई अन्तर शेष २१ खंडों से इन चार खण्डों का मालुम नहीं पड़ता ।

राधेश्याम कथावाचक ने तुलसीदास की भाँति ही अनेक स्थलों की रामकथा सामग्री का सदुपयोग अपनी रामायण में किया है । इनका यह उपयोग उत्कृष्ट मालुम पड़ता है । अतः इसकी सराहना की जायगी । एक उदाहरण लीजिए--

है सोच नहीं अब सीता का, दुख नहीं तुम्हारे जाने का ।
संकोच नहीं इस विपदा में अपने भी प्राण गंवाने का ।
कुछ चिंता है - तो यह है अब पकड़ी हैं बांह विभीषण की।
हे भाई, उठकर पार करो--यह नौका रघुकुल के प्रण की ।।।

(मेघनाद शक्ति -प्रयोग लंकाकाण्ड-
पृ० २४) ।

राधेश्याम "रामायण" की भाषा खड़ी बोली है, पर जहां-तहां उसमें बाजारूपन आ गया है और भाषा की एक-रूपता अन्त तक निभ नहीं पाती । लेकिन इतना सब होने पर भी इस ग्रंथ की हिन्दी के प्रति एक उपकार है, इसने हिन्दी के प्रचार में बड़ा सहयोग दिया है, इस दृष्टि से यह ग्रंथ "रामचरित मानस" के समान होड़ लेता है । पौराणिक जनरुचि को राष्ट्रीय विचारों की परिधि में संस्कृत करने का काम भी इस रामायण में हुआ है । रामकथा पर इतनी लोक प्रिय रचना इसके बाद फिर न हो सकी ।

-श्री [illegible] पांडेय

आधुनिक परंपरा में लक्ष्मण और हनुमान के चरित को लेकर हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री श्यामनारायण पांडे ने दो रचनाएं लिखीं । लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध को लेकर "तुमुल" काव्य और हनुमान के लंका-दहन की पृष्ठभूमि पर "जय हनुमान" काव्य । दोनों काव्यों की भाषा में ओज और प्रसाद गुण की विशिष्टता समान रूप से वर्तमान है जो इन काव्यों की ओर पाठक के हृदय और मस्तिष्क को सहज ही आकर्षित कर लेती है ।

दोनों काव्यों का साहित्यिक परिचय इस प्रकार है --

तुमुल --प्रथम संस्करण "त्रेता के दो वीर" नाम से हुआ था । दूसरा संस्करण १९४८ ई० में प्रकाशित हुआ जिसमें कवि ने कुछ परिवर्तन परिवर्द्धन करके उसका नाम "तुमुल" रख दिया ।"तुमुल" में १९ छोटे छोटे प्रकरण हैं । मात्रिक और वर्णिक दोनों छंदों का प्रयोग हुआ है । कथा का आरम्भ रावण के विषाद से होता है जहां उसका पुत्र मेघनाद आकर उसे आश्वासन देता है और राम को पराजित करने की प्रतिज्ञा करता है और अंत वहां है जहां लक्ष्मण मेघनाद को मार कर आते हैं और रामचंद्र का पैर छूकर कृतकृत्य हो उठते हैं । यद्यपि इस काव्य में भक्ति भावना का चित्रण तो अवश्य है पर कवि ने राक्षस और भगवान की भावना पर अधिक बल न देकर दो वीरों की वीरता, उनके उत्साह और अदम्य पौरुष को चित्रित करने का भरपूर प्रयत्न किया है ।

काव्य में मेघनाद और लक्ष्मण दोनों वीरों के ओजस्वी किन्तु सौहार्द पूर्ण संलाप के मार्मिक और सफल स्थान हैं - लक्ष्मण मेघनाद से कहते हैं ---

तेरी छाती चण्डिका केशरी - सी
लम्बी चौड़ी ज्ञात होती मुझे है ।
मोटे लम्बे पुष्ट हैं बाहु तेरे
योधा होते ज्ञात ही देखने से ।।
तेरी कैसे क्या करूं मैं प्रशंसा
तूने तो हैं इन्द्र को भी हराया
तेरी होती शौर्य से है प्रतिष्ठा
ज्ञानी मानी विक्रमी मानवों में ।।
आके आंखों से तुझे देख के तो
इच्छा होती युद्ध की ही नहीं है
कैसे तेरे साथ में मैं लड़ूंगा ।।
कैसे बाणों से तुझे मैं हनूंगा ।।

(१०वां प्रकरण पृ० ५४-५५)

इस पर मेघनाद का उत्तर सुनिए---

लावण्यधारी ब्रह्मचारी,
आप बुद्धि निधान हैं ।
संसार में अत्यन्त वीर
पराक्रमी धृतिमान हैं ।।
मैं मांगता हूं भीम रण का दान,
मुझको दीजिए ।
चैतन्य होकर तुमुल संगर
आप मुझसे कीजिए ।(प्रकरण १२ पृ० ६०)

इन संवादों से युद्ध की महत्ता बढ़ जाती है, मानव के भावों की पृष्ठभूमि निर्मल हो उठती है । "रामचरित मानस" में रावण-पक्ष के वीरों की वीरता को भी तिरस्कृत किया है उससे उन स्थलों में मानवता की भावना उड़न-छू होकर वीरता का अंकन करती है, "तुमुल" में यह बात नहीं है । दोनों चरितों को मानवीय पृष्ट भूमि पर उपस्थित करने का कवि का प्रयास प्रशंसनीय, निर्मल और उत्कृष्ट है ।

ग्रंथ के आदि और अंत में भक्तिभाव से अथवा काव्य के शास्त्रीय मंगलाचरण की परिपाटी पालन करने के लिए कवि ने रामभक्ति का आलाप किया है --

गूंजा है धरातल से गगन तक
आपकी जय हो प्रभो !
जय आपकी, जय हो प्रभो !
जय आपकी, जय हो प्रभो ।। प्रकरण १९, पृ० १३७ ।

इसी उपसंहार से काव्य को रामकथा साहित्य के नये मोड़ में नहीं रखा जा सकता । कवि ने प्रबन्ध की कल्पना वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों के आधार अ पर की है । इन्हीं भावनाओं और पृष्ठभूमियों पर रामकथा साहित्य की इसी परंपरा पर आपकी दूसरी प्रसिद्ध रचना है--

"जय हनुमान" - जय हनुमान सात सर्गों का काव्य है । इसकी समस्त कथा वाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड से ली गयी है । कहीं-कहीं

सुन्दर काण्ड के श्लोक ज्यों के त्यों अनूदित हो गये हैं । काव्य में मात्रिक छंदों का ही प्रयोग किया है । "तुमुल" की अपेक्षा इसमें काव्यत्व की कमी है । हनुमान की लंकायात्रा, सीता को खोजकर उनसे संवाद लेना और फिर राक्षसों का संहार, रावण की सभा का दर्शन तथा अंत में लंका को जलाकर समुद्र में कूदकर उस पार पहुंच कर राम के दर्शन से कृतकृत्य हनुमान के वीर कार्य का सरल और ओजस्वी शैली में दर्शन ही "जय हनुमान" की सफलता है । काव्यत्व की दृष्टि से यह काव्य "तुमुल" से निम्न कोटि का है ।

## श्री गया प्रसाद द्विवेदी "प्रसाद"

१९६३ ई० में प्रसाद जी ने "नंदिग्राम" नाम से एक १८ सर्गों का प्रबन्ध काव्य राम कथा पर लिखा । इसमें भरत का चरित्र विस्तार के साथ गाया गया है । इसमें नये विचार तथा भावोन्मेष तो नहीं है किंतु संस्कृत काव्य की प्राचीन परंपरा में अनुप्राणित तथा अनुरंजित है । प्रसाद जी संस्कृत के विद्वान तथा अध्ययनशील व्यक्ति हैं । "श्रीमद् भागवत" "वाल्मीकि रामायण", "महाभारत", संस्कृत के दूसरे आर्ष ग्रंथों का छायानुवाद "नंदिग्राम" में है । एवं तुलसीदास की कविता का भी यथेष्ट प्रभाव इस दिशा में है । भागवत के टीकाकार का यह श्लोक--

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ।

नंदिग्राम में स्वाभाविकता के साथ अनूदित हुआ है --

मतिमंद ज्ञान गति गहें, मूक श्रुति गायें ।
नभ चुम्बित हिमगिरि शिखर, पंगु चढ़ जायें ।।

आज की राष्ट्रीय भावना भी काव्य में मुखरित हुई है । सातवें सर्ग में लवणासुर के अंदर युद्ध अभियान और विजय-यात्रा का ओजस्वी प्रसंग तथा ध्वज गीत-आज की पृष्ठभूमि में कवि की सूझ-बूझ है ---

शुभ कामना प्रजा की है साथ में हमारे ।
यह राष्ट्र की पताका है हाथ में हमारे ।

झुकने इसे न देंगे है देह प्राण जब तक,
ध्रुव - सा अटल रहेगा गुण गान मान तब तक ।
यह विश्व में विजयिनी राष्ट्र ध्वजा हमारी
तन्मन करे समुन्नत दे शान्ति-सिद्धि सारी ।
इसके लिए जिएं हम, इसके लिए मरें हम
सर्वस्व भी निछावर इसके लिए करें हम ।

पृ० १२९ f

काव्य के प्रबन्ध में मौलिकता नहीं आ सकी है । चरितों में कोई नयी दिशा या अपने में पूर्णता भी नहीं है, हां, विषयों का समावेश, विविध छंदों का प्रयोग विस्तार कवि की शक्ति के परिचायक हैं । जिस भक्ति भावना में रामचरित मानस और उसका परवर्ती राम-साहित्य लिखा गया उसी को अपने कृतित्व में उतार कर कवि आत्म-तुष्टि लेना चाहता है । देखिए---

दिन एक रही अवधि अवध - राम न आये
क्या जान कुटिल - क्रूर मुझे नाथ भुलाये ?
अब भी न गया प्राण रहा श्वास-पवन जो,
धिक्कार सहस बार जन्म - जीवन - धन तो ।। पृ० २२० ।

ये पंक्तियां तुलसीदास से अनुप्रेरित हैं --

रहा एक दिन अवधि अधारा
+ + +
कारण कवन नाथ नहिं आये
जानि कुटिल प्रभु मोहिं बिसराये ।

और फिर प्रभु का यह गुण गान कवि के लक्ष्य को प्रकट कर देता है --

मिट आसुरी सत्ता गयी नर लोक से,
जग हो गया जगमग सु दिव्या लोक से ।
निर्भय हुए सुर-संत प्रभु के राज्य में,
छाया अखिल आनंद विश्व-समाज में । पृ० २९३।

तुलसीदास द्वारा निरूपित भक्ति के सन्दर्भ- में लिखा गया यह काव्य प्राचीनता नवीनता का ही मिश्रण है । अवसर प्राप्त प्रसंगों में भरत के चरित्र की विशेषता भी स्पष्ट नहीं हो सकी है जोकि आवश्यक थी । वर्णनात्मकता से काव्य हल्का हो गया है । अलंकार हैं पर रस और भाव नहीं । भरत के चरित को पद्य-बद्ध करने के अतिरिक्त कवि और मार्मिकता नहीं ला सका है, देखिए---

सुनकर कहा गुरु ने मुदित मन --
"धन्य भरत सुजान !"
हैं राम जीवन मूल तब
तुम राम के प्रिय प्राण ।
 \+ \+ \+
कुछ दे सकीं बाधा न तुमको,
व्याधियों जग - जन्य ।
हे भरत ! तुमसे हो गया ।
रघुकुल कमल - वन धन्य ।

यह भी खेद का विषय है कि यद्यपि कवि संस्कृत का विद्वान है लेकिन संस्कृत साहित्य में आयी सामग्री का सही उपयोग इस काव्य में नहीं किया गया है । उदाहरणार्थ वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड में वाल्मीकि का आश्रम गंगा के दक्षिण तट पर स्थित तमसा नदी के तट पर कहा गया है और नंदिग्राम के कवि आजमगढ़ के तट पर कहता है जो सर्वथा गलत है ।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य रचनाओं की भी चर्चा इस धारा के अंतर्गत की जा सकती है । ये रचनाएं रामकथा को लेकर लिखी गयी हैं पर इनमें काव्य का उचित मापदण्ड उसकी कसौटी का सर्वथा अभाव है जैसे गोकुल चन्द्र शर्मा का "अशोकवन", राजाराम श्रीवास्तव का "लक्ष्मण शक्ति" काव्य ।

## सर्वथा नवीन दृष्टि

इस वर्ग की रचनाएं ही इस युग की रामचरित सम्बन्धी गति

निधि रचनाएं हैं, जिनकी विशेषता के सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख किया गया है । इन रचनाओं ने रामकथा को एक नये प्रकाश और नये युगीन चिन्तन में लोक के सम्मुख प्रस्तुत किया ।

इस वर्ग में लिखी गयी रामचरित सम्बन्धी रचनाओं की मुख्य विशेषताएं ये हैं --

१- गांधी जी के राजनीतिक - आन्दोलन को रामचरित के माध्यम से प्रकट करने की भावना जिसमें अछूतोद्धार का प्रसंग भी प्रमुख रूप से सामने आया ।

२- राम को भगवान और वीर पुरुष के अतिरिक्त राजनीतिक और सामाजिक नेता का रूप देना ।

३- तुलसीदास के रामचरित मानस तथा संस्कृत के अन्य कवियों की रामचरित सम्बन्धी रचनाओं को लांघकर वाल्मीकि रामायण को अपनी कृतियों का आधार बनाने की चेतना ।

४- उर्मिला, कैकेयी, शबरी जैसे पात्रों का रचना का मुख्य विषय बनाने की उत्सुकता ।

५- इस युग की मानवीय पृष्ठभूमि पर राम और उनकी कथा को देखने की प्रवृत्ति ।

रामकथा में इस नए मोड़ का आरम्भ सर्वप्रथम श्री मैथिलीशरण गुप्त की काव्य रचना "साकेत" से होता है ।

## श्री मैथिलीशरण गुप्त

(जन्म संवत् १९४३-२०२१)

श्री मैथिलीशरण गुप्त का "साकेत" १२ सर्गों का एक वृहत् काव्य है । जैसा कि पहले कहा गया है कि इसका प्रधान विषय उर्मिला के विरह की कथा ही थी, किन्तु उसी पृष्ठभूमि पर पूरी रामकथा को कह जाने का प्रयास गुप्त जी ने किया है । अपने प्रबन्ध में एक साथ दो कथाओं के अन्वय का प्रयास गुप्त जी ने किया है ---लक्ष्मण और उर्मिला के संयोग और लम्बे वियोग की कहानी, तथा राम के विवाह, बनवास तथ

रावण - विजय की गाथा । घटनाएं केवल साकेत और चित्रकूट में ही घटती हैं । इस प्रकार एक कहानी और एक पूरी गाथा दोनों को अन्वित कर "साकेत" में उपस्थित किया गया है । पहले से आठवें सर्ग तक राम राज्याभिषेक से लेकर चित्रकूट में राम-भरत मिलन की कहानी है । नवें और दसवें सर्ग में उर्मिला के विरह का वर्णन है । ये दोनों सर्ग काव्य-कला की दृष्टि से मार्मिक हैं । पुनः ग्यारहवें और बारहवें सर्ग में मात्र कथा ही कही गयी है । ग्यारहवें सर्ग में संजीवनी का पहाड़ लेकर आते हुए हनुमान का "साकेत" के ऊपर उड़ना और राक्षस के भ्रम में हनुमान का बाण से घायल होकर गिर पड़ना, तुलसीदास के "रामचरित मानस" की ही अविकल कल्पना है, वाल्मीकि रामायण में भी हनुमान संजीवनी पहाड़ ले जाकर लाते हैं पर न वे अयोध्या के ऊपर से लौटते हैं और न भरत के बाण से आहत होकर गिरते ही हैं ।

यह कल्पना "साकेत" में थोड़ा और भी भद्दी हो गयी है, जब हनुमान वहां भरत के सामने रुककर राम-रावण संघर्ष की पूरी कहानी कहने लगते हैं । एक और तो लक्ष्मण की प्राण-रक्षा का प्रश्न हैं, शीघ्र से शीघ्र हनुमान जी को पहुंचना चाहिए, दूसरी ओर भरत उन्हें रोक कर पूरी कहानी सुनने लगते हैं ।

हनुमान जी चले जाते हैं । फिर अयोध्या में यह समाचार फैलता है और सेना सजने लगती है, लंका पर चढ़ाई करने के लिए । और शायद जब तक सेना पहुंचेगी वहां युद्ध भी समाप्त हो जायगा । यहां यह प्रसंग "साकेत" में बहुत ही अस्वाभाविक बन पड़ा है । तुलसीदास के "राम चरित मानस" में यह घटना केवल भरत और हनुमान तक ही सीमित रहती है, कौतूहल और आश्चर्य कथा के प्रवाह में आ जाता है, किसी प्रकार भी अस्वाभाविकता नहीं आने पाती, लेकिन "साकेत" में इस कल्पना को विरूप कर दिया गया है ।

पुनः बारहवें सर्ग में शेष कथा है । राम रावण को विजय कर लौट आते हैं, लक्ष्मण और उर्मिला फिर मिलते हैं, कवि के काव्य का लक्ष्य पूरा होता है । अयोध्या में उल्लास छा जाता है ।

"साकेत" की बहुत बड़ी विशेषता है उर्मिला विषय की उपेक्षा को समाप्त कर उसके चरित की महिमा को अंकित करना, तथा साथ ही "साकेत" की बहुत बड़ी कमी है, राम के विराट गौरव की रावण विजय की अतुलनीय गाथा को मूर्तिमान करने में सर्वथा अक्षम रहना । "साकेत" की नवीनता है रामकथा के माध्यम से गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन, कुटीरोद्योग, विश्वबन्धुत्व तथा वर्तमान युग के प्रजातंत्र - शासन की अभिव्यक्ति ।

इस प्रकार कुल मिलाकर "साकेत" रामकथा का नवीनीकरण है । उसमें काव्य का कौशल भी है, पौराणिक अतिशयोक्ति की कहानी भी है, राजनीतिक प्रचारवाद भी है । राजनीतिक प्रचारवाद में जहां-तहां काव्य केवल तुकबन्दी बनकर ही रहा है---

पुरातन वन की ओर ।
या लोक मन की ओर ।
होकर न धन की ओर ।
हैं राम जनकी ओर ।(सर्ग ४, पृ० १०६) ।

नवीनता में बढ़कर कवि ने जहां-तहां पौराणिक मर्यादा को भूलकर पात्रों से अनुचित भाषा और भाव का प्रयोग करवाया है । देखिये ये वाक्य --

कैकयी चिल्ला उठी सोन्माद --
" सब करें मेरा महा अपवाद
किन्तु उठ ओ भरत, मेरा प्यार,
चाहता है एक तेरा प्यार ।
राज्यकर उठ वत्स ! मेरे बाल,
मैं नरक भोगूं भले चिरकाल ।"

(सर्ग ७ पृ० १७९)।

कैकयी का सोन्माद चिल्लाना और उस उन्माद में भरत को मेरा प्यार कहकर भावुक होना,.उस समय अयोध्या की राजनीति की सूत्रधार

कैकयी के लिए कहां तक संगत है । "मेरा प्यार" शब्द तो बिलकुल सिनेमा की बोली है ।

इस प्रकार जहां-तहां [illegible] की भाव - कल्पना को अविकल अपना लेना कवि की काव्य-प्रतिभा की कमी का [illegible] है --

जुड़ आयी थी वहां [illegible] ग्राम की,
वे साधक ही सिद्ध हुईं, विश्राम की ।
सीता सबसे प्रेमभाव पूर्वक मिलीं,
[illegible] में [illegible] सी वे खिलीं ।
"शुभे, तुम्हारे कौन उभय ये श्रेष्ठ हैं?"
गोरे देवर, श्याम उन्हीं के ज्येष्ठ हैं ।
वैदेही यह सरल भाव में कह गईं,
तब भी वे कुछ तरल हंसी हंस रह गईं ।

(सर्ग ५, पृ० १३१) ।

इसमें अंतिम पंक्ति - "वे कुछ तरल हंसी हंस रह गईं ।" समस्त उसी व्यक्ति को ओछा कर देती हैं ।

इस काव्य की लोकप्रियता के पीछे गांधी जी के सत्याग्रह, [illegible] तथा राम राज्य की अभिव्यक्ति है, जिसे युग के अनुरूप रामकथा में देखकर जनता ने पसंद किया । और कला पक्ष की ओर से कल्पना तथा भावों का अनुठापन और भाषा का प्रसाद गुण इस काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है । आधुनिक युग के राम काव्यों में "साकेत" का ही प्रचार हुआ है, जनता इसे ही अधिक जानती है ।

खड़ी बोली में इस के अनन्तर और भी काव्य लिखे गये । आलोचकों की दृष्टि में काव्य का स्तर और ऊंचा उठा । यद्यपि बीच-बीच में अनेकों [illegible] ने "साकेत" के भीतर "रामचरित मानस" की संपूर्ण गरिमा देखी है लेकिन सर्वथा इसका अनुमोदन नहीं हो सका ।

गुप्त जी की रामचरित पर दूसरी रचना है - "पंचवटी" । पंचवटी में कुल १२८ छंद हैं जिसमें लक्ष्मण के तपोनिष्ठ जीवन की महत्ता

आंकना ही कवि का लक्ष्य है । काम-लोलुप राक्षस-युवती शूर्पणखा का उद्धत प्रतिकार भाई राम का प्रहरी बनना, कठोर संयम और [illegible] की उत्तप्त तप-मूर्ति लक्ष्मण का उज्ज्वल व चरित्र इस लघु काव्य में गुप्तजी ने अंकित कर दिया है । लेकिन [illegible] कौशल तथा विचारों का ही अधिक इस काव्य में है । भाषा प्रसादपूर्ण है - लक्ष्मण का यह शब्दचित्र देखिए--

> पंचवटी की छाया में है
>
> सुन्दर पर्णकुटीर बना ।
>
> उसके सम्मुख स्वच्छ शिलापर
>
> धीर वीर निर्भीक मना ।
>
> जाग रहा यह कौन धनुर्धर
>
> जबकि भुवन भर सोता है ।
>
> भोगी कुसुमायुध योगी-सा
>
> बना दृष्टिगत होता है । पंचवटी-छंद २ ।

## प्रदक्षिणा

इसके बाद संवत् २००७ में गुप्त जी ने रामकथा पर एक तीसरा काव्य लिखा - प्रदक्षिणा । प्रदक्षिणा एक तरह से रामकथा की संक्षिप्त सूची है जो काव्य रूप में प्रस्तुत की गयी है । राम के जन्म से लेकर रावण-विजय तक की कथा को काव्य के रूप में, भाव तथा अलंकार से रंजित भाषा में ३०१ चौपयों में गाया जा गया है । साकेत तथा पंचवटी में काव्यागत जो विशेषताएं हैं वे जहां तहां इसमें भी प्रस्फुटित और समुल्लसित हैं ।

सारंगा-सदा ब्रज अथवा ढोला मारू जैसी गाथाएं जो एक बैठक में समाप्त की जा सकती हैं वैसे ही एक बैठक में समाप्त होने वाली रामकथा गुप्त जी ने लिखकर आधुनिक हिन्दी में एक नयी "टेकनीक" प्रस्तुत की है । वैसे हम इसे वाल्मीकि रामायण के प्रथम सर्ग मूल रामायण की अनुकृति रचना कहेंगे । इसका आरम्भ मंगलमय प्रणाम से तथा अंत साधुवाद से हुआ है,जो प्रायः कथा कहने की परिपाटी है --

एकाकी रह सका न जिनका
मातृ गर्भ में भी अनुराग,
अनुज - हेतु अवकाश वहां भी
देकर उसका जिनका त्याग ।
स्वयं राम ने चन्द्र छोड़कर
जोड़ा जिनका लक्ष्मण नाम,
उन सौमित्रि इन्द्र जेता
दृढ़ जेता को प्रथम प्रणाम ।।

(आरम्भ पृ० ९)

\+ \+ \+

रक्षक मात्र रहे वे राजा
राज्य प्रजा ने ही भोगा
हुआ यहां तब जो जन-रंजन
वह कब और कहां होगा ?

(अंत पृ० ७६)

## श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

गुप्त जी के बाद रामचरित के दो प्रसंगों की सशक्त अभिव्यक्ति –

"निराला" ने अपने लघुकाव्य "राम की शक्ति पूजा" और लम्बी कविता "पंचवटी" प्रसंग में की ।

"राम की शक्ति पूजा" की रचना सन् १९३६ ई० में हुई थी । इस लघुकाव्य की मूल कथा राम-रावण के महासमर की वह समय है जब राम युद्ध में जय से निराश होकर वानरवाहिनी से घिरे चिन्ताकुल हो गये और फिर उन्होंने महाशक्ति की आराधना की तथा उनसे विजय का वरदान प्राप्त किया । पूरी कविता अत्यन्त संवेदनापूर्ण काव्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्तियों से ओतप्रोत, रसात्मक तथा मर्म को हिला देने वाली है । अर्थों के अनुसार शब्द का चयन उनकी कला का ज्वलन्त निदर्शन है और इन्हीं सब कारणों से कथा केवल पौराणिक नहीं रहती, संवेदना और तपश्चर्या के बीच मनुष्य की अपनी आत्मशक्ति को अर्जित कर शक्तिमान

बनने की, विराट् बनने की एक साकार घटना को कवि स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत करता है । इन्हीं सब विशेषताओं के कारण यह लघुकाव्य खड़ी बोली में लिखे विशाल प्रबंधों से टक्कर लेता है और उनसे कम महत्व नहीं रखता । आरम्भ की १८ पंक्तियों में युद्ध का जो शब्द चित्र खींचा गया है वह इतना मूर्तिमान है कि हम पढ़ते हुए समर का प्रत्यक्ष दर्शन करने लगते हैं --

रवि हुआ अस्त, ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण-शर विधृत क्षिप्र कर वेग-प्रखर
शत-शेल सम्वरण - शील, नील-नभ गर्जित - स्वर
प्रतिपल परिवर्तित व्यूह- भेद - कौशल - समूह -
राक्षस - विरुद्ध- प्रत्यूह-क्रुद्ध - कपि - विषम- हूह ।

\+ \+ \+ \+ \+ .

लौटे युग दल । राक्षस - पद - तल पृथ्वी टल मल,
बिंध महोल्लास से बार बार आकाश विकल

इसके बाद समर से श्रान्त राम की संवेदना का चित्र खींचता हुआ कवि उस महायुद्ध की भूमिका में क्या प्रतीत हुआ है, वह स्वाभाविक ढंग से कह जाता है -

है अमा निशा, उगलता गगन घन अन्धकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन - चार,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल ।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा, फिर फिर संशय,
रह रह उठता जग जीवन में रावण जय-भय ।

\+ \+ \+ \+ \+

ऐसे क्षण में अन्धकार घन में जैसे विद्युत-
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का - प्रथम स्नेह का लतान्तराल - मिलन ।

\+ \+ \+ \+ \+

ज्योति - प्रताप "स्वर्गीय" - ज्ञात छवि प्रथम स्वीय-

जानकी - नयन - कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय ।

आगे कवि ने उस समर - चिन्ता के बाद समर विजय के प्रसंग में दो प्रसंग को मूर्तिमान कर अपनी कविता का अलंकार किया है । हनुमान और राम से संबंधित प्रसंग वस्तुतः शक्ति अनुग्रह की भावनाओं से अनुप्रेरित हैं और जहां तक निश्चित है कि "कालिका पुराण" ही इनका आधार है । राम-कथा में इन कथा - प्रसंगों की उद्भावना का रूप निराला जी को बंगाल से ही प्राप्त हुआ ।

पहला प्रसंग है । एकादश रुद्र हनुमान का राम के चरण दबाते समय अमर्ष में रावण द्वारा पूजित शिव शक्ति के उस विराट् रूप को निगलने का उपक्रम जो सारे आकाश और समुद्र को घेरता चला आ रहा था । शिव हनुमान के इस उद्धत-पन को देखकर शक्ति से कहते हैं--

सम्वरो, देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह नहीं हुआ शृंगार कुसुम-गत महावीर,
अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय-शरीर
चिर-ब्रह्मचर्य-रत ये एकादश रुद्र, धन्य,
मर्यादा पुरुषोत्तम के सर्वोत्तम, अनल,
लीला सहचर, दिव्यभाव धर, इन पर प्रहार
करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार,
विद्या काले आश्रय, इस मन को दो प्रबोध,
झुक जायेगा कपि, निश्चय होगा दूर रोध ।

तब शीघ्र ही वह शक्ति हनुमान की माता अंजना का रूप ग्रहण कर बोलती हैं-

तुमने जब रवि को लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें, रहे बालक केवल,
यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह - रह,
यह लज्जा की बात किया रहती सह-सह,

यह महाकाश है, जहाँ वास शिव का निर्मल-
पूजते जिसे श्री राम उसे ग्रसने को चल
क्या नहीं कर रहे तुम अनर्थ ? सोचो मन में
क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ रघुनंदन ने ?
तुम सेवक हो, छोड़कर धर्म कर रहे कार्य-
क्या असम्भाव्य हो यह राघव के लिए धार्य ?"
क्या हुए नम्र, क्षण में माता छवि हुई लीन,
धीरे - धीरे गह प्रभु पद हुए दीन ।

इस प्रसंग को यदि पौराणिक रूप न देकर केवल मानसिक का आध्यात्मिक रूप में ही ग्रहण किया जाय तो काव्य अत्यन्त जटिल होकर केवल दर्शन मात्र रह जायगा । अतः हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि निराला जी ने अपनी "राम की शक्ति पूजा" कविता में पौराणिक उपादानों के बीच मनुष्य की सही संवेदनाओं और उसकी शक्तिमत्ता, संघर्ष और विजय को मूर्तिमान कर दिखाने का प्रयास किया है ।

युग की विकलता को इसी बीच कवि अभिनय करता है --

कुछ क्षण रहकर मौन सहज निज कोमल स्वर,
बोले रघुमणि--"मित्रवर विजय हो गान समर,
यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण,
उतरी पा महाशक्ति रावण से आमन्त्रण ।
अन्याय जिधर है उधर शक्ति ।"

न्याय, सत्य और मानवता के लिए संघर्ष करने वाले विराट् आत्मा पुरुषों के सामने ऐसी ही समस्याएं आती हैं । राम के द्वारा शक्तिपूजा के प्रसंग में ऐसी ही अभिव्यक्ति कवि ने बड़े सहज ढंग से की है---

"धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध ।
जानकी हाय उद्धार प्रिया का हो न सका ।"

यह राम की उक्ति है जो उनके जीवन की रूपरेखा उतार देती है ।

राम की शक्ति पूजा बिलकुल कालिका पुराण की कथा है । निराला जी थोड़ा सा हेर-फेर इसमेंकरते हैं । आठ दिन की आराधना पूर्ण होने पर कालिका विजय का वरदान देती हैं । निराला जी के काव्य में नवें दिन की रात्रि में शक्ति कमल का फूल चुरा ले जाती हैं, जिसे राम उन्हें चढ़ाने को रखे हुए थे । राम इसी परिस्थिति पर निराश होकर ऊपर की उक्ति कहते हैं, जो अत्यन्त मार्मिक है । फिर वे चिन्ताकुल होकर सोचते हैं कि माता उन्हें प्रेम में राजीव नयन कहती थीं अतः वे अपनी एक कमल आंख को बाण से निकाल कर शक्ति पर चढ़ा दें । यही पूजा पूरी करने का उपाय था । यह सोचकर उन्होंने तूणीर से ब्रह्मशर निकाला और जैसे ही वे आंख बेधने को उद्यत हुए--

कांपा ब्रह्माण्ड, हुआ देवी का त्वरित उदय, --
"साधु-साधु, साधक-धीर, धर्म-धन-धन्य राम !"
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम ।
देखा राम ने सामने श्री दुर्गा, भास्वर ।
+ + +
"होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन !"
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन ।

इस लघुकाव्य का इस प्रकार यह उपसंहार एक ओर युग युग से प्रतिष्ठित भारतीय लोक में पौराणिक आस्थाओं की रक्षा करता है और दूसरी ओर युग के अनुरूप परतन्त्र भारत को स्वतंत्र होने के लिए अपनी आत्मशक्ति को जगाने का उद्बोधन करता है ।

निराला जी का यह काव्य न तो वाल्मीकि का और न तुलसीदास का किसी का उपजीवी नहीं है, यह इसकी एक अन्य विशेषता है, जबकि खड़ी बोली में भी लिखे गये राम-काव्य तुलसीदास या फिर वाल्मीकि की सरणि से अनुगमन अवश्य करते हैं ।

"पंचवटी प्रसंग" "रामचरित" पर निराला जी की दूसरी रचना है । यह कविता निराला जी के "परिमल" में संगृहीत है । "परिमल" का प्रथम प्रकाशन संवत् १९८६ वि० में हुआ ।

प्रस्तुत कविता नाटकीय संवाद के रूप में है, इसमें पांच दृश्य अथवा मोड़ हैं और कविता अतुकान्त किन्तु लय युक्त है । रामचरित की कथा में पंचवटी की घटनाएं इतनी महत्वपूर्ण हैं कि वे रामकथा को सहसा दूसरी ओर मोड़ देती हैं । "पंचवटी" में राम ने कई वर्षों तक निवास किया, अयोध्या के राजकुमार और उनकी वधू के दिन जिस भूमि में बीते उसकी महिमा की ओर आकर्षित होना, और जहां शूर्पणखा के कान-नाक काटने से राम-रावण के तुमुल संघर्ष का आरम्भ हुआ, उसका महत्व अंकित करना कवियों के लिए सहज बात थी, जो रामचरित को अब नयी दृष्टि से देख रहे थे । "पंचवटी" में वीर लक्ष्मण, के तपस्या के दिन बीते हैं । राम-सीता ने वनभूमि को राजभवन का गौरव दिया है वस्तुतः इन्हीं दोनों विशेषताओं की ओर गुप्त जी ने भी "पंचवटी" में निर्देश किया है । निराला जी ने संक्षिप्त किन्तु गहरी अभिव्यक्ति में इन्हीं भावों को एक बड़ी कविता में प्रकट किया है और अर्थ तथा भाव की दृष्टि से यह कविता गुप्त जी के "पंचवटी" काव्य से होड़ लेती है ।

"पंचवटी" प्रसंग में पांच प्रसंग हैं -(१,सीता का वनभूमि में राजभवन से अधिक आनन्द मनाना । (२) लक्ष्मण का सीता को माता के रूप में, शक्ति के रूप में मानकर सेवा में दत्तचित्त होना ।(३) शूर्पणखा का रूप शृंगार (४) राम का लक्ष्मण और सीता को ज्ञान तथा भक्ति का उपदेश देना ।(५) शूर्पणखा की काम-वासना - जन्य उच्छृंखलता तथा नाक-कान काटना ।

निराला जी ने इन प्रसंगों को नाटकीय तथा आकर्षक ढंग से उपस्थित किया है । सीता तथा राम दोनों वन-भूमि के निवास की प्रशंसा करते हैं और अपना पूर्ण सन्तोष व्यक्त करते हैं--

> और कहां सुनती मैं
> सुखद समीरण में विहग कल कूजन ध्वनि-
> पत्रों के मर्मर में मधुर गन्धर्व गान?
> और कहां पीती मैं श्री मुख की अमृत कथा ?
> और कहां पाती मैं

विमल विवेक - ज्ञान - भक्ति - दीप्ति

आश्रम तपोवन छोड़ ?

(पृ० २१६)

राम का कहना है --

छोटे - से घर की लघु - सीमा में

बंधे हैं क्षुद्र भाव,

यह सच है प्रिये ।

प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है

सदा ही निःसीम भूपर ।

( पृ०२१६)

पंचवटी प्रसंग में यह बात बहुत स्पष्ट हो गयी है कि निराला जी शाक्त मत से प्रभावित हैं । राम की शक्ति पूजा में राम के माध्यम से शक्ति के प्रति जो अनन्य श्रद्धा निराला जी ने प्रकट की है, वहीं इस छोटी सी कविता में लक्ष्मण के माध्यम से प्रकट हुई है। लक्ष्मण,सीता, राम की पूजा के लिए फूल चुनते हुए कहते हैं -

जीवन का एक ही अवलंब है सेवा

है माता का आदेश यही

माँ की प्रीति के लिए ही चुनता हूं सुमन दल;

\+ \+ \+

जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव विष्णु अज

कोटि कोटि सूर्य-चन्द्र - तारा ग्रह

कोटि इन्द्र सुरासुर

जड़ चेतन मिले हुए जीव - जग

बनते - मिलते हैं - नष्ट होते हैं अन्त में -

सारे ब्रह्माण्ड के मूल में जो विराजती हैं

आदि शक्ति रूपिणी

शक्ति से जिनकी शक्ति शालियों में सत्ता है,

माता हैं मेरी वे

\+ \+ \+ \+

माता की तृप्ति पर

बलि हो शरीर - मन

मेरा सर्वस्व सार,

(पृ०२२४-२२५)

राम ने ज्ञान-भक्ति की चर्चा करते हुए योग और हठयोग की ओर भी संकेत किया है -

क्रम क्रम से देखता है

सबके ही भीतर वह

सूर्य चन्द्र ग्रह तारे

और अन गिनत ब्रह्माण्ड भाण्ड।

(पृ०२३३)

शूर्पणखा की कामभावना का चित्रण वैदिक युग की ओर संकेत करता है जब नारी अपने काम के लिए आज की अपेक्षा बहुत कुछ उन्मुक्त थी। निराला जी द्वारा शूर्पणखा का पश्चात्ताप वर्णन देखिए--

निश्छल मनोहर श्याम काम कमनीय देख

सोचा था मैंने

तू काम कला कोविद

जन रसिक अवश्य होगा ।

मैं क्या जानती थी

यह राम की नहीं है

किन्तु विष की है श्यामता

कूट कूट कर इसमें

भरा है हलाहल घोर ?

(पृ०२४७)

शूर्पणखा के नाक-कान काटने का वर्णन साभिप्राय नहीं हो पाया है, कविता के इस प्रसंग को पढ़ते हुए जिसमें राम ने लक्ष्मण को नाक-काटने का संकेत किया है ऐसा प्रतीत होता है कवि भावों की ठीक पकड़ नहीं कर सका है ।

इस छोटी सी कविता में सीता का निर्मल चरित्र राम की धीरता, गंभीरता, वन-निवास की पवित्रता तथा उसका निर्मल आनन्द, लक्ष्मण का संयम, भ्रातृ-प्रेम तथा भाभी में मातृ-भाव एवं रामकथा में पंचवटी की महत्ता-संक्षिप्त किन्तु तीव्रता से हमारे सामने नाच जाती है ।

श्री जयशंकर "प्रसाद"

रामचन्द्र के चित्रकूट निवास के प्रसंग को लेकर प्रसाद जी ने भी "चित्रकूट" नाम से एक लम्बी कविता लिखी है जो उनके "कानन-कुसुम" के दूसरे संस्करण में संकलित है । इस कविता के तीन भाग हैं --एक भाग में रामसीता के चित्रकूट निवास में वन के आनंद और जीवन के संतोष की झांकी है, दूसरे भाग में सेना-सहित भरत के आगमन का समाचार पाकर लक्ष्मण के रोष का प्रसंग है और तीसरा भाग कविता का उपसंहार है जहां लक्ष्मण के अनुमान के विपरीत भरत आकर राम के चरणों पर गिर पड़ते हैं और करुण तथा अनुराग से संपन्न वातावरण भर उठता है ।

कविता की भाषा बहुत प्राञ्जल नहीं है । यह कविता प्रसाद जी की प्रारंभिक कविताओं में से है । किन्तु भावों की गहरी पैठ कविता में विद्यमान है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता । राम-सीता के शृंगार का खुला-वर्णन भी इस कविता में है ।

राम सीता इस वन में राज भवन से अधिक सुखी हैं --

मधुर मधुर आलाप करते ही प्रिय गोद में
मिटा सकल संताप वैदेही सोने लगीं,
पुलकित तनु थे राम देख जानकी की दशा
सुमन स्पर्श अभिराम सुख देता किसको नहीं ?

(का०कु०पृष्ठ १०३) ।

दोनों के हास-परिहास की भी एक झांकी देखिए-

"स्वर्गगा का कमल मिला कैसे कानन को ?"
"नील मधुप को देख वहीं पर कंज कली ने
स्वयं आगमन किया" कहा यह जनक लली ने । वही, पृ० १०४)

भरत और राम के मिलन का संक्षिप्त चित्र खींचते हुए कविता का उप-संहार किया गया है -

> भरत इसी क्षण पहुंचे, दौड़ समीप में
> 
> बढ़ा प्रकाश सुभ्रातृ स्नेह के दीप में ।
> 
> चरण स्पर्श के लिये भरत भुज ज्यों बढ़े
> 
> राम-बाहु गल-बीच बड़े सुख से मढ़े ।
> 
> अहा विमल स्वर्गीय भाव फिर आ गया
> 
> नील कमल मकरंद बिन्दु से छा गया ।
> 
> (वही, पृ० १०९)

प्रसाद जी की इस कविता में छायावादी शैली छू भी नहीं गई है । कविता प्रारम्भ की है । चित्रकूट के मार्मिक प्रसंग पर रीझकर कवि ने उस प्रसंग को अपनी कविता का विषय बनाया है । इस कविता की परंपरागत रामकथा से नवीनता यह है कि इसमें राम मानवीय पृष्ठभूमि पर अंकित किये गये हैं । मानव-सहज राम-सीता का अनुराग तथा लक्ष्मण का रोष, और भरत का समर्पण इस कविता में एक नयी प्रवृत्ति थी ।

## श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय (हरिऔध"

हरि औध जी को खड़ी बोली में प्रथम, महाकाव्य लिखने का गौरव प्राप्त है । इनका "प्रिय प्रवास" महाकाव्य संवत् १९७१ में प्रकाशित हुआ था जिसमें गोकुलवासियों की कृष्ण वियोग की कथा विविध प्रसंगों की उद्भावना करके गायी गयी है । संस्कृत के भिन्न तुकान्त वर्णिक वृत्तों तथा संस्कृत शब्दों से युक्त पदावली में इसकी रचना हुई है । हरि औध जी ने आरम्भ से ही दो प्रकार की भाषाओं के लिखने का कौशल प्रकट किया है - ठेठ हिन्दी तथा संस्कृत गर्भित हिंदी । इन्होंने "प्रिय प्रवास" के लिखने के वर्षों बाद संवत् १९९६ में "वैदेही वनवास" नाम से दूसरा महाकाव्य पूरा किया, जिसकी सभी विशेषताएं "प्रिय प्रवास" के विपरीत थीं । "वैदेही वनवास" रामकथा के उत्तरार्द्ध पर लिखा गया है, जिसमें लोकप्रिय सम्राट राम द्वारा सीता को निर्वासित किए जाने की कथा है । "वैदेही वनवास" की भाषा यथा संभव

ठेठ हिन्दी रची गयी है । छंद सभी मात्रिक तथा तुकान्त हैं ।

"वैदेही वनवास" में कुल १८ सर्ग हैं । जिसमें सातवें सर्ग तक केवल वैदेही के निर्वासित करने का ही कथानक चलता रहता है । आगे वाल्मीकि आश्रम में लवकुश के जन्म तथा [illegible], लवणासुर के मधुपुर को विजय करने के बाद शत्रुघ्न का उस आश्रम में सीता से भेंट और सीता का प्राण-त्याग कर दिव्य लोक को प्रस्थान । सभी सर्गों की घटनाएं सीता के माध्यम याप्रसंग पर आधारित हैं, यों अवान्तर चर्चा भी उनमें आयी हैं । जैसे राम की सेना द्वारा गन्धर्वों के विनाश की चर्चा ।

राम का यह उत्तर चरित, जिसमें उन्होंने सीता के चरित पर अयोध्या के किसी धोबी द्वारा संदेह प्रकट किये जाने के कारण, सीता को राजभवन से निर्वासित करने का निर्णय किया, एक कठोर आदर्श का प्रेरक, मर्मस्पर्शी एवं हृदय विदारक रहा है । इस प्रसंग को लेकर कालिदास तथा भवभूति ने जो कुछ संस्कृत साहित्य में लिखा है, वह भारतीय साहित्य की चिरस्मरणीय विभूतियों में से हैं । तुलसीदास के बाद कुछ अन्य कवियों ने राम के अश्वमेध का प्रसंग लेकर "रामाश्वमेध" या अन्य नाम से रचनाएं लिखीं हैं पर वे राम की भक्तिभावना से इतनी ओत-प्रोत हैं कि मूल कथा की [illegible] उनमें सर्वथा तिरोहित हो उठती है । हमें यह कहते संकोच नहीं होता कि "हरिऔध" जी का "वैदेही वनवास" भी नए विचारों के क्रम में कथा की मूल शक्ति का स्पर्श नहीं कर पाया है और उसमें सीता के वनवास तक की कथा तो नितान्त भौंडे ढंग से आगे बढ़ती है ।

कहा गया है कि वाल्मीकि रामायण में धोबी द्वारा सीता के चरित पर संदेह प्रकट किये जाने पर राम स्तब्ध रह गये, शायद उस समय उनकी माताएं एवं वशिष्ठ आदि शृंगी ऋषि के द्वादशवर्षीय यज्ञ में गये हुए थे । राम के लिए अपने ही चरित पर संदेह की ऐसी अभिव्यक्ति सहन न हो सकी, जिसने माता और भाई की प्रियता के लिए राज्य त्याग दिया था, उसे लोक की प्रियता के लिये स्त्री का त्याग क्या कठिन कार्य था । उन्होंने तुरन्त ही सीता को वन में निर्वासित करने की बात सोच ली, सीता उस समय गर्भवती थीं, पर राम का निश्चय अत्यन्त कठोर था । उन्होंने लक्ष्मण

को बुलाया और उन्हें यह काम सौंपा । सीता को बन देखने के लिए राजी कर लिया । लक्ष्मण से सारी बातें कहीं और यह समझा दिया कि गंगा पार तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि आश्रम के निकट सीता को छोड़ देना और तब कह देना- कि तुम्हें निर्वासित किया गया है । हुआ भी ऐसा ।

पर इतनी मार्मिक घटना को हरिऔध जी अपनी कल्पना में जिस ढंग से प्रस्तुत करते हैं वह नितान्त हास्यास्पद है । वाल्मीकि रामायण के राम ने सीता के इस निर्वासन का निर्णय स्वयं किया था, यह उनके जीवन का ही तथ्य था, कालिदास के रघुवंश में भी यही होता है और भवभूति के उत्तर रामचरित की भी कथा यही है । "वैदेही बनवास" में सात सर्गों तक यह प्रसंग चलता रहता है । वैदेही बनवास के राम गुरु वशिष्ठ से तो इस बात में सलाह लेते ही हैं, सीता की भी सलाह के तौर पर समझाते हैं और बन जाने के लिए राजी करते हैं, जिसमें ७६ वर्षों के बाद वे सीता को फिर बुला लेंगे सीता का यह निर्वासन गन्धर्वों तथा मधुपुर के विनाश से क्षुब्ध-प्रजा की प्रीति के लिए है । हरिऔध ने इस प्रकार की कल्पना कर और उसे सात सर्गों में प्रस्तुत कर राम और सीता को आज के प्रजातंत्र के रंगमंच के पर खड़ा कर दिया है । निःसंदेह वाल्मीकि रामायण के वे राम जिन्होंने अपना परिचय माता से इस प्रकार दिया था कि -

रामो-द्विर्नाभिभाषते[1],

तथा "रघुवंश" की सीता जिन्होंने गंगापार बन में पहुंचने पर लक्ष्मण द्वारा अपनी समस्त निर्वासन कथा सुनकर राम की भर्त्सना करते हुए यह कहा था --

वाच्यस्त्वया मद् वचनात् स राजा
वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।
मां लोकवादश्रवणादहासीः
श्रुतस्य तत्किं सदृशं कुलस्य[2]।

---

१- वा०रा०अयोध्या काण्ड सर्ग ।

२- रघुवंश सर्ग १४ ।६१

इस "वैदेही वनवास" में दोनों ही नहीं है । ये तो [illegible] हैं । कवि हरिऔध ने अपने नये विचारों में राम के साथ गुरू वशिष्ठ की भी छीछालेदर कर डाली है । पहले तो राम उनसे सलाह लेने पहुंचते हैं जो कि गलत है, फिर वशिष्ठ की सीता -निर्वासन में अनुमति कितनी असंगत और भावना शून्य हृदय की बात है, सुनिए वशिष्ठ राम से क्या कहते हैं ---

> बात मुझे लोकापवाद की ज्ञात है
> वह केवल कुत्सित चित्त का उद्गार है,
> या प्रलाप है ऐसे पाकर पुंज का
> अपने उर पर जिन्हें नहीं अधिकार है ।
>
> छं० ४१ ।
>
> + + + +
>
> जो हो पर पथ आपका - अनुकरणीय है
> लोकाराधन की उदारतम नीति है
> आत्मत्याग का बड़ा उच्च उपयोग है
> प्रजा पुंज की उसमें भरी प्रतीति है ।।५१।।
>
> + + + +
>
> स्वयं कहेगी वह पतिप्राणा आपसे ।
> लोकाराधन में विलंब मत कीजिये ।५९।
>
> सर्ग ४

अर्थात् सीता को शीघ्र निर्वासित कीजिए । गुरू वशिष्ठ का यह कथन न तो राम के उस युग के ही अनुरूप है और न नारी - जागरण के इस युग के लिए संभव ।

राम प्रत्यक्ष रूप से सीता से भी बातें कहते हैं और उन्हें वन जाने के लिए राजी करते हैं, भारतीय पुरूष और नारी के मनोविज्ञान के बिलकुल विपरीत यह चित्रण हरि औध के इस काव्य को नितान्त अस्वाभाविक बना देता है --

> इतना कह लोकापवाद की बातें सारी बतलाईं
> गुरुताएं अनुभूत उलझनों की भी उनको बतलाईं ।

गन्धर्वों के महानाश से प्रजा वृंद का कंप जाना,
लवणासुर का गुप्त भाव से प्रायः उनको उकसाना ।

सर्ग ५, छं० १७ ।

+ + + +

इच्छा है कुछ काल के लिए तुमको स्थानान्तरित करूं ।
इस प्रकार उपजा प्रतीति में प्रजापुंज की भ्रान्ति हरूं ।।

सर्ग ५- छं०२१ ।

सातवें सर्ग में जब सीता को बन के लिए विदा किया जाता है, तब कवि ऐसा चित्रण कर रहा है, मानों अयोध्या में कोई उत्सव हो, सीता की विदा की यह तैयारी उस प्रसंग की समस्त मार्मिकता, वेदनाजन्य अभिव्यक्ति लोकरंजन के लिए राम को स्त्री त्याग की महानता, सती सीता के दुर्भाग्य आदि सभी तथ्यों को लीप-पोत देती है -

अवधपुरी आज सज्जिता है
बनी हुई दिव्य सुन्दरी है
विहंस रही है विकास पाकर
अटा अटा में छटा भरी है ।

सर्ग ७- छं० १

कमल नयन राम ने कमल - से
मृदुल करों से पकड़ प्रिया कर,
दिखा हृदय प्रेम की प्रवणता
उन्हें बिठाया मनोज्ञ रथ पर
उचितगह पर विदेह जा के
विराजती जब विलोक माया
सवार सौमित्र भी हुए तब
सुमित्र ने यान को चलाया । सर्ग ७-छं० २४-२५ ।

इस प्रसंग को कवि ने इतना भौंड़ा बना दिया है जिसे कहा नहीं जा सकता । सीता के विदा होने का यह चित्र भी देखिए--

इसी समय आए वहां धीर वीर रघुवीर,
बहनें विदा हुई बरस नयनों से बहुनीर ।

सर्ग ६- छं० ८९ ।

सीता के त्याग की सारी मार्मिकता तो इसमें है कि राम ने कठोर हृदय से सीता को निर्वासित भी कर दिया और केवल लक्ष्मण को छोड़कर इसकी जानकारी किसी को हुई ही नहीं, सीता को भी तब हुई, जब वे वन में पहुंच गयीं और लक्ष्मण उन्हें छोड़कर चलने लगे । और जब उन्होंने रोना शुरु किया, वहां वाल्मीकि के विद्यार्थी आ गये और उन्होंने इसकी सूचना कुलपति को दी ।

हरिऔध जी ने जिन नये प्रसंगों की उद्भावना अपने इस काव्य में की है, वे भी अनवसर के और [illegible] हैं, उस युग में गांधी जी के अहिंसावाद की दुहाई अशोक के राज्य की याद है, न कि दुष्टों के दमनकर्ता राम के राज्य की--

यदि आहव होता अनर्थ होते बड़े
हो जाता पविपात लोक की शांति पर
बुधा परम पीड़ित होती कितनी प्रजा
[illegible] केवल बनता मधुपुर - सा नगर ।

सर्ग-१२-छं० १४ ।

कवि ने प्रसंगों की क मार्मिकता की भी सही पहचान कथावस्तु में नहीं की है । लवकुश के नाम-करण संस्कार के समय सीता की सहज वेदनाओं को अभिव्यक्त करने का कितना उपर्युक्त प्रसंग था जिसमें दिग्विजयी पिता तथा राजधानी अयोध्या के वैभव भी याद दिलाता, जो अत्यन्त स्वाभाविक होता, पर इनकी चर्चा कवि ने नहीं की है ।

अनावश्यक रूप में प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में प्रकृति चित्रण करना भी कृत्रिम लगता है, जैसे प्रकृति-चित्रण करना ही कवि की प्रतिभा की कसौटी थी लेकिन प्रकृति-चित्रण में भी भाव-अभाव के सामंजस्य का दर्शन कवि नहीं कर सका है और उसने कहीं-कहीं अनावश्यक वर्णन भी कर दिए हैं ।

इस प्रकार "वैदेही वनवास" असफल प्रबन्ध है । राम के उत्तर चरित को

उसमें अनुत्तरदायित्व के साथ ही प्रस्तुत किया गया है ।

## श्री सुमित्रा नंदन पंत

पंत जी ने भी रामचरित पर दो कविताएं लिखी हैं - (१) लक्ष्मण और (२) अशोकवन । "लक्ष्मण" स्वर्णधूलि में संकलित है और अशोकवन "स्वर्णकिरण" में । "स्वर्णकिरण" का प्रकाशन सं० २००४ में हुआ है ।

(१) "लक्ष्मण" छोटी-सी कविता है । जिसमें लक्ष्मण को मर्यादा पुरुषोत्तम राम के अनन्य सहचर के रूप में चित्रित किया गया है । उन्हें मानवता के आदर्श के रूप में कवि देखता है और कामना करता है कि ऐसे ही लक्ष्मण आज भी हमारे समाज में हों । १६ पंक्तियां हैं --

ऐसे भू के मानव लक्ष्मण
कभी गा सकूँगा उनका जीवन ।

\+ \+ \+

राम पतित पावन दुख मोचन
लक्ष्मण भव सुख दुख में शोभन ।
वे सर्वज्ञ, सर्वगत, गोपन,
ज्ञानमुक्त मैं, पदनत सेवक ।

(२) अशोकवन २० कविताओं का लघुगीति प्रबन्ध है जिसमें अशोक वन में बन्दी सीता से लेकर रावण-विजयी राम के अयोध्या गमन तक की संक्षिप्त कथा कुछ प्रमुख प्रसंगों को लेकर गायी है । इन कविताओं में रावण को शोषक, अत्याचारी, मानवता का उत्पीड़क कह कर उस पर मानव की विजय का गान कवि ने संक्षिप्त किन्तु प्रेरणाप्रद और सजीव भावों में किया है ।

लंका विजय की कथा ही "अशोकवन" की पृष्ठ भूमि है पर प्रसंगतः और घटनाएं भी इसमें चित्रित हो गयी है जो मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैं । जैसे - सीता का राम के प्रति अनुराग, अनुराग की स्मृति, सीता के

अलौकिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति, उर्मिला की चर्चा, राम द्वारा सीता का स्मरण। सीता की यह विरह वेदना देखिए--

पंचवटी की स्मृति हो आई ।
नील कमल में, नील गगन में
नील बदन ही दिये दिखाई ।
संध्या की आभा में मोहन
पंचवटी उठ आई गोपन,
झूली सन्मुख, प्रिय संग चौदह
बरसों की स्वर्णिम परछांई ।
कौन रहा वह सोने का मृग
जिसने मोह लिए मेरे दृग ?
जगी वेदना थी केवल, मैं
मन से राम न थी बन पाई ।

(स्वर्ण किरण पृ० १६४)

इसके बाद कवि फिर मानवता का रूपक सीता के साथ बांधने लगता है ---

जग जीवन सीता की काया
जन मन से लिपटी थी छाया
गत युग की लंका में उसने
कर प्रवेश नव ज्वाल लगाई !
ज्ञात भूमिजा की भू गाथा
वह तामसी ढोगी बाधा,
आज हृदय स्पन्दन में उसके
प्रभु ने जय दुन्दुभी बजाई !

(स्वर्ण किरण पृ० १६५)

इस लघु काव्य की सभी कविताएं प्रायः गीतात्मक ही हैं ।उनमें जहां-तहां भावों की सूक्ष्म पकड़ है पर कथा को आगे बढ़ाते हुए और युग के अनुरूप दानव-मानव संघर्ष का निदान, परिणाम व्यक्त करते हुए कवि आगे बढ़

गया है । इससे अधिक इस लघु प्रबन्ध में कहा भी नहीं जा सकता था । फिर भी कुछ अंश काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट तथा आकर्षक हैं, जैसे - लंका दहन का प्रसंग । ये पंक्तियां देखिए--

> हे पावक-वाहक, धन्य, धन्य !
> जग धूमकेतु से शिखा पुच्छ,
> तुम उल्का से टूटे अनन्य !
> सद्मों सौधों से अहों पर
> ज्यों तड़ित् नाचती शत तन धर
> लंका ज्वाला उरदाह सुलग
> अब उसे बनाता ही अरण्य ।

(स्वर्णकिरण पृ० १६७)

अंत में पंत जी युग की आवाज़ में लंका - दहन का केवल उपसंहार ही करते हैं :-

> चिर अंध रूढ़ियों में पोषित
> जन गण धन मद बल से शोषित
> निज प्रजोत्कर्ष के विमुख सतत
> राक्षसपति जनमन में नगण्य
> युग युग का कर्दम कलुष जला,
> गत रीति नीति के शृंग जला
> तुम रक्षा प्रजा के लिए बने,
> जीवन चेतना शिखा नरेण्य !

(पृ० १६८)

इस लघु प्रबन्ध का विशेष आकर्षक प्रबन्ध है - सीता रावण संवाद । इस प्रसंग की चार कविताएं हैं --(१) देवि ! सजा दूं फूलों से तन ! (२) शोभे अभिनंदन हो स्वीकृत । (३) क्या दूं तुम्हें रक्षपति उत्तर (४) भुवन-विदित मैं भू अधिकारी ! पहली कविता में राक्षस स्त्रियां सीता का शृंगार करने आती हैं । दूसरी में रावण स्वयं उपस्थित होकर सीता का अभिनंदन करता है और अपनी कामना प्रकट करते हुए कहता है-

रावण को प्रिय नहीं नारि तन,
वह सुरांगनाओं का मोहन,
माया से भी कर सकता वह
पल में शत सीता तन निर्मित !
मुझे चाहिए देवि, यह हृदय,
जिसमें निखिल सृष्टि का आशय,
प्रथम बार यह हृदय धरा पर
आज हुआ अवतरित कि विकसित !

(पृ० १६१)

सीता का उत्तर है -

सतत लोक मंगल में जो रत
भू का हृदय राम का अनुगत
क्या तुम बांध सकोगे उसको
घट में समा सकेगा सागर ?

+ + + + + + +

हरा राम ने मोह निशा मम
उठा पंक से पद्म भू हृदय
छोड़ो मोह निशाचर पति अब
प्रकटे लोको दमके दिन कर ।

(पृ० १६२)

रावण फिर कहता है -

भुवन विदित मैं भू अधिकारी !
जीत सकेंगे मुझको राघव
देवि मुझे है संशय भारी ।

+ + +

मिट सकती जो मन की तृष्णा
होती धरा न सागर बसना,
सम्मोहन की रत्न छटा को
त्याग बनेगा कौन भिखारी ?

देखि युद्ध से होगा निर्णय

किसका होगा धरणि का हृदय ।

(पृ० १६३)



इस प्रकार पंत जी ने [illegible], लोक कल्याण, रावण का प्रताप, राम की वीरता, सीता का पवित्र चरित- आदि पृष्ठभूमियों को अपनी गीतात्मक कविताओं में उतार कर "अशोकवन" के माध्यम से जो लघुकाव्य लिखा है वह गीत भी है और प्रबन्ध भी है । रामायण भी है और लोकायन भी है । ऐसी छोटी और अनूठी रचना-खड़ी बोली साहित्य में रामचरित पर नहीं है । इसे गीत नाट्य के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है । भाषा का स्वच्छ प्रवाह, गति और माधुर्य इसे और भी प्रिय बना देते हैं । काव्य में गहरी अभिव्यक्ति न होते हुए भी सावन की ऐसी फुहार है जो भुलाई नहीं जा सकती ।

## श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन

नवीन जी ने उर्मिला के चरित को लेकर "उर्मिला" नाम से ६ सर्गों का बड़ा प्रबन्ध काव्य लिखा । इसका प्रकाशन सन् १९५८ में हुआ, वैसे इसकी रचना का आरम्भ उन्होंने १९२२ ई० में किया था । १९२२, १९३१--१९३४ ई० के बीच साढ़े चार साल की अवधि में काव्य का प्रणयन पूरा हुआ प्रकाशन बहुत बाद में आकर किया गया । यही कारण है कि "नवीन" जी की "उर्मिला" में प्रबन्ध की कथावस्तु, भावों और विचारों की बहुत कुछ वैसी ही पृष्ठभूमि है जैसी गुप्त जी के "साकेत" में ~~हुई~~ । आजादी के बाद देश और समाज की भावधारा में जो नये मोड़ आये उनकी झलक "उर्मिला" में नहीं है यद्यपि इसका प्रकाशन १९५८ में होता है ।

अपने काव्य के प्रबन्ध ~~ब~~ के सम्बन्ध में नवीन जी ने भूमिका में लिखा है -

"मेरी इस उर्मिला में पाठकों को रामायणी कथा नहीं मिलेगी । रामायणी-कथा से मेरा अर्थ है क्रम से राम लक्ष्मण - जन्म से लगाकर रावण-विजय और अयोध्या-आगमन तक की घटनाओं का वर्णन । ये घटनाएं भारतवर्ष में इतनी अधिक सुपरिचित हैं कि इनका वर्णन करना मैंने

उचित नहीं समझा । इस ग्रंथ को मैंने विशेषकर मनस्तर पर होने वाली क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का दर्पण बनाने का प्रयास किया है । रामायणीय घटनाओं का राम, सीता, सुमित्रा, कौशल्या और विशेषकर लक्ष्मण और उर्मिला के मनों पर क्या प्रभाव पड़ा, वे उन घटनाओं के प्रति किस प्रकार प्रतिकृत हुए--आदि का वर्णन ही इस ग्रंथ का विषय बन गया है ।"

(भूमिक : पृ० ६)

जैसा कुछ लेखक ने कहा है प्रायः यही सब "उर्मिला" काव्य में है । प्रत्येक सर्ग काफी विस्तृत हैं । पहले सर्ग में उर्मिला + का मिथिला में बाल्यकाल, दूसरे में अयोध्या में उसका लक्ष्मण के साथ मिलन-आनंद, तीसरे में वन गमन की तैयारी में लक्ष्मण का योग, उर्मिला की सहमति आदि है । फिर चौथे और पांचवें में उर्मिला के विरही जीवन की अभिव्यक्ति की गयी है । छठें में रावण विजयी राम द्वारा लंका में विभीषण को राज्य पद पर अभिषिक्त किये जाने की कथा और अयोध्या आगमन का वर्णन है, जिसमें अन्त में उर्मिला और लक्ष्मण के मिलन पर काव्य समाप्त हो जाता है ।

इस प्रकार यह काव्य सम्पूर्ण रूप से उर्मिला के चरित पर ही है और नवीन जी की इस कृति से सचमुच उर्मिला काव्य की उपेक्षिता नहीं रह गयी ।

पर इस काव्य में उर्मिला को, वीर लक्ष्मण की तपस्विनी सह धर्मिणी के रूप में, जिसके तप की आग लक्ष्मण की वीरता का प्रताप है, अभिमूर्त करने में लेखक सफल नहीं हुआ है । जो काम गुप्त जी ने "साकेत" में किया उसी का विपुल विस्तार "उर्मिला" में नवीन जी ने कर दिया है । चौदह वर्ष का उर्मिला का विरह-युक्त जीवन दोनों कवियों के मानस को आलोडित किये है और वे उसमें विवश हो उठे हैं । उन्होंने एक ही लकीर पकड़ी है कि दक्षिण में आर्य संस्कृति का प्रचार करना ही राम वन-गमन का उद्देश्य था और लक्ष्मण उनके साथी बने । जैसे तुलसीदास के राम दशरथ-पुत्र नहीं रह गये, त्रिगुणातीत ब्रह्म हैं वैसे ही गुप्त और नवीन के काव्यों की रामकथा बीसवीं शती के आन्दोलनों और ऐतिहासिक तथ्यों के अनु सरण का प्रतिफल है । "उर्मिला" में आर्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार की बात बहुत विस्तार से कही गयी है, इसी उद्देश्य से वनगमन होता ही है --

कैकेयी मां का देश की हैं
वे हैं अनुभव शीला,
युद्ध सन्धि में प्रकट कर चुकीं--
हैं वे निज निपुण लीला,
उत्तर पश्चिम से प्राची तक,
विस्तृत है उनका अनुभव,
इसीलिए उनके हिय में है
आया एक भाव अभिनव,
हैं गौरव कांक्षिणी बड़ी मां--
कैकेयी यह है प्रत्यक्ष,
पर इस बार हुआ है उनमें
गौरव का कुछ ऊंचा लक्ष्य ।
आर्यों के उत्तर पथ आगत
वैभव से वे परिचित हैं,
किंतु आर्य विस्तार बंधु की
ओर बहुत ही परिमित है,
रह रह कर कैकेयी को यह
दक्षिण पथ ललचाता है
बहुत दिनों से विंध्य विजय का
सपना उन्हें सताता है,
इसीलिए, रानी, उनसे यह
ऐसी उक्ति मिलाई है
निज सपना सच्चा करने की
परिक्षा वे ले आई हैं ।

+ + +

आज नवल इतिहास पृष्ठ का
अभिनय श्री गणेश होगा --
उस पुराण का जिसका नायक
सीतापति रमेश होगा,

धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक
तत्व विचार सिखाने को
आर्य राम अवतीर्ण हुए हैं
जग को पंथ दिखाने को ।

(तृतीय सर्ग छंद-१८४-१८५-१८८)

लक्ष्मण के इस कथन में जो, वे उर्मिला से अनुज्ञा लेते समय कह रहे हैं कवि ने "रामायण" की मूल कथा को उलट दी है । लक्ष्मण का स्पष्ट कथन है -

तुम मत समझो इसको केवल
कौटुम्बिक विवाद, रानी,
तनिक पुराणमयी आंखों से
इसको देखो कल्याणी ।

(सर्ग ३, ७०१)

छठें सर्ग में राम द्वारा विभीषण को अभिषेक करते समय इस विचार धारा को और भी पल्लवित किया गया है । लंकानिवासी जहाँ राम का सत्कार और विभीषण का अनुमोदन करते हैं, विभीषण के राज्याभिषेक की विस्तृत तैयारी का वर्णन कवि करता है । लंका ही जैसे रावण के दुखदायी शासन से मुक्त हो गयी है --

ये फहराई थीं उस दिन भी
जब रावण का ब्याह हुआ,
और आज भी फहराती हैं
जब रावण का दाह हुआ ।
किन्तु आज की बात और है
आज और ही है आनंद,
आज मुक्ति का मिला संदेशा,
सकल दिशाएं हैं स्वच्छंद ।
वरुण मुक्त हैं, मुक्त मरुद्गण
वायु मुक्त उन्मुक्त सभी

अब जग में कोई क्यों होगा
परवश बन्धन मुक्त कभी ?
लंका में उन्मुक्त पताकाएं
हर्षित लहराती हैं
विश्वमुक्ति संदेश वाहिनी
ये सब दिशि फहराती हैं ।

(सर्ग ६, छन्द -२०-२६)

इस प्रकार नवीन जी ने रामकथा में नये सांस्कृतिक विचारों के मोड़ को बिल्कुल अभिभूत कर दिया है और इस सांस्कृतिक आंदोलन में बीसवीं शती का कवि भी तुलसीदास की भांति इतिहास को उठाकर बगल में रख देता है तथा ब्रह्म का गुणगान करने लगता है । कवि कहता है -

शब्द ब्रह्म बनकर, यह लहरा
उठी पताका संस्कृति की,
हुई सांस्कृतिक विजय पूर्ण थी--
आर्य राम की अति कृति की,
नहीं शस्त्र विजिता यह लंका --
यहां विजय है शास्त्रों की,
यह जय है तापस आर्यों के
शुद्ध शब्द ब्रह्माओं की ।

सर्ग ६, छन्द २८)

नवीन जी ने "रामवन गमन" को आर्य संस्कृति के प्रचार का उद्देश्य बताया है, जैसा कि अभी मैंने पहले उल्लेख किया है और राम एक सत्य-प्रचारक बनकर अयोध्या से दक्षिण वन-प्रदेश में गये थे, कवि इस विषय की ओर कई जगह संकेत करता है और छठे सर्ग में भी इसी बात को दुहराता है:-

इस संदेश प्रचार मार्ग में
हैं बाधाएं बड़ी बड़ी
गगन चुम्बिनी पर्वत माला
पथकोरी के अचल खड़ी ।

सागर की उत्ताल तरंगें

नाच रहीं पथ में प्रबला

विकट शूल हैं, भीम शिलाएं

विजन सघनता है सबला ।

वर्षा आतप शीत भयंकर

वन पशुओं से पंथ घिरा

सत्य प्रचारक के पथ में है

बाधाओं का पुंज निरा ।

(पृ० ५६६)

ये सब चर्चाएं रामचरित का ही प्रकारान्तर से प्रस्तुतिकरण है, और तब प्रबन्ध का नामकरण "उर्मिला" और उसमें उर्मिला की शक्ति के बल पर ही लक्ष्मण की विजय की मान्यता स्थापित करता । यदि ७०४ दोहों की विरह-ललाई पर नवीन जी ने प्रबन्ध की यह कल्पना की होती तो काव्य चमत्कृत हो उठता । प्रस्तुत क प्रबन्ध में तो कवि उर्मिला का चारण मात्र बन कर रह गया है, वह उर्मिला के गुण और शक्ति का चित्र खींचना चाहता है लेकिन यह संभव नहीं हो सका है ।

कवि ने एक ओर पंचम सर्ग में रीतिकालीन भाव व्यंजना अवधी के दोहों में जहां रखी है और जहां उर्मिला सीधे-सादे शब्दों में कहती है-

चले जाहु भौरे सजन

अनबोले अकुलात

हिय की हिय में रह गयी

नैकु न निकसी बात ।

(पृ० ३९९)

वहां दूसरी ओर छायावादी युग की उक्ति व्यंजना शैली भी उसने अपनाई है । लक्ष्मण उर्मिला के मिलन प्रसंग का चित्र दूसरे सर्ग में प्रस्तुत करते हुए "प्रसाद" की "कामायनी" के आनन्द सर्ग का प्रतिरूप उपस्थित हो गया है, जहां ब्रह्माण्ड थिरक उठता है, दिशाएं नाच उठती हैं, सूर्य और नक्षत्र, मंडल भी नाच उठते हैं, अंतरिक्ष में राम का दृश्य उपस्थित हो जाता है, उर्मिला और अपनी पूरी सार्थकता नहीं पाता ।:"साकेत" की तरह प्रस्तुत

काव्य में भी केवल चौथे और पांचवें दो सर्ग पूर्ण रूप से उर्मिला के लिए लिखे गये हैं । पांचवां सर्ग तो एक पूरी विरह सतसई, है । इस सर्ग में ब्रजभाषा में लिखे ७०४ दोहे हैं, भाषा, शैली और विचार दोनों दृष्टियों से यह सर्ग इस प्रबन्ध के भीतर स्वतंत्र रचना है, जिसे इस प्रबन्ध में से यदि निकाल दिया जाय तो कोई अधूरापन प्रबन्ध में नहीं मालूम पड़ता ।

प्रबन्ध की समस्त घटनाएं अयोध्या में घटती हैं । उर्मिला के १४ वर्ष के वियोग की तपस्या पर कवि निछावर है, यह प्रबन्ध लिखकर उर्मिला पर मानार्पण प्रस्तुत करने की ही उसकी साध है, इस माध्यम में और जो कुछ आ गया है, वह प्रबन्ध के विस्तार की दृष्टि से । विशेषकर आर्य संस्कृति के प्रसार की बात कई बार दुहरायी गयी है । लक्ष्मण-उर्मिला के विरह की अनुभूति- अभिव्यक्ति ही पूरे प्रबन्ध की मूल प्रेरणा है । आरंभ में ही कवि कहता है --

न हो आलस्य न हो उद्रेक
न लाओ अपने मन में भ्रांति
उर्मिला की आहों को सुना
करुण रस में कर दो कुछ क्रान्ति ।

(पृ० २)

क्योंकि प्रबन्ध की समस्त घटनाएं अयोध्या में ही घटती हैं, इसलिए जो क्रान्ति कवि को अभीष्ट थी उसका दिग्दर्शन काव्य में नहीं हो सका । सारा काव्य प्रेम और वेदना तथा कुछ युगीन विचारों में ही सिमट कर रह गया है । वास्तविक क्रान्ति का चित्रण तो तब संभव होता जब कवि लक्ष्मण और मेघनाद के विकट समर का चित्रण दो सर्गों में करता । लक्ष्मण के प्रणय का यह विराट् दर्शन कवि की छायावादी पहचान है --

छुल गई किसलय की उर्मिला
लखन के चरणों में चुपचाप ,
न मोल न भाव न सौदा हुआ
समर्पण हुआ आप ही आप

+ + +

समर्पण विधियां पूरी हुईं
उठी आह्लाद्य गूंज घन घोर,
सुलक्षण लक्ष्मण अर्द्ध निहार
बंधे उर्मिला दृगंचल घोर ।
विश्व ही नहीं अखिल ब्रह्माण्ड
थिरक उठा यह स्नेह निहार
बराबर उत्कम्पित हो गए--
देख दम्पति का प्रणय विहार ।

+ + +

रास मंडल परिवर्तित हुआ
चराचर में नति गति भर गई
उर्मिला लक्ष्मण की रस राशि
प्रकृति पर कुछ जादू कर गई ।
गगन - अवकाश नृत्य कर उठा
नीलिमा भी कुछ कंपने लगी,
सूर्य की वह वर्तुला विभूति--
नाचती सी कुछ झंपने लगी ।

+ + +

नच उठे तारक वृन्द अनेक
नाचने लगे मुदित उडुराज
राशियां गयीं नये नक्षत्र
नाच उठा सब सौर समाज ।

यह वर्णन "श्री मद्भागवत" की रासलीला तथा "कामायनी" के आनंद सर्ग के आत्म दर्शन दोनों की अलौकिक व्यंजना की याद दिलाता है ।

राम और लक्ष्मण का विराट् व्यक्तित्व तथा शक्तिमान् पौरुष का अयोध्या से अधिक मध्यभारत की वनभूमि और लंका के समरक्षेत्र में प्रकट हुआ है । "उर्मिला" काव्य की घटनाएं केवल अयोध्या में ही घटती हैं इसलिए स्वतः सिद्ध है कि काव्य का पक्ष अपूरा रह गया है । कवि ने उर्मिला का अयोध्या की विरह भूमि में दर्शन किया, लक्ष्मण की शक्तिशाली भुजाओं में

मेघनाद निहन्ता लक्ष्मण की हुंकार में उर्मिला के तेजमयी पातिव्रत का 
दर्शन कर नवीन जी कवित्व के क्रांतिकारी राही नहीं बन सके । वैसे, भाषा भाव, शैली तथा अभिव्यंजना की दृष्टि से "उर्मिला" काव्य "साकेत" से आगे है, इसमें संदेह नहीं ।

## डॉ० बल्देव प्रसाद मिश्र

डॉ० बल्देव प्रसाद मिश्र ने "तुलसी-दर्शन" नाम से शोध प्रबन्ध लिखा है, उसमें उन्होंने रामचरित की लोकप्रियता की सही पहचान की है। धर्म, राजनीति तथा लोक व्यवहार में राम इतना घर क्यों कर बैठे हैं, इन तथ्यों को सही रूप से हृदयगंम करने वाले साहित्यकारों में मिश्र जी का नाम आगे लिया जाना चाहिए । वह शोध प्रबन्ध तो उनका आलोचना ग्रंथहै, और अपने विषय का बेजोड़ ग्रंथ है, लेकिन जिन अछूते विचारों को मिश्र जी ने अपने "तुलसी-दर्शन" में व्यक्त किया था, भाव की सरणि में बिठाकर उन्हीं विचारों और भावों को तीन प्रबन्ध काव्यों में अभिव्यक्त किया, "कौशल किशोर", "साकेत-संत" तथा "रामराज्य", । ये तीनों काव्य भिन्न भिन्न समयों पर लिखे गये हैं । रामराज्य की रचना देश की आजादी के बाद हुई है । युगीन प्रभाव और युग के बोल की दृष्टि से इन्हें दो वर्गों में रखना चाहिए - एक में "कौशल किशोर" और "साकेत-संत" तथा दूसरे भाग में "रामराज्य" । "कौशल किशोर" संवत् १९९१ वि० में "साकेत-संत" संवत् २००१ में और "रामराज्य" संवत् २०१७ में लिखा गया ।

मिश्र जी के "तुलसीदर्शन" का चौथा परिच्छेद "तुलसी के राम" का उत्तर भाग ही भावरूप में इन काव्यों में प्रकट हुआ है । मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, गुण, शौर्य एवं उनकी राजनीति के प्रति मिश्र जी अपनी गाढ़ निष्ठा को जिस प्रकार इस परिच्छेद में प्रतिष्ठापित कर सके हैं, उसी को युग काव्य के रूप में इन काव्यों में अवतरित करते हैं । उत्तर-दक्षिण की एकता, समाज में रावण भावना का विध्वंस, त्याग और शौर्य आदि जो अपने राष्ट्र के लिये चिरन्तन सत्य हैं उन्हें राम के चरित के माध्यम से देखना मिश्र जी का इष्ट है और इसे मिश्र जी ने सरल, सुबोध एवं ओजस्वी भाषा में रसात्मकता के साथ व्यक्त किया है । उसमें प्राचीन का दुराग्रह और नवीन की उद्दंडता दोनों नहीं हैं वरन् दोनों के सही रूपों

का ग्रहण है । मिश्र जी के काव्यों के पढ़ने के पूर्व "तुलसी दर्शन" के चौथे परिच्छेद का उत्तरार्ध हमें अवश्य पढ़ लेना चाहिए । इस परिच्छेद के कुछ उद्धरण ये है ह-

"विश्वामित्र पहले स्वतः राजा रह चुके थे । उन्हें क्षात्रियत्व और ब्राह्मणत्व दोनों का पूर्ण अनुभव था ।" इसीलिए उन्होंने रूद्र वैद्य की तरह ऊर्दौषधि का अनुसंधान किया और इन कार्यों के सुचारू संपादन के लिये सच्चे जौहरी की तरह रामचन्द्र रूपी अमूल्य रत्न को ढूंढ निकाला, यह उन्हीं का प्रयत्न था कि अनिमंत्रित होते हुए भी रामचन्द्र सीता-स्वयंवर के अवसर पर मिथिला गये और अपना पराक्रम दिखाकर उत्तरीय भारत के --आर्यावर्त के - दो दूरस्थ संभ्रान्त राजकुलों को स्नेह सूत्र में बांध कर आर्य-संगठन का प्रथम सूत्रपात किया । + +

नियोजितित मनुष्य ने भी उनकी आत्मीयता का अनुभव करके उनका दाक्षिण्य प्राप्त किया । कोल, किरात, निषाद, शबर, वानर(डरांव), भालू, आदि अनेक भिन्न अनार्य जातियां उनके मौन प्रभाव से प्रभावित होकर उनकी ओर खिंच आई, उनके उस मौन प्रभाव का इतना महत्व था कि अत्रि, अगस्त्य, वाल्मीकि, सुतीक्ष्ण, शरभंग प्रभृति बड़े बड़े महात्मा भी उनके आगे नतमस्तक हो गये।आर्यों और अनार्यों को इस प्रकार वशीभूत कर लेने वाले राम ने अपने लिए कभी कोई स्वार्थ भावना नहीं रखी[१]।"

मर्यादा पुरूषोत्तम को जिस प्रकार अपने शील और सौन्दर्य का पता था उसी प्रकार अपनी शक्ति का भी पता था । वे जानते थे कि वे समाज पुरूष के सेवक ही नहीं शासक भी हैं । जैसे शरीर रक्षा के लिए बलन फोड़े को चीरना और शस्य राशि की वृद्धि के लिए घास-फूस को उखाड़ना अनिवार्य है वैसे ही भारतवर्ष की रक्षा और उद्भावों की वृद्धि के लिए रावण-राज्य विध्वंस करना अनिवार्य था[२]।"

"रामचरित के इतिहास को हमने जिस दृष्टिकोण से देखने और लिखने की चेष्टा की है, उसके अतिरिक्त और कोई दृष्टिकोण ही नहीं है,

---

१- तुलसीदर्शन पृ० १५१-१५२ ।

२- वही, पृ० १५३ ।

यह हमारा कहना नहीं है । नर चरित्र आखिर नर चरित्र ही है । उसमें कुछ अपूर्णताओं अथवा आक्षेप योग्य बातों का भी मिल जाना स्वाभाविक ही है । परन्तु यदि हम भक्त की दृष्टि से उस चरित्र का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें चाहिये कि बकौल महात्मा गांधी के यह विश्वास रखकर कि रामादि कभी छल नहीं कर सकते हम पूर्ण पुरुष का ही ध्यान करें।" मिश्र जी के तुलसी दर्शन में आये इन विचारों की काव्य-परिणति उनके "साकेत सन्त" और "रामराज्य" प्रबन्ध काव्यों में हुई है । तुलसीदास के भक्ति पर स्थिर रहकर रामकथा के नये मोड़ पर भी मिश्र जी जिस पर खड़े हो गये हैं, यह इनके इन दोनों काव्यों की विशेषता है । इस पर हम आगे विचार करेंगे ।

"कौशल किशोर" मिश्र जी की प्रारम्भिक रचना है । राम के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा इसमें ग्रथित है । रामकथा के नये मोड़ की प्रवृत्तियां इस काव्य में प्रायः नहीं है, कथानक तुलसीदास के "रामचरित मानस" का बहुत कुछ अनुसरण करता है । प्राञ्जल शैली, सरल भाषा तथा रोचक प्रसंगों की उद्भावना कवि की अपनी विशेषता है । मारीच-सुबाहु के दमन-प्रसंग में पांचवें सर्ग में राक्षसों की पान गोष्ठी का रोचक-चित्र मिश्र जी ने शब्दों में खींचा है । एक उदाहरण लीजिए -

> कौड़ी, सींग और दांतों के, गहनो से ये लदे कई ।
> फूलों के रस्सों से बंधकर भैंसों से ये फंदे कई ।
> सींग लगाकर बैल बने या लिए बाघ का वेश कई ।
> छिटकाये थे भालू ही से अपने कुंचित केश कई ।

मिश्र जी वाल्मीकि और तुलसीदास की सरणि छोड़कर बाहर काव्य की पृष्ठभूमि देखने के लिए मजबूर नहीं हैं । उन्होंने यथासंभव इन्हीं दोनों महाकवियों की सीमा में रहकर नये युग की नयी आवाज भी उठायी है । "कौशल किशोर" में वाल्मीकि के आदि काव्य की स्तुति प्रस्तुत करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

---

१- तुलसी दर्शन, पृ० १५६ ।

जिस सरोवर का सुधा स्वादीय जल
आदि कवि ने पान आजीवन किया
भाग्य अपना सराहूंगा बडा
यदि वहां का चुल्लू जल पिया ।

(पृ० ६)

शासन के लिए ब्राह्मणत्व और क्षात्रियत्व का परस्पर सहयोग बहुत अपेक्षित है, इस विचार का समर्थन मिश्र जी के काव्य में यत्र-तत्र पाया जायगा । दशरथ और विश्वामित्र के मिलन के अवसर पर कवि ने ये उद्गार प्रकट किये हैं -

भोग याग, समृद्धि संपति राग त्याग समान
था प्रवृत्ति निवृत्ति का वह ऐक्य अभिधान ।
था बड़ा ही चित्तहारी नृपति यति संयोग
पुण्यतम निश्चय बना था वह मनोज्ञ सुयोग ।

(पृ०४९)

"कौशल किशोर" में राक्षसों के उन उत्पातों की ओर संकेत कवि करता है जो उन्होंने मध्यदेश में आरम्भ कर दिये थे और इस प्रकार उत्तर भारत को आक्रान्त करना चाहते थे, तुलसीदास के "रामचरित मानस" में नर कथा की यही पृष्ठभूमि है । राक्षसों का सुधार शस्त्र रण से ही हो सकता है, यह लिखकर मिश्र जी ने सुलझे विचारों का परिचय दिया है, युग के अनुसार सर्वत्र अहिंसा की दुहाई कवि का पिछलग्गूपन है । मिश्र जी कहते हैं --

भर गया है राक्षसों में तामसी अभिमान
शस्त्ररण ही दे सकेगा उन्हें सच्चा ज्ञान ।
मारना होगा बना जब मारना अनिवार्य,
सुख इसी में सब लहेंगे आर्य और अनार्य ।

(पृ०४९)

तुलसीदास का बालकाण्ड बहुत अंशों में कौशल किशोर का आधारभूत बन जाता है । परशुराम लक्ष्मण संवाद में कवि ने बाल्मीकि की ओर न देखकर रामचरित मानस के भावों का ही उद्धरण कर दिया है । लक्ष्मण

कहते हैं:-



" सुन फिर बोले लक्ष्मण कुमार
मुनि ! व्यर्थ धनुष, तर्कश, कुठार ।
अब त्याग सकल अभिमान ध्यान,
करिये जाकर जप तप सुजान ।"

(पृ० २६८)

इस प्रकार राम लक्ष्मण द्वारा जनकपुर देखने का यह प्रसंग --

स्वयं नगर- दर्शन, इच्छुक थे
पर लेकर लक्ष्मण का नाम
बोले "प्रभु ! इनकी लगती है
नगर -छटा अतिशय अभिराम ।"
मुनि ने मन का भाव समझकर
कह -"बन्धु लक्ष्मण के संग,
तुम भी श्रीराम ! देख लो,
पुर निर्माण कला के ढंग ।"

(पृ०१३१)

"रामचरितमानस" की इन चौपाइयों की याद दिलाता है --

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं । प्रभु सकोच उर प्रगट न कहहीं ।
जौ राउर आयसु मैं पावौं । नगर देखाई तुरत लै आवौं ।।

+ + +

जाइ देखि आवहु नगरू सुख निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सबके नयन सुंदर बदन देखाइ ।।

इस प्रकार "कौशल किशोर" अनेक अंशों में रामकथा सम्बन्धी पूर्व मान्यताओं के आधार पर लिखी रचना है । युग के अनुरूप --राष्ट्र की एकता, स्वतंत्रता - जैसे कुछ प्रसंगों का भी प्रस्तुतीकरण हुआ है, पर अवतारवाद और भक्ति के बीच उसकी आवाज उभर नहीं पाती ।

"साकेत संत" मिश्र जी की अत्यन्त प्रौढ़ रचना है । इसमें रामकथा पर नया दृष्टिकोण भी है कवित्व गत भाव और भाषा की प्रौढ़ता भी

है तथा काव्य प्रबन्ध का सुनियोजित निर्वाह है । इस प्रबन्ध काव्य में १४ सर्ग हैं । यद्यपि काव्य का आरम्भ राम की भगवद् भक्ति की भावना ही लेकर होता है --

> स्वामी एक राम हैं, उन्हीं का धाम विश्व यह
> जन में जनार्दन की ज्योति नित्य जागी है ।
>
> (पृ०१७)

तो भी उसमें वर्तमान युग की राष्ट्रीय, सामाजिक भावनाओं के प्रस्तुतीकरण की, उद्घाटन करने की भरसक चेष्टा की गयी है । राष्ट्रीय एकता का यह उद्बोधन रामचन्द्र की ओर से भरत को मिल रहा है --

> वहाँ तुम शक्ति संगठित करो,
> कि जिससे विकसे आर्यावर्त,
> यहाँ मैं उधर अभिमुख करूं,
> बनों में रह दक्षिण आवर्त,
> उभय दिश एकदिश की भांति,
> एक भाई का ही है अंग
> हो उठें उधर दक्षिण एक,
> तुम्हारा भारत बने असंग ।
>
> (पृ०१२७)

और यह आवाज आज के युग की है । इस प्रकार कवि का मानस राम की भक्ति के केन्द्र पर स्थित होकर भी राष्ट्र-निष्ठा और सामाजिक उद्बोधन की गहरी अभिव्यक्ति करता है ।

काव्य का कथानक भरत-माण्डवी के मिलन और आमोद के वर्णन से प्रारम्भ होता है, दूसरे सर्ग में भरत ननिहाल में हैं, जहाँ उन्हें अपशकुन की सूचना और विपरीत समय का संकेत - सा मिलता है, उसी समय अयोध्या में राम का वनवास होता है । तीसरे सर्ग में भरत अयोध्या लौटते हैं, माता कैकेयी से उनकी भेंट होती है । कवि ने यहाँ भरत और कैकेयी के विपरीत भावों का अच्छा द्वन्द्व दिखाया है । काव्य का अंतिम कथानक है राम का आदेश ग्रहण कर चित्रकूट से भरत का लौटना, और वनबास की

अवधि तक अयोध्या की रक्षा का भार संभालेगा । अंतिम सर्ग में नंदिग्राम वासी भरत की यह तपस्या माण्डवी और उर्मिला के वियोगाकुल भावों का चित्रण कर कवि ने उपेक्षित उर्मिला और माण्डवी दोनों को काव्य का विषय बना दिए हैं । बीच में जिन कथानकों का समावेश हुआ है, उसमें गंगा तटवासी निषादराज के ग्राम-संस्कृति का चित्रण तथा सेना के साथ चित्रकूट गामी भरत के अवरोध के लिए निषादों का भावोद्बोधन अत्यन्त मार्मिक है । १२वें सर्ग में राष्ट्रीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए पृष्ठभूमि खोजी गयी है । राम भरत से कहते हैं --तुम उधर भी संभाले रहो और मैं दक्षिण में आर्य संस्कृति का प्रचार कर अखण्ड भारत की कल्पना करता हूं ।

भरत के चित्रकूट - गमन में मार्ग की जिन कठिनाइयों का वर्णन किया गया है उसमें निषादराज का अवरोध तथा भयंकर वन का गहन मार्ग दोनों पर कवि ने विशेष रूप से विचार और भाव अभिव्यक्त किये हैं । कुछ आलोचकों ने भरत के मार्ग की इन कठिनाइयों को दार्शनिक रूप देने का प्रयत्न किया है ।

किन्तु प्रसन्नता की बात है कि पाठक की दृष्टि में यह दार्शनिक विचार बहुत ऊपर उठकर नहीं आते और काव्य की गरिमा पूर्णरूपेण सुरक्षित रहती है । इन दोनों प्रसंगों के चित्रण बहुत ही रोचक, प्राञ्जल, भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी हैं । निषादराज का यह विचार देखिए, राम के प्रति उत्कट भक्ति के परिचायक उसके ये उद्‌गार हैं --

चौंका गुह इसका मतलब क्या
होने को है आगे अब क्या ?
मिलना ही था तो मेला क्यों
सेवा का बड़ा भमेला क्यों ?

उसके गांव के चित्रण में कवि ने आज के ग्राम दर्शन की सहानुभूति दिखाई है --

पशुशाला से फूसों के घर
कुछ यत्र तत्र अपने रँवकर ।

पाशव जीवन बहते बहते
उसमें पशु से नर थे रहते ।

भरत के मार्ग में वन के बीहड़ का (पृ० ११४) वर्णन कर कवि ने प्रकारान्तर से राम के वनगमन की भयंकरता को भी हमारे सामने रखा है । सेना के साथ जाने वाले भरत के लिए जब इतनी दुर्गमता है तब केवल भाई लक्ष्मण के साथ जाने वाले राम के लिए कैसी बीती होगी, इसका सहज अनुमान किया जा सकता है --

गहन वन अति भयंकर सामने था
विपद का क्रूर आकर सामने था
कहीं टीले कि जो पथ रोक अटके
कहीं गड्ढे कि जिसमें लोग भटके ।
कटीला पंथ कंकरीला बड़ा था
कहीं टेढ़ा कहीं सीधा खड़ा था ।

(पृ० ११४)

दवानल का बड़ा भय हर कहीं था
कहां पर बांस का जंगल नहीं था ।

(पृ० ११५)

चित्रकूट में रमते राम को वनवासी ग्रामीणों के सहवास का जो आनंद मिला, कवि उस सहवास में ग्राम्य स्वर्ग की संभावना में विभोर हो जाता है --

कंद मूल फल ले वनवासी
आते थे गाते यह गान,
"गांव हमारे वृंदावन हैं
पशु से हम नर हुए सुजान ।
वन के पौधे पौधे बोले
लो अब सुख का संचय हो,
युग युग जियो हमारे प्यारे
राम ! तुम्हारी जय जय हो । (पृ० ११५)

इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कथानक बिल्कुल कसा हुआ है, कहीं पर कोई चीज न तो बढ़ाकर रखी गयी है, न अनावश्यक वर्णनों को स्थान दिया गया है । "साकेतसंत" में कवि को भरत की विराट् और विशाल आत्मा के दर्शन करने थे, उसमें कवि पूर्णरूपेण सफल हुआ है । आदि में माण्डवी और भरत का मिलन वर्णन कर तथा अंत में राम की आज्ञा में तत्पर भरत की तपस्या दिखाकर, भरत के संत रूप का विकासात्मक कथानक मिश्र जी ने जिस खूबी के साथ प्रस्तुत किया है, कथानक के शिल्प की यह सफलता कम कवियों को मिलती हैं । कुल मिलाकर यह काव्य प्राचीन और नवीन रामकथा सम्बन्धी मान्यताओं का समन्वय है, काव्य की दृष्टि से इसमें शिल्प और भाव की सभी खूबियां हैं ।

मिश्र जी के "रामराज्य" का प्रकाशन संवत् २०१७ में हुआ । रामराज्य में काव्यत्व कम राष्ट्रीय उद्बोधन अधिक है । रामजन्म और रामवनवास की घटनाओं की चर्चा करते हुए कवि शीघ्र वहां पहुंच जाता है जहां मध्यभारत में राक्षसों का अत्याचार हो रहा है । राम के सामने दो समस्या है । उत्तर और दक्षिण भारत को एक करना (२) लंका के उपनिवेशवाद को दक्षिण भारत से समाप्त करना । कवि कहता है --

राम न भिड़ना चाह रहे थे अभी विदेशी सत्ता से
तौष्य मानते थे वे उत्तर दक्षिण ऐक्य महत्ता से ।

पृ० ७४)

+ + +

देखा अस्थि समूह राम ने एक जगह पर
नर भक्षण कर गये, जहां पर थे रजनीचर
दहल उठा दिल खुब दृश्य देर तक देख न पाये
यह कितना अंधेर मनुज को मनुज चबाए ।

(पृ०५६)

कवि ने इस काव्य में बहुत कुछ भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को तोड़कर स्वतंत्र भारत की गरिमा और उसके अभ्युदय की कल्पना की है,

और स्वतंत्र भारत के रामराज्य का रूप कैसे स्थिर हो, विचारात्मक रूप से इसकी मीमांसा ११वें, सर्ग में राष्ट्रधर्म, शीर्षक से की है । बीच-बीच में "ब्रिटिश साम्राज्यवाद की भांति रावण राज्य का चित्र कवि खींचता है--

उस युग के साम्राज्यवाद का मानवविद्रावण अवतार
रावण लंका अधिपति बनकर विकल किए था सब संसार
परम चतुर था और साहसी उसके वेद भाष्य विख्यात
उस विज्ञानी के बश में थे प्रकृति देव सेवक दिन-रात ।-

(पृ०६६)

यहां मिश्र जी ने रावण विज्ञानी द्वारा प्रकृति देवों से सेवा लिये जाने की बात कह कर सीधे सीधे यूरोप की लोलुप सत्ताओं की ओरसंकेत किया है ।

जैसे गांधी जी ने अहिंसा से भारत की आजादी प्राप्त की, मिश्र जी ने भी अहिंसा का तो नहीं निरस्त्रीकरण का सा थोड़ा चित्र राम द्वारा दिये गये रावण के प्रति इस संदेश में खींचा है, जिसमें वे रावण से पथ की एक लकीर मात्र चाहते हैं -

"तब प्रभु ने अंगद को भेजा उसके सुहृदय पुत्र तुम बीर ।
जाकर कहो कि चाह रहे हम केवल पथ की एक लकीर ।
जिस पर चलकर हम सीता को देखें कर दें उसे स्वतंत्र ।
भारतीय नारी न रहेगी बंधी विदेशों में परतंत्र ।
जन शासक होकर हाय किया कुत्सित अन्याय ।
प्रायश्चित्त करो कुछ जिससे क्षोभ सभी का कुछ मिट जाय ।"

(पृ०९९)

इस संदेश में स्पष्ट ही गांधी आन्दोलन के विचारों की छाप है ।

संपूर्ण भारत की एकता की ओर संकेत करते हुए कवि लिखता है -

देखा भारत रूप विनत जैसे रत्नाकर।
मत्स्य वही है और मकरगण का भी वह घर ।

वही रत्न है, वही शंख, रेतों के टीले
साधु वहीं, यदि लोग वहीं हिंसक गर बीले ।
भिन्न दलों में बंटा एक ही मानव का दल
कहीं वहीं दल भालु कहीं वानर कहलाया
कहीं उसी ने आप स्वतः अपने को खाया ।

(४वां सर्ग)

नंदिग्राम में भरत की साधना का चित्रण करते हुए कवि के मानस पर आज के गरीब गांवों का चित्र उतर आया है, जो युग के प्रतिनिधित्व का ज्ञान रखता है, न कि राम काव्य का -

ऐसी थी साधना भरत के शासन व्रत में
गांव गांव ये गये, न नगरों तक ही सिमे
रूखा भोजन, वसन लंगोटी, भूमि शयन था
देव प्रजा का मूर्त रूप उनका जीवन था ।

(पृ० ११४)

इन पंक्तियों में जैसे कवि ने दीन हीन ग्रामों की ओर संकेत किया है, जो राम के युग की पौराणिक कल्पना के विरुद्ध है । स्पष्ट है कि कवि राष्ट्र का दर्शन कर रहा है -

मनुष्य ही महा सत्य मनुष्य मन के लिए
वही परम आराध्य, वही प्रत्यक्ष विष्णु है ।

(पृ०१३३)

उक्त पद्य में महाभारत के व्यास की गाथा है -

गुह्यं तदिदं ब्रह्म ब्रवीमि
न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् ।

रामराज्य सरल भाषा में लिखा, इस देश में इस युग का एक सशक्त और सफल राष्ट्रीय काव्य है, जिसमें रामराज्य की सरल और गूढ़ कल्पना को साकार रूप दिया गया है ।

श्री चन्द्र प्रकाश वर्मा
---

श्री चन्द्र प्रकाश वर्मा ने "सीता" नाम का एक खण्ड काव्य सन् १९५२ में लिखा जिसमें सीता के [illegible] चरित को आधुनिक नारी जागरण की दृष्टि से देखा गया । नारी उपेक्षा, समाज में उसकी हीन-सत्ता, लांछन से आतंकित नारी का एक सबल चित्रण राम की महारानी जानकी के रूप में "सीता" खण्ड काव्य में किया गया है । काव्य की भाषा सबल, भावों की अभिव्यक्ति भी उक्ति वैचित्र्यपूर्ण है किन्तु काव्य पौराणिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि से अपना कोई नाता नहीं रखता है ।

छायावादी तथा रहस्यवादी शैली में बिखरे भावों को समेटने का प्रयत्न कवि ने इस खण्ड काव्य में किया है । वाल्मीकि अपने आश्रम में सीता के निर्वासन के बाद उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं -

सीते । स्वागत है ! सुनता हूं
आती हो आश्रम में
करुण रागिनी, तुम सदैव
लय होती हो श्रम में ।

++ ++

सीते । आओ । पीछे आवेगा
वह रघुनंदन भी,
कहीं भक्ति से दूर रहा है
भक्त - हृदय वंदन भी ।

++ ++

मुझे ज्ञात कुछ और अभी
इस जन को सिखलाओगी
रावणारि मर्यादा पुरुषोत्तम
भी कहलाओगी ।

++ ++

है अदृश्य । अवश्य ही है
यह बिछोह यह दूरी,
वाल्मीकि सब देख रहा
रामायण अभी अधूरी ।

## श्री शेषमणि शर्मा "मणि रायपुरी"

"मणिरायपुरी" जी ने सन् १९४२ में "कैकेयी" नाम से खण्डकाव्य लिखा था जो सन् १९५२ में प्रकाशित हुआ । इस खंड काव्य में लेखक ने वाल्मीकि रामायण का आधार लेकर यथार्थ कथावस्तु को सामने रखा है और फिर आज के युग की वर्तमान राष्ट्र स्थिति की दृष्टिकोण में रखते हुए कैकेयी के पश्चाताप, अहिंसा और सत्य की परिपाक काव्य के अन्त में दिखाकर यह प्रकट करना चाहा है कि कभी किसी नियत के वश भी उलटे कार्य हो जाते हैं । जिनका परिणाम अच्छा होता है, इसी प्रसंग में कवि कहता है:-

राम न बन जाते तो कैसे
        राम राज्य सार्थक होता
ओ प्रकाण्ड पंडिते ! [illegible] था
        तूने भारत सोता ।
ओ विप्लव की प्रथम गायिके
        क्रान्तिस्वरूपे ! ओ रानी !
तेरे कारण अमर बन गयी
        कवि की [illegible]णी वाणी ।
                (पृ० ३६-३७)

काव्य में कुल सात सर्ग हैं । कैकेयी के वर मांगने के प्रसंग से काव्य का आरम्भ होता है और चित्रकूट में कैकेयीकी क्षमा - याचना के साथ कार्य का उपसंहार होता है । बहुत अर्थों में काव्य की कथावस्तु आलोचित "प्रभात" जी के "कैकेयी" काव्य से उत्कृष्ट बन पाई है । लेकिन भाषा और शैली में सजीवता नहीं है ।

## श्री केदारनाथ मिश्र "प्रभात"

प्रभात जी ने "कैकेयी" नाम से १५ सर्गों का एक प्रबन्ध काव्य लिखा जो संवत् २००७ में प्रकाशित हुआ । अयोध्याकाण्ड में राम केबलबास का प्रसंग इस काव्य की कथावस्तु है । बाल्मीकि से लेकर अब तक रामकथा

के सम्बन्ध में यही मान्यता चली आयी है कि कैकेयी ने [illegible] राम को वनवास भेजने तथा भरत को राज्याभिषेक करने का वरदान राजा दशरथ से माँगा। वाल्मीकि रामायण में यह कहा गया है कि कामुक राजा दशरथ अप्रतिम सुन्दरी कैकेयी के इतने वशीभूत थे कि उसकी कोई बात टाल नहीं सकते थे । लक्ष्मण ने वनवास की बात सुनकर दशरथ पर क्रोध करते हुए कहा था -

हान्र्म एवम् कामुकं पितरम्

(वा०रा०अयो० सर्ग )

इससे स्पष्ट है कि कैकेयी सुन्दरी थी और दशरथ उस पर मुग्ध थे । वाल्मीकि रामायण के उसी प्रसंग में कौशल्या के कथन इस तथ्य की प्रामाणिकता पुष्ट करते हैं ।

किन्तु तुलसीदास के "रामचरित मानस" में इस प्रसंग को पौराणिक रूप दे दिया गया । कैकेयी और उसकी दासी मन्थरा की मति देवगण तथा सरस्वती मिलकर प्रेरित करते हैं कि कैकेयी दशरथ से राम के लिए वनवास का वरदान मांगे जिससे राम वन बसें तथा रावण का वध कर देवों एवं इस पृथ्वी का भार दूर करें । यह धार्मिक एवं पौराणिक कल्पना मूल घटना को आत्मसात् कर गयी ।

इस प्रसंग को लेकर "प्रभात" जी ने एक नयी पौराणिक कल्पना की, जिसमें राष्ट्रीयता का पुट विशेष रूप से रखा गया है । कैकेयी वीर पत्नी और देशभक्ता है, उसमें आर्य संस्कृति की विजय देखने की लालसा है, और वह राम के गुण तथा शौर्य से परिचित है । वह जानती है कि विन्ध्य पर्वत के उस पार अनार्यों की संस्कृति तथा अत्याचारों का भी प्रसार हो रहा है उसे रोकने में सक्षम राम ही हैं । इसीलिए उसने राम के राज्याभिषेक के समय उनके वनवास भेजने का वरदान दशरथ से माँगा, पर कवि प्रभात की कथा कल्पना है, दशरथ कैकेयी के इन विचारों में सहमत भी हो जाते हैं । उनका कहना है -

कैकेयी ! हे प्रिये ! प्रियतमें !
हाथी है युग-धर्म - विधाता

सच है तुम ने राम की जननी

किन्तु तुम्हीं माता, न बिमाता ।

(पृ० १३३)

कैकेयी भरत के विह्वल होने पर जो उत्तर देती है उसे भी सुनिए-

राम - बन - गमन निर्वासन है

यह असत्य है भारी ।

पाप सोचना भरत ! कि तू है

सिंहासन अधिकारी ।

बन की ओर राम का जाना

मानवता की जय है ।

आर्य सभ्यता की, चिर मानव -

स्वतंत्रता की जय है ।

(पृ० १८४)

काव्य की छायावदी शैली कथा को और भी उलझन में डाल देती है और न कथा, न काव्य दोनों में किसी की उपलब्धि इस रचना में नहीं हो पाती । और ऐसे पद--

कैकेयी को लगा कि दुनिया

छलना है, छलना है ।

मन बोला- पथ एक, उसी पर

चलना है, चलना है ।

(पृ० ३९)

आशीष मुझे मत मिल जाय, चला मैं

युग - पुकार स्वीकार मुझे,

मंगल हो मेरे पथ का जो,

दो वह थोड़ा सा प्यार मुझे ।

\+ + +

कर्तव्य बुलाता मुझे जिधर

मैं आज उधर ही जाता हूं ।

साकेतपुरी के सिंहासन
मैं तुमको शीश नवाता हूं ।

(पृ० १४८)

नारी और सुहाग-वत्स ! तू
जगा न सोई ज्वाला
अमृत पिये संसार, अमृत की
जय, मैंने पी हाला ।

(पृ० १८३)

रामायणी कथा से हमें बरबस निराश करते हैं । कैकेयी की छलना और हाला की कामना की व्याख्या समझ में नहीं आती तथा राम जो थोड़ा-प्यार मांगते हैं और साकेतपुरी के सिंहासन को शीश नवाते हैं उससे उनका व्यक्तित्व ही सिमट कर थोड़ा-सा किंवा आज के एक सिने-अभिनेता का-सा हो जाता है ।

"प्रभात" जी ने कैकेयी के लांछन को दूर करने के लिए कल्पना का जो व्यायाम किया है उसमें उनकी कविता का अभ्यास अवश्य बढ़ा होगा पर लांछन जहां का तहां रहा, व्यायाम के श्रमबिन्दु तक उस पर न गिरे । श्री हरिऔध जी "वैदेही बनवास" में कथा की कल्पना जिस भौंड़े ढंग से की है, उतनी ही अमनोवैज्ञानिक कथानक इस "कैकेयी" काव्य का है ।

रामकथा पर लिखी गयी इन रचनाओं के अतिरिक्त कुछ स्फुट और प्रबन्ध अन्य रचनाएं भी हैं जो प्रायः पत्र पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हैं । ऐसी रचनाओं में बिहार के गुलाब कवि की रचना "अहल्या" है जो वाराणसी के "प्रसाद" पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होती रही है । स्फुट रूप से ५० की संख्या में कविताएं होंगी जो इधर ३० वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं । इनमें एक कविता गुलाब कवि की ही "कैकेयी" जो जनवरी सन् १९२१ "माधुरी" में प्रकाशित हुई थी "विभीषण नाम की एक कविता श्री रामचरित उपाध्याय की है जो सरस्वती में प्रकाशित हुई थी और जिस पर बड़ा विवाद उठा था ।

## रघुवीर शरण "मित्र"

"मित्र" जी ने सन् १९६१ में "भूमिजा" नाम से आठ सर्गों का

एकखण्ड काव्य लिखा । "भूमिजा" में सीता के द्वितीय वनवास की कहानी जिसे कहानी में राम की अलौकिक लोकप्रियता का प्रेम और सीता की असामान्य सहनशीलता का निदर्शन निहित है । किन्तु मित्र जी ने प्रस्तुत खण्डकाव्य में उस गंभीरता, उदात्तता तथा गौरवपूर्ण चरितों का स्वरूप नहीं अंकित किया है जो राम की कहानी, वाल्मीकि के लिखे महान् इतिहास के अनुरूप होना चाहिए था । कहानी में आधुनिकता की छाप केवल कथा के मोड़ तक ही नहीं, उसके अन्तर में भी समा गयी है जो अनुचित है यद्यपि लेखक ने भूमिका में लिखा है -

"भूमिजा सीता के वनवास जीवन की रचनात्मक कहानी है । घटनाएं बीजरूप से उपयोग में लाया हूं । वास्तव में मैं सीता के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र से कुछ कहना चाहता हूं । सीता की चेतना से आधुनिक गतिविधि को उभारना चाहता हूं, न्याय और निर्माण की आवाज बुलन्द करना चाहता हूं । सीता जनक-दुलारी होने के साथ साथ वर्तमान चेतना की प्रतीक भी हैं ।"

इस कथन से स्पष्ट है कि यह काव्य एक आन्दोलन की भाषा में लिखा गया है और उसमें अपनी बात में जोर देने के लिए मूल विषय की ओर नजर न करके लेखक जो कुछ भी कल्पना में आया, जैसे -तैसे शब्दों में उड़ेलता चला गया है और कथा की मूल चेतना तथा उदात्तता गायब हो गयी है । लक्ष्मण द्वारा जंगल में छोड़ दी गयी निर्वासित सीता का अरण्य रोदन सुनता हुआ कवि नारी आन्दोलन का सत्याग्रही बन गया है और जैसे सीता उसके ध्यान में नहीं है, वह केवल नारी को लेकर विकल वाणी-में बोल रहा है -

खोये शिशु सी खोज रहा है<br>
पूजा परमेश्वर को ।<br>
हायनिराश्रित खोज रहा है<br>
नारी अपने नर को । (पृ० १८)

खैर यहां तक तो ठीक था । परआगे सुन्दरी सीता को बन में बिलखती देखकर तो रावण की आत्मा तड़पती हुई कवि की दृष्टि में उतर

आती है --

धनुष तोड़ने वाला कादर
है अपयश के आगे
इसीलिए क्या लंका जीती-
थी तूने हत भागे ।

(पृ० २२)

रावण तो मर गया, भूमिजा -
पर कर लो मन मानी ।
शिव का आराधक रोता था,
तड़प रहा था पानी ।
धनुष तोड़कर तुम्हें स्वयंवर
में से ला सकता था,
फोड़ राम का हृदय राम के
यश पर छा सकता था ।।
किन्तु धनुष शिव का था, गुरु का
गुरु का गौरव कैसे ढाता ?
शिव का आराधक उपासक की -
कैसे बात गिराता ।
जितना प्यार दशानन को था
नहीं राम को होगा ।
तेरे घर भिखारी बनकर -
आया, हर दुख भोगा ।।
तेरे लिए कुटुम्ब मिटाकर
रामचंद्र से हारा
सीता से था प्यार, राज्य कब
था रावण को प्यारा ।।

(पृ० २४-२५)

यह नितान्त अनुचित है । प्रेम में असफल किसी युवक का यह

प्रलाप मात्र है, महावीर रावण के चरित को शायद कवि ने अपने विचार से ऊपर उठाया है, पर उसने बहुत नीचे गिरा दिया है । विश्व विजयी रावण ने धनुष यज्ञ के बर्षों बाद लंका राज्य का मोह त्यागकर, सती सीता के लिए युद्ध की विडम्बना मोल ली थी । कवि का यह कहना, कितना निराधार और हास्यास्पद है ।

सीता पर यह काव्य नारी की अदम्य शक्ति का चित्र किसी भी स्थल पर नहीं उतार पाया है । छिछले प्रेम के शब्द-अर्थ ही बैठाने की कोशिश की गयी है । राम के मुंह से इस कथन को सुनिये---

मेरे दोष बहुत हैं देवी !
पुण्य यही है मेरा ।
मेरे जैसे विष घट पर भी
प्यार रहा है तेरा ।।
तुम ऐसे ही खिली फूल-
कांटों में जैसे खिलता ।
तुम ऐसे ही मिली मार्ग
भूले को जैसे मिलता ।

(पृ० १४२)

राम - सीता के प्यार पर निछावर है । भूले राम को सीता रूपी मार्ग मिला था । ऐसे कथन यह सिद्ध करते हैं कि कवि ने सीताराम का केवल नाम लेकर जो चाहा है अनाप-शनाप बका है । धनुष यज्ञ की कठोर परीक्षा, जिसमें देश के ख्यातनाम वीरों का पराक्रम भी असफल रहा, धनुष तोड़ कर सीता को राम ने बरण किया था । यहां कवि की दृष्टि में भूले राम को सीता मिल गयी थीं, मार्ग रूप में, इसलिए वे सीता के प्यार के लिए भिखारी हैं । इस काव्य में सीताराम के नाम निकाल दिये जायं, तो कोई इसमें राम काव्य की छाया न पा सकेगा ।

श्रीमती मायादेवी शर्मा

मायादेवी शर्मा का "शबरी" खण्डकाव्य संवत् २०२० में प्रका-

शित हुआ ।   इसमें छोटे छोटे १० सर्ग हैं, जिनमें आत्म वंदना और आश्रम नाम के दो सर्ग उपक्रम के रूप में हैं, एक में नारी जीवन की उपेक्षा के प्रति आक्रोश है और दूसरे में आश्रम जीवन की महिमा का गान है । शेष आठ सर्गों में शबरी द्वारा राम-दर्शन की मूलकथा कुछ मौलिक प्रसंगों के साथ प्रस्तुत की गयी है, इन मौलिक प्रसंगों में अछूतोद्धार तथा नारी की शिक्षा, तपस्या, समाज में विशिष्ट स्थान के प्रति श्रद्धा युक्त अभिव्यंजना है । इन्हीं प्रसंगों में उस पौराणिक कथा का भी समावेश है, जिसमें यह कहा गया है कि शबरी के निरादर से आश्रम के पंपा सरोवर का जल दूषित हो गया था, उसमें कीड़े पड़ गये थे, राम के आदेश से शबरी ने जब उस सरोवर के जल का स्पर्श किया तब वहाँ का जल पुनः स्वच्छ और सुस्वादु हो उठा और सभी ऋषि बड़े आश्चर्य में पड़ गये ।

शबरी रामायणी कथा के लोकप्रिय पात्रों में है विशेषतः भगवान और भक्त के सहज प्रेम-~~ग्रन्थ~~ सम्बन्ध के उदाहरणों में उसकी याद हमारा साधारण लोक भी करता है, भगवान की भक्ति के अधिकारी बनकर ऐतिहासिक और पौराणिक काल के बीच जिन अनेक उपेक्षित जाति के मनस्वियों ने अपने निर्मल चरित से लोक के सहज जीवन में रस ला दिया है, शबरी का नाम उनमें सर्वप्रथम है । शबरी को राम ने जिस रूप में ग्रहण किया उससे न केवल शबरी की आत्मा ही आप्यायित हुई बरंच पीछे के इतिहास में शबरी को समानधर्मा नीच मानी जाने वाली जातियों ने शबरी के प्रति राम की उस उदार दृष्टि का लेखा कर अपने को भी कृतकृत्य समझा, जिसका परिणाम यह हुआ कि ऋषि-कुटीरों और राज-भवनों की तुलना में अनुराग-पूर्ण साम्राज्य छाया रहा और छाया है । प्रस्तुत शबरीखण्ड काव्य में इन तथ्यों का एक प्रस्तुतीकरण सरल भाषा और स्वाभाविक भाव सरणि में है

राम दर्शन के प्रति शबरी की उत्कंठा का अच्छा चित्रण कवियित्री ने किया है । इसके पूर्व शबरी के गुरु मतंग ऋषि ने जो उसे राम के दर्शन का आश्वासन भरा उपदेश दिया है, उसमें राम दर्शन की एक व्यापक झांकी भी प्रस्तुत कर दी गयी है, सरल भाषा में होने के कारण वह बहुत प्रभावशाली है । ~~एक~~ राम को ब्रह्म का रूप दिया गया है -

वे घर घर में बसते हैं
प्रत्येक हृदय में रमते ।
वे सूर्य चन्द्र में रहते
तारों में टिम-टिम करते ।
अति आतप, हिम, वर्षा को
वे पर्वत बन कर सहते ।
रवि शशि आते जाते हैं
वे अचल लोक से रहते ।

(पृ० २६)

और फिर इन रूपों को समेटकर राम क में आरोपित कर दिया गया है --

इस समय रमें हैं प्रभु व
उस चित्रकूट के वन में
आयेंगे मैं कहता हूं --
तेरे भी पर्ण भवन में ।

(पृ० २७ )

अछूतोद्धार मानव-प्रेम की कसौटी है । इसी भाव की व्यंजना कवियित्री ने की है -

प्रभु ने बदरी फल खाये--
या प्रेम - अमृत में डूबे ।
यह जान सकेंगे वे क्या
जो रहे अभी अनडूबे ?

(पृ० ५२)

राम की भक्ति-सरणि की अधिक अभिव्यक्ति ही प्रस्तुत -खण्ड काव्य में है और अंत में शबरी के दिव्य-लोक जाने की पौराणिक मान्यता भी काव्य में चित्रित है --

कहते कहते शबरी ने
प्रभु को आंखों में देखा ।

खिंच गयी गगन में तब तक

नक्षत्र ज्योति की रेखा ।

सेवा का, जन की श्रद्धा की

गौरव कितना ? सबने माना

बन - बन में

शबरी का दिव्य लोक जाना ।

(पृ०९९)

पर इतना सब होने पर भी नारी जीवन की वर्तमान जागृति अछूतोद्धार तथा सामाजिक जागरण के स्वर में काव्य गुंजित है । रामकथा का यह प्रसंग एक नवीनता के साथ प्रस्तुत हुआ है ---

ये बेर हमारे खाकर

प्रभु ने हमको अपनाया

इस बन्य बेर ने जीता

राजन्य नगर की माया ।

(पृ०९५)

पर उनका दंभ मिटाकर

पहले शबरी के घर जा,

आदर्श नया ही रक्खा,

राघव ने बन्य प्रजा का ।

अब अमृत प्रभा-सी बरसी

भीलनी और भीलों पर

पड़ गया घड़ों भर पानी

उन जप-तप-गर्वीलों पर ।

(पृ०९५)

## रामकथा पर नवीन दृष्टि

### नाटक

राम भक्ति के आविर्भाव के साथ ही रामकथा का नाटकीय रूपान्तर उत्तर भारत में लोकजीवन का प्रमुख आकर्षण रहा है । संस्कृत के

कवियों में अनेक सिद्धहस्त कवियों द्वारा रामकथा को लेकर नाटक रचना को लेकर प्रयोग किया गया है । संस्कृत के आदि नाटक कार भास ने भी रामकथा पर दो नाटक --"प्रतिमा" और "अभिषेक"नाटक लिखे थे । भास के नाटकों को देखने से रामकथा पर नाटक खेलने की लोक-अभिरूचि का पता चलता है आठवीं-नवीं शताब्दी के आस-पास भवभूति और राज शेखर ने एक तरह से पूरी राम कथा को ही नाटक के रूप में लिखा । भवभूति के "महावीर चरित" तथा "उत्तर रामचरित" एवं राजशेखर का "भास रामायण" नाटक रामकथा के अभिनय की व्यापकता के द्योतक हैं । पीछे भी संस्कृत में रामकथा संबंधी नाटकों की रचना का क्रम ही नहीं टूटा । "हनुमन्नाटक" भी पूरी रामकथा का नाटकीय रूपान्तर है । संस्कृत की देखादेखी मध्ययुगीन हिन्दी में भी, रामचरित को राम की लीला को नाटक के रूप में प्रस्तुत करने की अभिरूचि भक्तों और कवियों के बीच जागती रही जिसके फलस्वरूप रामायण, महा-नाटक; हनुमन्नाटक, आनंद रघुनंदन नाटक मध्ययुगीन हिन्दी में लिखे गये और यदि इन कृतियों का अग्र रूप में अभिनय के लिये उपयोग न किया गया तो भी रामलीला रूपमें रामचरित का जो नाटक कई दिनों तक खेला जाता है उनमें इन कृतियों के संवादों का प्रयोग प्रायः हुआ ही करता है । इन कृतियों की चर्चा पिछले तीसरे अध्याय में की गयी है ।

पर हिन्दी के आधुनिक युग में रामकथा पर जो नवीन दृष्टि डाली गयी उसप्रवाह में नाटकों की रचना रामकथा में अभिनव निरू-पण को ही लेकर हुई । कुछ नयी ऐतिहासिक खोज, चरितों के सम्बन्ध में नयी मान्यताएं बाल्मीकि की रामकथा का नया प्रस्तुतीकरण के दृष्टिकोण ही राम साहित्य को लेकर लिखे आधुनिक नाटकों में पाये जाते हैं । यद्यपि रामचरित पर आधारित नाटकों का प्रणयन बहुत थोड़ी मात्रा में हुआ है तथापि वह महत्वपूर्ण है ।

सन् १९२० के बाद नाटक के क्षेत्र में एकांकी कला का जो आविर्भाव हुआ उसने इस ओर लेखकों की प्रवृत्ति अधिक की । समर्थ लेखकों ने प्रायः रामकथा को अपने एकांकियों का विषय बनाया है । किन्तु लक्ष्मी नारायण मिश्र के "चित्रकूट" को छोड़कर पूरा नाटक रामकथा पर इस काल

में भी दूसरा ऐसा नहीं लिखा गया, जिसे प्रशस्त साहित्य की नाटक कोटि में रखा जा सकेगा । सेठ गोविन्द दास का "कर्तव्य" नाटक रामकथा पर पूरी तौर से आधारित नहीं है । श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र ने "चित्रकूट" के पहले "अशोकवन" नाम से एकांकी ही लिखा था ।

रामकथा पर नाटक और एकांकियों की यह संख्या हिन्दी में उंगलियों पर गिनने योग्य है, उसका कारण हिन्दी में रंगमंच का अभाव भी है और रामकथा पर हिन्दी काव्य साहित्य में अत्यधिक पिष्ट पेषण भी है जिसके कारण नाटक रचना में अभिनव दृष्टि के लिए अवकाश ही नहीं रहा । जब तक कोई अभिनव तथ्य सामने न हो कथानक को नाटक का विषय आज का बौद्धिक लेखक कैसे बनाये ।

## सेठ गोविन्ददास

राम कथा पर नाट्य साहित्य की पहली रचना जिसने रामचरित को नवीन दृष्टि से आंका सेठ गोविन्द दास का "कर्तव्य" नाटक है । इसका प्रकाशन सन् १९३५ के आस पास हुआ । "कर्तव्य" नाटक के पूर्वार्द्ध -उत्तरार्द्ध दो भाग हैं । पूर्वार्द्ध में रामचरित है और उत्तरार्द्ध में कृष्ण चरित ।

लेखक ने इस नाटक में यह दिखाना चाहा है कि कर्तव्य पालन में किस प्रकार अपना सर्वस्व निछावर कर देना पड़ता है, और हमारी भारतीय संस्कृति के दो विराट् चरित राम और कृष्ण केवल अपना ही सुख - दुख नहीं अपने स्त्री, भाई, पुत्र सबको निछावर कर तब उस कर्तव्य पालन में समर्थ हुए हैं जिसने उन्हें प्रजा की दृष्टि में परमात्मा की कोटि में बैठा दिया ।

"कर्तव्य" का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध अपने में पूर्ण नाटक है । पूर्वार्ध में जिसमें रामचरित है, कुल पांच अंक हैं प्रत्येक अंक अनेक दृश्यों में विभाजित है इन पांचों अंकों की कथा का चुनाव लेखक ने बड़ी प्रतिभा से किया है । पांचों अंकों की कथावस्तु का भाग रामायण के अत्यन्त मर्मस्पर्शी स्थल हैं ।

पहले अंक में कथा का वह भाग है जहां राज्याभिषेक के लिए तैयार होने वाले राम को दशरथ की अस्वस्थता की सूचना मिलती है और तुरंत

ही बन जाने का प्रसंग आ जाता है । इसके बाद दूसरे अंक की कथा तेरह वर्ष बाद शुरू होती है । भ्रातृ - भक्ति को [illegible] समझ कर नाटक में स्थान नहीं दिया गया है । तेरह वर्ष बाद राम पंचवटी में हैं । वहां छल से सीता का हरण होता है । राम सीता के वियोग में विकल घूमते-घूमते सुग्रीव के सखा बनते हैं और अन्याय होते हुए भी मित्र के प्रति अपना कर्तव्य समझकर छल से बालि का बध करते हैं । तीसरे अंक की कथा सीता के अशोक बन में निवास से शुरू होती है । शक्ति के प्रहार से मूर्छित लक्ष्मण की रक्षा कर राम कितनी कठिनाई से रावण को समर में विजय कर पाते हैं पर उसके बाद ही सीता के पुनर्ग्रहण की बात आते ही उनकी अग्नि-परीक्षा लेकर मर्यादा का कर्तव्य निभाते हैं । चौथे अंक में अयोध्या के राजसिंहासन पर आरूढ़ होकर भी राम को शांति नहीं मिलती, सीता के प्रति प्रजा में अपवाद फैलता है अतः सीता का निर्वासन राम को करना पड़ता है । साथ ही ब्राह्मण बालक की अकाल मृत्यु से रक्षा के लिए धार्मिक न्याय में बंधकर शूद्र तपस्वी शम्बूक का बध भी करना पड़ता है । पांचवें अंक में राम के अश्वमेध -यज्ञ की कहानी है जिसमें राम अपनी आंखों से कुपित सीता का पाताल प्रवेश देखते हैं । कर्तव्य पालन में ही लक्ष्मण के प्राणों से उन्हें हाथ धोना पड़ता है । इस पांचवें अंक में फिर गुरु वशिष्ठ ही राम के शव को लेकर दाह संस्कार के लिए प्रजा का आवाहन करते हैं और नाटक अत्यन्त करुण हो उठता है । कर्तव्य पालन करने वाले महान् पुरुष की गति अन्त में क्या होती है इसे राम के ही शब्दों में सुनिए--

"आह ! लक्ष्मण आह ! लक्ष्मण, यह कैसी विडम्बना है ? यह कैसा कर्तव्य है ?" (पृ० ७५)

"अब मैं परब्रह्म परमात्मा हो गया हूं, क्योंकि प्रजा की इच्छा के अनुसार मैंने सब कुछ किया अपने सर्वस्व की आहुति दी । यह मनुष्य हृदय ही विलक्षण वस्तु है ।" (पृ०८८)

"नाथ मैं समझता था कि कर्तव्य पालन से संसार को सुखी करने के अंत मनुष्य स्वयं भी सुखी होता है, पर नहीं, यह मेरा भ्रम ही निकला, मैं तो सदा दुख से पीड़ित रहा भगवान ।" (पृ०९४)

सुग्रीव की रक्षा के लिए छलपूर्वक बालिके वध को हिचकिचाते हुए पर अंत में उस पर दृढ़ होकर राम कहते हैं --

"अच्छी बात है, लक्ष्मण, यहीं हो, अपने कर्तव्य की ओर इतना लक्ष्य रखते हुए भी यदि राम के हाथ से पाप ही होना है तो वही हो, लक्ष्मण वही हो।" (पृ०३६)

कर्तव्य पालन के बाद अपना सर्वस्व निछावर कर पुरूष जितना महान् और उज्ज्वल हो जाता है वह इस नाटक में नहीं है। राम पश्चाताप करते हुए रंगमंच पर दिखाये गये हैं। उनका प्राण हीन शरीर भी रंगमंच पर दर्शकों के सामने आता है, वशिष्ठ उनके दाह संस्कार के लिए चिन्तित हैं। नाटक की यह परिसमाप्ति करूण ही नहीं हीन भी हो गई है। वैसे नाटक सम्पूर्ण रूप में मर्मस्पर्शी है और रामचरित में एक नयी दृष्टि पैदा करता है।

सेठ जी की दूसरी कृति "कृषि यज्ञ" एकांकी है जो रामकथा के एक अंश से संबंधित है। यह कथा सेठ जी ने वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड से ली है, और उसे नाटक का रूप दे दिया है। त्रिजट नाम का एक ब्राह्मण वेद के स्वाध्याय के बाद हल चलाकर खेती करने का निश्चय करता है। राम वन गमन के समय ब्राह्मणों को बहुत सा दान देते हैं, यह ब्राह्मण भी वहां पहुंचता है, इसके दूसरे सहपाठी ब्राह्मण इसको दान देने से मना करते हैं पर राम उसके ब्राह्मणत्व की परीक्षा लेते हैं और प्रसन्न होकर एक हजार गउएं तथा स्वर्ण उसे दान में देते हैं। इसके बाद राम तो वन गये। इधर त्रिजट ने एक हजार गउओं और स्वर्ण की सहायता से अपनी खेती की अधिक तरक्की कर ली। १४ वर्ष की अवधि में जब राम लंका विजय के बाद अयोध्या लौटे तो त्रिजट के गो वंश का विपुल विस्तार दूर दूर तक लहलहाती खेती देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। त्रिजट केवल अपने खाने पीने के लिए आवश्यक अन्न रखकर शेष अन्न को योग्य अधिकारी पात्रों में दान कर देता है। गुरुकुल तथा औषधालय के लिए उसका उपयोग होता है। राम ने यह सब देखा और कहा मेरे राज्य में इस प्रकार के कृषि यज्ञों की सदा प्रतिष्ठा होगी। एकांकी के दो पक्ष हैं। हलग्राही ब्राह्मण अपनी जाति से च्युत नहीं होता और खेती सहयोग से की जाय और पैदावार को आपस में वितरण करके उसका

उपभोग किया जाय । यही रामराज्य का आदर्श है ।

इस एकांकी के लिखते समय सेठ जी के सहकारी खेती के आन्दोलन का निश्चित रूप से प्रभाव पड़ा है । राम जब त्रिजट के आश्रम पर पहुंचते हैं तो भरत त्रिजट के यज्ञ का परिचय इस प्रकार देते हैं:-

"हां महाराज । गत चौदह वर्षों में अपने भूभार उतारा, दुष्टों से पृथ्वी को रहित किया । अवध में आर्य त्रिजट ने भी कम काम नहीं किया है । आप इन्हें एक सहस्र गउएं दे गये थे। चौदह वर्षों में उनकी संख्या सवा लक्ष पहुंच गयी है, जो वृषभ जन्में उनसे योजनों ऊसर भूमि उपजाऊ बनायी गई है जहां अन्न, कार्पास, इक्षुराउ, शाक इत्यादि उत्पन्न किये जाते हैं ।"

राम ने त्रिजट से कहा -

"तो आर्य त्रिजट, आपने संसार के सामने एक नये प्रकार का यज्ञादर्श उपस्थित किया है । रामराज्य में सदा इस प्रकार के यज्ञों की प्रतिष्ठा रहेगी ।"

## शबरी-

सेठ जी ने संवत् २०१६ में रामकथा पर एक और नाटक लिखा-था -"शबरी" । इस कृति में शबरी के जीवन तथा रामचन्द्र के प्रति उसकी श्रद्धा की भावाभिव्यक्ति तीन रूपों में की गयी है --एकांकी नाटक, एक पात्री नाटक और श्रव्य काव्य । तीन - तीन कृतियां एक साथ एक ही कथा प्रसंग में लिखी गयी हैं, तीनों की पूर्णता एक साथ होती है । इसप्रकार से राम कथा की आधुनिक रचनाओं में यह कृतित्व अपने ढंग का एक ही है ।

इसमें शबरी के जीवन का स्पर्श नाटककार केवल इतने रूप में किया है --उसके पास एक गाय है, उसका बछड़ा है । मरीचि ने चार वर्षीय बालिका शबरी की सेवा पर प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया है कि कि अतिथियों की सेवा करना, अतिथि रूप में भगवान तुझे कभी दर्शन देंगे-

"यदि तेरी अतिथि सेवा भी हमारी सेवा के समान ही अगाध-भक्ति के साथ चलती रही और इस आश्रम में आगन्तुकों को सच्चा विश्राम

मिला तो अतिथि के रूप में ही कभी तुझे भगवद्दर्शन होंगे ।"

बस इतना ही कथा एकांकी में आ पाती है फिर आगे तो एक पात्री नाटक गीति नाट्य बन गया है और श्रव्य काव्य भी गीति नाट्य है बस उसमें रंगमंच और दृश्य का विधान नहीं है । शबरी अपना अनुराग विविध प्रकार से राम के प्रति व्यंजित करती है । इस प्रसंग को पढ़ते हुए गुप्त जी के साकेत के नवम-दशम् सर्ग की अनुभूति जाग उठती है ।

कहना न होगा कि सेठ जी राम के प्रति शबरी की श्रद्धा को कहीं कहीं राम रसिक संप्रदाय की मधुरा भक्ति में परिणत कर देते हैं --

(खड़ी होकर गंभीरता से विचारती हुई )

क्या ही भला हो जो वे वयस्क मेरे आगे हों जैसी मैं नहीं हूं । चारू चंचल चपल हों । आवें तब बालकों का जीवन ले आवें वे फैलावें वही सर्वत्र मैंने नहीं देखा जो । यद्यपि मुझे संकोच होता है न जाने क्यों । बालकों के साथ खेलने में सदा सर्वदा किन्तु पाऊं मैं अवसर यदि प्रभु को आतिथ्य से ही क्यों रिझाऊं कौतुकों से भी ।

(कुछ रुककर)

केवल रिझाऊं ही ? स्वयं भी मैं न रीझूं क्या ?
हां, हां आप रीझूंगी कभी न जैसी रीझी मैं ।

इस कृति के ये प्रसंग, और भी दूसरे ऐसे वर्णन शबरी के शबर - जीवन और राम के वनवासी जीवन एवं उनकी उदात्त भक्त वत्सलता के प्रसंग उपस्थित करने में वे पूर्ण क्षम नहीं हुए हैं ।

## श्री सद्गुरुशरण अवस्थी

अवस्थी जी ने "बालि वध" नाम से रामचरित सम्बन्धी एक एकांकी सन् १९४० में लिखा, जो अप्रैल की १९४० की माधुरी में प्रकाशित हुआ था। अवस्थी जी का दूसरा नाटक "मझली रानी" भी सन् १९४० के आस पास ही प्रकाशित हुआ ।

बालिवध में कुल चार दृश्य हैं । इसकी दो ही मुख्य पृष्ठभूमि हैं --(१) अनार्यों को पराजित कर राम द्वारा आर्य संस्कृति का प्रसार (२)

बालि को निर्दोष बनाना तथा राम द्वारा छिपकर बालि का वध किए जाने को दूसरा रूप देना ।

बालि और उसकी स्त्री तारा अपने आदि वासी जनों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सचेष्ट हैं । तारा कहती है --

"प्रिय प्रजा की रक्षा के लिए अंगद के वात्सल्य के लिए, वानर कुल की मर्यादा के लिए, आदि निवासियों के अक्षुण्ण नेतृत्व के लिए और हमारे सर्वस्व ! तारा के सुहागा के लिए इस आगत आपत्ति में सतर्क रहिए।"

राम ने अपने संवाद में बालि से स्पष्ट किया है कि मैंने तुम्हें छिपकर नहीं मारा बल्कि मित्र सुग्रीव की रक्षा में मैं ऐसा आतुर हो उठा कि मेरा बाण अपने आप छूट गया । और उसके लक्ष्य तुम बन गये -

"आपका अन्तिम प्रहार सुग्रीव के मर्मस्थल पर ब्रज की भांति बैठने के लिए उद्यत हुआ था । मुझे तुरन्त यही किया कि यदि मैं सत्वर आपको इस बाण से आविद्ध करके निष्क्रिय नहीं कर देता तो मित्र का निधन निश्चय है बस इसी प्रेरणा में यह तीक्ष्ण बाण छूट गया ।-- + +
मैं भाव था अथवा विचार, यह समझ न पाया ।"

वीरधर्म पालन के कारण बालि बड़ी निर्भीकता और आनंद की अवस्था में अपना प्राण छोड़ता है और अपने प्रियपुत्र अंगद को आज्ञा देता है कि वह उसके वक्ष में चुभेहुए, तीक्ष्ण बाण को अपने हाथों से खींच ले ।

अवस्थी जी ने एकांकी में आर्य और अनार्य संस्कृतिक संघर्ष के साथ साथ राम और बालि की मानसिक दशाओं को अंकित करने का भी प्रयत्न किया है यद्यपि उन्हें उतनी सफलता मिल नहीं सकी है । शेष पात्र लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव आदि कथा के विकास में सहायक मात्र ही हैं ।

लेकिन रामचरित पर अभिनय दृष्टिकोण लेकर लिखे जाने के कारण नाटक शिल्प की दृष्टि से असफल होने पर भी विषय की दृष्टि से एकांकी नाटक का पर्याप्त महत्व है । नाट्य शिल्प अत्यन्त शिथिल है ।

एकांकी के लम्बे संवाद अत्यन्त अस्वाभाविक हैं । उनमें न गति है और न शक्ति ।

<u>मझली रानी</u>

अवस्थी जी का "मझली रानी" नाम से एक नाटक सन् १९४० के आस पास प्रकाशित हुआ । इस नाटक के द्वारा अवस्थी ने वही भाव और विचार व्यक्त किये हैं जो कुछ वर्ष के बाद केदार नाथ मिश्र प्रभात ने अपने "कैकेयी" काव्य में व्यापक रूप से अभिव्यक्त किया । इसे नाट्यकृति कहना तो उचित न होगा, न तो नाट्य शिल्प की वह योजना है जो रंगमंच के लिए आवश्यक है और कथा वस्तु अत्यन्त लम्बी है । राम के जन्म के पहले से कथा का आरंभ होता है, और समाप्ति रावण-विजय के बाद होती है । ऐसे नाटक का खेला जाना राम लीला नाटकों की पद्धति में ही संभव हो सकता है । पात्रों की संख्या ३३ है ।

नाट्यकृति के रूप में तो नहीं, रामकथा में नये विचार के पैदा करने के रूप में इस कृति का विश्लेषण किया जाना चाहिए । लेखक पूरी रामकथा को कैकेयी को मुख्य रूप से दृष्टि में रखते हुए कह तो जाता है, लेखक की दृष्टि से कैकेयी आर्य संस्कृति के विस्तार की मुख्य सूत्रधार है । राम को बन भेजकर उसने यही कार्य किया है, वह कहती है कि राम को बन भेजने में मुझे यदि अपयश उठाना पड़े तो कोई बात नहीं, पर मैं आर्य संस्कृति के विस्तार और राक्षसों के विनाश के लिए अवश्य यह कार्य करूंगी और राम को जिस तिस प्रकार से बन में भेजूंगी:-

"सूर्यकुल ही दुनिया नही है । अयोध्या का राज्य विस्तार ही विश्व नहीं है । ब्रह्मांड इससे बहुत बड़ा है । यदि हमारे प्यारे परिवार को मर मिटना भी पड़े और राक्षसों और अनार्यों से शाश्वत विधान बचे रहें तो वह कम नहीं । कुल का ध्वंस हो, कैकेयी धिक्कार की चढ़ाई के लिए आलबनकर सब आक्रमणों को स्नेह पर अपने परमायुध पुत्र राम को पैना अस्त्र बनाकर मानवता के शत्रुओं पर अवश्य जय करेगी । आततायियों का

निधन अवश्य होगा । यह कोई मुझसे कहता है राम विजयी होगा, यह शकुन सामने चल रहा है । ---मेरी लोक जाय, मेरा गौरव मुझे, मेरा पुत्र आग में कूदे । मेरा सोहाग मुझे छोड़ दे । देश के लिए क्षत्राणियों का दिल पत्थर का होता है ।"

(पृ०९८)

निश्चय ही कैकेयी का यह वक्तव्य राजस्थान के मध्यकाल की क्षत्राणी के उस दृष्टिकोण से मेल खाता है जो वे अपने पुत्र तथा पति के प्रति विधर्मियों से देश की रक्षा में रखती थीं ।

राम से भी लेखक ऐसे ही विचार प्रकट करवाता है -

"राम- मैं नितान्त अयोग्य हूं । राक्षसों के शमन के बिना साकेत शासन का गौरव नहीं । ----शासक का प्रशांत कार्य तो कोई कर सकता है, आपकी नियंत्रण और वरद हस्त भी रहेगा, पिता जी का अनुभव आदेश देता रहेगा । परन्तु राक्षस युद्ध का अभ्यास थोड़ा बहुत मुझी को है । अतएव यह कार्य आप मुझे सौंपें ।

वशिष्ठ- तुम्हारें तर्क में बल है, वत्स ।"

रामकथा में ऐसे विचारों की खोज कर उसे आधुनिक युग की सीमाओं में खड़ा करने का प्रयास हिन्दी के लेखक करते रहे हैं । अवस्थी जी का यह कृतित्व भी उसमें योगदान करता है लेकिन रामकथा में पात्रों की युगानुरूप में रहना था गंभीरता को भी छीछल बनाता है ।

इस नाट्य कृति में केवल विचार ही विचार है । भाव तथा रस की अभिव्यक्ति नहीं है, न तो यह नाट्य कृति ही है ।

## मिश्रबंधु

मिश्र बन्धुओं ने सन् १९४१ में "रामचरित्र" नामक एक नाटक लिखा इसमें राम के किशोर जीवन से लेकर रावण विजय और अयोध्या आगमन तक की कथा को तीन अंकों में निबद्ध किया गया है । अंक दृश्यों में विभाजित हैं । नाटक में रावण की राजसभा तथा भरत के आश्रम नंदिग्राम

दोनों में अप्सरा और गायिका का नृत्यगान होता है जिससे नाट्य शिल्प का लक्ष्य हम भली भांति समझ सकते हैं और कई स्थलों पर गायिका के नृत्यगान की योजना रंगमंच पर की गयी है । पारसी सिनेमा कंपनियों के टेकनीक के ढंग पर इस रामचरित्र का नाट्य शिल्प है । न कोई व्यवस्थित कथावस्तु है, न रंगमंच और न नाट्य शिल्प ।

हास्य उपस्थित करने के लिए लेखक ने दंडकारण्य में सीता के प्रति राक्षसों के कौतूहल का जो विचार व्यक्त किया है वह भी हास्यास्पद हो गया है -

"अरे हुशियार हो जाओ यारो, एक सोने का चिड़िया नगर आया है ।"

नाटक की नवीनता और विशेषता कुछ इन बातों में है कि उसमें संस्कृति और इतिहास की राजनीति को जहां तहां घुसेड़ने का प्रयत्न किया गया है जैसे जब राम का राज्याभिषेक होने लगता है तो वे कहते हैं कि जब तक अपने पूर्वज सम्राट अरण्य का बदला राक्षस राज रावण से चुका न लूं तब तक मुझे अयोध्या के युवराज पद का कोई अधिकार नहीं ।

## श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

मिश्र जी ने हिन्दी नाट्य साहित्य को नया मोड़ प्रदान किया है। प्रायः वे समस्या नाटककार कहे जाते हैं । पाश्चात्य नाटककार इब्सन और बर्नार्डशा की शैली में उन्होंने हिन्दी में मौलिक सामाजिक समस्यात्मक नाटकों की रचना पहले की थी ।)सन् १९४० के बाद प्रसाद के नाटकों में

चित्रित एवं अभिव्यक्त भारतीय संस्कृति के विरूप क उनके विचार से विरूप की प्रतिक्रिया में उन्होंने भी पौराणिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर इस विचार से नाटक लिखना शुरू किया जिसमें भारतीय संस्कृति की सही अभिव्यक्ति नाटकों के माध्यम से हो सके । उन्होंने दर्जन की संख्या में ऐसे नाटक और उतने ही एकांकी इस दिशा में प्रस्तुत किये हैं । इसी प्रसंग में रामकथा पर भी उन्होंने एक एकांकी तथा एक नाटक की रचना की है । एकांकी "अशोक वन" और नाटक "चित्रकूट" की रचना में संभवतः १० वर्षों का अन्तर है । वही अन्तर दोनों रचनाओं की अभिव्यक्ति में भी आ गया है । "अशोकवन" में एक समस्या का जो चित्र अन्तर्भूत है वह तस्वीर "चित्रकूट" नाटक की कथा-वस्तु में नहीं है यद्यपि कथा का नवोन्मेष वैसा ही है ।

## अशोक वन

अशोक वन की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त है । रामायण-सुन्दरकाण्ड का वह कथा-अंश, जिसमें जानकी रावण द्वारा अपहृत होकर अशोकवन में राक्षसियों से घिरी बंदिनी हैं । रावण छल और शक्ति द्वारा सीता को वशीभूत करने आता है, साथ में उसकी रानी मंदोदरी है, चित्रांगदा है, पर वह सीता को तिल भर डिगाने में समर्थ नहीं होता और विस्मय में भर कर लौटता है, यही इस एकांकी की कथा है ।

मिश्र जी बुद्धिवादी तथा समस्याएं उद्भावित करने वाले नाटककार हैं ।इस संक्षिप्त कथा के एकांकी में भी उन्होंने रामकथा के कई पक्षों की बौद्धिक व्याख्या की हैं और एक नया प्रकाश डाला है । रावण ने सीता को अशोकवन में क्यों रखा? उसने सीता का हरण न कर सीता का वध ही क्यों न कर दिया? क्या रावण दुश्चरित्र था ? सीता के सतीत्व में विचारों का भी बल है, केवल रूढ़ि का ही नहीं ? एक पुरुष की एक ही नारी होनी चाहिए और इस सम्बन्ध में रावण नहीं राम आदर्श हैं । शक्ति विचार की बात नहीं, शक्ति भी बात सुनती है । जहाँ भी नारी छली गयी है, किसी न किसी नारी के कारण । माटी का मोल सोना से अधिक है, अयोध्या मिट्टी की

है । लंका सोने की बनी है । जब पिता एक ही है तो संतान चाहे विवाहिता रानी की हो चाहे दासी की, दोनों का समान अधिकार होना चाहिए । इनके अतिरिक्त और भी कुछ छोटी-छोटी व्याख्याएं, यद्यपि एकांकी में व्यापार का अभाव अवश्य खटकता है पर बुद्धि को झकझोर देने वाले, संवाद एकांकी को पाठक की दृष्टि में भी और रंगमंच पर भी समान रूप से सफल रखते हैं ।

एकांकी में कुल पांच पात्र हैं - रावण, सीता, रावण की दो रानियां - चित्रागंदा, मन्दोदरी तथा दासी सुकन्या ।

एकांकी सीता के साथ ही रावण के चरित्र को भी बहुत ऊंचा उठाता है । रावण की यह उक्तियां सुनिये - जिसमें सीता हरण के कारणों की ओर और रावण की वीर-मनोवृत्ति की ओर स्पष्ट ही प्रकाश पड़ता है -

"जिस शत्रु ने बहन शूर्पणखा के नाक कान काट लिए, जिसने खरदूषण और त्रिशिरा का वध किया, जो पंचवटी में केन्द्र बनाकर मेरे राज में विद्रोह फैला रहा है, उसका क्या उपाय करूंगा । जानकी हरण मैंने नीति के अनुरूप किया । शत्रु की रमणी का अपहरण नीति है और अब जब उसे यहां ले आया तो उसके प्रति भी कोई धर्म है या नहीं ?

प्रतिहिंसा में उसके नाक कान काट लेना ही साधारण पुरुष का काम होता, तुम जानती हो रावण असाधारण है ।"

"रावण राम नारी ग्रहण कभी नहीं करेगा जिसकी आंखें उसका स्वागत न करें, जिसके कपोल उसे देखकर टहटहे लाल न हो जायं ।"

"अशोकवन" में सीता को रखने का आयोजन और सीता के दृढ़ सतीत्व की व्याख्या भी मिश्र जी करते हैं --

"यही विस्मय है । जनक की यह कन्या किस धातु की बनी है ? अशोक एक वृक्ष की वायु दस दिन में किसी भी रमणी के भीतर पुरुष की कामना जगा देती है । + + + देखो भी प्रिये । तुमने कभी कोई दूसरी स्त्री जिस पर अनुराग के सारे साधन इस तरह से व्यर्थ हुए हों, स्मृति के अमोघ प्रभाव भी जिस पर काम न करें ? + + + पर उस राम में कौन सी बात है ?

पिता ने जिसे बन भेजा, कंदमूल जिसका भोजन है और भूमि जिसकी सेज है, उसमें इस जानकी के प्राण कैसे बंधे हैं ?"

ऊपर के एक उद्धरण में रावण ने अपने असाधारणत्व की व्याख्या की है लेकिन आर्य जाति के बीर राम के इस शील-चरित की बात सुनकर एक पुरुष की एक ही नारी होती है, वह विस्मय में पड़ता है, और सीता के शील चरित को तिल भर भी डिगाने में वह समर्थ नहीं है । जानकी कहती हैं -

"यह लाभ लंकापति को न दूंगी । प्रतापी रावण के प्रणय और प्रेम की सीमा नहीं है । वह एक ही साथ कितनी रमणियों से मिलेगा ? आर्यपुत्र ने केवल इसी एक अभागिनी को अपना प्रणय दिया था ।

रावण यह सुनकर सन्न हो जाता है और आश्चर्य में डूबने लगता है -

"क्या एक पुरुष की एक ही स्त्री अ + + + विस्मय ।"

रावण पर घृणा तथा राम पर भक्ति का दृष्टिकोण हटाकर मिश्र जी ने रामायण के इस प्रसंग की निरपेक्ष व्याख्या अपने एकांकी में कर दी है । रावण और राम की राजनीति तथा उनके शील की घृणा तथा भक्ति के परदे को तोड़कर दो विभिन्न जातियों की परंपरा में देखने को पाठक हठात् बाध्य होता है । नारी एक पुरुष की धर्मपत्नी होकर कितनी शक्तिमान है "अशोकवन" की सीता इसका प्रमाण हैं -- यही तथ्य इस एकांकी में अत्यन्त गहराई के साथ अभिव्यक्त हो रहा है । साथ ही रामायण के कुछ प्रसंगों की व्याख्यात्मक चर्चा भी होती है । "अशोकवन" के प्रसंग को श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र सर्वथा अपने मौलिक दृष्टिकोण में, यथार्थ रूप से प्रस्तुत करते हैं ।

## चित्रकूट

मिश्र जी का "चित्रकूट" नाटक तीन अंकों का है । वस्तुतः इसमें दृश्य भी तीन ही हैं । इस नाटक का प्रकाशन सन् १९६० में हुआ ।

"चित्रकूट" की कथा का आरम्भ दशरथ की मृत्यु के बाद का वह प्रसंग है जब भरत तथा शत्रुघ्न ननिहाल से लौटकर अयोध्या में प्रवेश करते हैं और कथा का अंत वहां होता है जब चित्रकूट में भरत राम के बन से वापस लौटने में असमर्थ होकर राम की खड़ाऊं लेकर लौटना और उसी कोसामने रखकर राज्य का शासन करना स्वीकार करते हैं । राम १४ वर्ष की अवधि की समाप्ति पर तत्काल भरत को दर्शन देने का वचन देते हैं ।

इस प्रकार पहले अंक की घटनाएं अयोध्या के उस भवन में घटती हैं, जहां राजा दशरथ की मृत्यु हुई थी । राम का बनवास और पिता की मृत्यु का समाचार जानकर, उसमें अपनी माता कैकेयी को मूलकारण समझकर भरत जिस वेदना से भर उठते हैं उसकी गहरी अभिव्यक्ति लेखक करता है और उसी प्रवाह में गुरु वशिष्ठ से इस वेदना का समाधान ढूंढते हुए भरत -चित्रकूट चलकर राम को मनाने का निश्चय करते हैं । भरत की दृढ़ प्रतिज्ञा और भाई के साथ और उनकी एकात्मकता का प्रमाण यह है कि वे चौदह वर्ष तक अपनी पत्नी के स्पर्श तक को त्यागने के लिए कटिबद्ध हैं । पास में आती माण्डवी से वे कहते हैं -

"वहीं रुको । मेरे धर्म की कसौटी चौदह वर्ष तुम्हें बनना है । तात को लौटाने मैं जाऊंगा पर जो पिता के सत्य-धर्म की रक्षा में न लौटे तो इस अवधि में तुम्हें मेरी शपथ है तुम मेरे शरीर का स्पर्शन करो, मुझे देखकर तुम्हारी आंखों में अनुराग का रंग न आए, नहीं तो मुझे नरक में भी - - - - - - - - - (पृ०४८)

इस युग में राम के बनवास की दक्षिण दिशा में आर्य संस्कृति के प्रसार का जो महत्व दिया जाने लगा, "चित्रकूट" में मिश्र जी भी उसकी चर्चा करते हैं लेकिन अधिक स्वाभाविक रूप में । इसकी स्वाभाविकता यह है कि इसकी भावना या संभावना राम के बन जाने के बाद, भरत द्वारा उनको लौटाने के प्रश्न पर गुरु वशिष्ठ करने लगते हैं । राम को बनवास देते समय कैकेयी के मन में, या बन जाते समय राम के हृदय में ऐसी कोई भावना नहीं है । भरत कहते हैं -

"कल सवेरे मैं उसी मार्गपर चल पड़ूंगा जिस पर तात रामचन्द्र,

माता जानकी अनुज लक्ष्मण गये हैं ।" वशिष्ठ का उत्तर है:-

"मेरे कथन में जो तुम्हें विश्वास हो तो श्री रामचन्द्र नहीं लौटेंगे। पिता के सत्य की रक्षा उनका प्रधान धर्म है जिसके लिए अयोध्या ही नहीं देवलोक का राज्य भी मिले तो वे छोड़ देंगे । अयोध्या के राजा रामचन्द्र को जो कीर्ति नहीं मिलती वह वनवासी रामचन्द्र को मिलेगी । एक राज्य के नायक नहीं वे लोक-नायक बनेंगे । उनके प्रताप में धर्म राज्य की स्थापना दक्षिण पथ में भी होगी जिसके लिये मेरे अग्रज अगस्त्य चिरकाल से तप कर रहे हैं ।"

(पृ० ३३)

दूसरे अंक की घटनाएं गंगा जी के तट पर निषादराज के निवास पर घटती हैं भरत सेना के साथ चित्रकूट जाने के लिए वहां पहुंचते हैं । निषादराज सेना के साथ भरत को देखकर अपने आराध्य राम के हित के लिए चिन्तित हो उठता है और अपने अनुचरों को उनका सामना करने के लि तैयार करता है । भरत के पहुंचने पर उनसे जो प्रश्न करता है उसमें मिश्र जी ने जो विचार अभिव्यक्त किये हैं उनमें मिश्र जी बाल्मीकि रामायण से नहीं, "रामचरितमानस" से अधिक प्रभावित हैं - दर्शन और भक्ति यहां प्रधान हो उठी है -

"समुद्र जैसी अपार सेना लेकर आप क्यों आये ? अपनी यात्रा का प्रयोजन बताकर पहले आप मेरा समाधान करें । जन्म जन्म से जो मेरे स्वामी हैं, पुर, परिवार, परिजन जो मेरे वे सब उनके हैं । हमारी एक-एक सांस में जिनका निवास है उन भगवान --------नाम ।---लूंगा मैं------आपके बड़े भाई जो वनवासी है उनका अनिष्ट कर जो आप निष्कंटक राज्य चाहें तो फि कह दें । धर्म की सत्य की शपथ है जो आप छल और कपट के शब्दों का सहारा लें ।" निषादराज की राम के प्रति महानिष्ठा भरत को भाव-विभोर कर देती है । वे राम को अपना भाई न कह कर निषादराज का प्रभु कहने लगते हैं---निषादराज को दोनों बाहों में भर कर छाती से लगाक कहते हैं —

तुम्हारे प्रभु के पैर पड़कर उन्हें मनाकर अयोध्या लौटाने के लिए । उनका अभिषेक कर भगवती जानकी के उन्हें सिंहासन पर बैठा कर दोनों के

चरण धोकर उसी जल से अपनी काया को, मन को, प्राण को पवित्र करने के लिए ।"  (पृ०७२)

निषादराज की भूमि को मिश्र जी के इस नाटक में बहुत महत्व मिल गया है । भरत सारा राज-परिवार, गुरू वशिष्ठ और समस्त सेना उस भूमि में निवास करती है। इंगुदी का पेड़ जहां राम लेटे थे, तीर्थ बन जाता है । सभी उसकी प्रदक्षिणा करते हैं । राम को वनवास तथा दशरथ की मृत्यु की घटनाओं को लेकर रामकथा सम्बन्धी अन्य कृतियों में दर्शन एवं आत्म बोध की, करुणा एवं विराग की जो सरस्वती अयोध्या, विशेषतः चित्रकूट की भूमियों में प्रवाहित हुई है, वह इस "चित्रकूट" नाटक में निषाद-राज की राज्यभूमि में फूट पड़ती है । नाटक का यह अंश करुणा, शील, विराग, भक्ति तथा कर्तव्यनिष्ठा के गंभीर प्रसंगों से ओतप्रोत है । ऐसे प्रसंगों में मिश्र जी बाल्मीकि रामायण तथा बाल्मीकि रामकथा की धारा से कुछ दूर भी बह गये हैं । कौशल्या, भरत तथा वशिष्ठ का यह संवाद देखें --

"कौशल्या - यह अवस्था है धर्म की बात सुनने की पर मन तो पुत्र में लगता है । नारी जीवन के दो छोर होते हैं भगवान । पति और पुत्र +++

वशिष्ठ - फल है भगवती । इन दो छोर के भीतर नारी जितना निर्भय रहती है उतने निर्भय पुरुष तपस्या और तत्व दर्शन में भी नहीं हो पाते । + + + इस वृक्ष का कभी अंकुर फूटता है । धीरे-धीरे बढ़ता है।-+ + + किसी दिन  जागता है । यहीइसकी छः स्थितियां हैं ।

भरत - यही छः स्थितियाँ  हम सबकी हैं ।

वशिष्ठ - क्यों न हो । जो यह जगत रूपी वृक्ष है वही हमारी देह में सात धातुएं होती हैं भगवती । यही इसकी सात छालें हैं । हमारे भीतर के पंच महाभूत के साथ मन, बुद्धि और अहंकार इस वृक्ष की आठ शाखा हैं । हमारी देह में भी नौ छेद हैं वही इसके नौ कोटर हैं । हमारे भीतर दस प्रकार के प्राण कहे गये हैं वही इसके दस पत्ते हैं । इस वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं । जो वृक्ष हम बराबर देखते हैं वही इस क जगत का रूपक है ।

कौशल्या - दो पक्षी क्या हैं ? + + +

वशिष्ठ - पहला पक्षी जीव है दूसरा पक्षी ब्रह्म है । जीव इस वृक्ष का भोग उठा रहा है और ब्रह्म साक्षी सब देख रहा है ।"
ह
(पृ०९०-९१)

धर्म और तत्व दर्शन के इन प्रसंगों का अनावश्यक सबसे विस्तृत कर दिया गया है । साथ यह बात भी है कि तत्वदर्शन का यह मसला उपनिषद् तथा भागवत पुराण की सामग्री है, राम कथा में इसे घुसा कर मिश्र जी ने कथा निर्वाध को बोझिल बना दिया है । वशिष्ठ के संवादों में आई तत्वदर्शन की बात संभवतः इन्हीं दो श्लोकों का अनुवाद है जो वाल्मीकि रामायण अथवा रामकथा काव्य से सम्बन्ध नहीं रखते -

एकायनो सौ द्विफल स्त्रिमूलः चतुरसः
पंचविधः षडात्मा,
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दसच्छदी
द्विखगो ह्यादि वृक्षः
(भागवत स्कंध १० अध्या०२।२२)

द्वा सुपर्णा सयुजा समानं वृक्षं परिषस्वजाते
(उपनिषद्)

तीसरे अंक की घटनाएं चित्रकूट में घटती हैं । इन घटनाओं के दो भाग हैं । प्रारम्भ में चित्रकूट में वनवासी जीवन की आनंदानुभूति की कल्पना और बाद में भरत के आगमन पर अयोध्या निवासियों तथा भरत के असाधारण प्रेम की उस समस्या का समाधान जिसमें सभी राम को पुनः अयोध्या को वापस लाना चाहते हैं ।

राम के वनवासी जीवन का चित्रण करते हुए मिश्र जी ने लक्ष्मण की भक्ति, सीता के संतोष और राम के पराक्रम की अच्छी अभिव्यक्ति की है । लक्ष्मण के प्राण राम पर न्यौछावर है । जानकी को अयोध्या के नगर-जीवन से अधिक प्रिय चित्रकूट का सरल प्रिय वन-जीवन है । वे कहती हैं :-

"यहाँ के निवासी अयोध्या के निवासी हैं । यह पर्वत अपनी वृक्ष और जीव-सम्पदा के साथ अयोध्या नगरी है । मंदाकिनी सरयू है । झुण्ड के झुण्ड नर-नारी आपके दर्शन के लिए आते हैं जिनके गहने कपड़े अयोध्या-वासियों जैसे नहीं हैं पर हृदय तो इनका धर्म, अनुराग और विश्वास में अधिक भरा है । न इनकी हंसी पर कहीं कोई अंकुश है न इनके स्नेह पर इनकी आंखों में इनका हृदय झलकता है । + + + + जिधर देखती हूं पर्वत की शोभा मन हर लेती है । जीवन भर यही दृश्य देखने हों तब भी मेरा मन नहीं भरेगा । + + + मन और धर्म का, कर्म और तन का भी जो विस्तार यहां है वह न अयोध्या में है न मिथिला में ।"

(पृ०११२)

भरत की सेना का आगमन सुनकर लक्ष्मण के जो उद्‌गार फूटते हैं वे प्रकारान्तर से भ्रातृ-प्रेम की अभिव्यक्ति हैं--

"विदेह पुत्री जिसके कारण राजभोग से वंचित होकर पथरीली भूमि पर सोती हैं, जब जो मिल जाय वही आहार करती हैं, उस अपकारी का वध मैं अवश्य करूंगा । + + + आपके शत्रु का वध आपकी अवज्ञा कैसे होगी ? अश्वपति की पुत्री अपनी करनी का फल भोगे ।

(पृ०११७)

लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम को लेखक ने बहुत ऊंचे उठाया है ।

इस अंक का उत्तरार्द्ध कौटुम्बिक प्रेम और उनकी समस्याओं के समाधान में ओतप्रोत है । किस प्रकार भरत राम का खड़ाऊं लेकर अयोध्या लौटने को तैयार हो जाते हैं, इस प्रसंग में अनेक मर्मस्पर्शी चित्र मिश्र जी ने खींचे हैं । पर इन मर्मस्पर्शी चित्रों में रामचन्द्र बिल्कुल सावधान हैं, लेखक उनके मुख से कहलाता है —

"जानता हूं भगवान । हृदय जिधर बह निकले उधर जो हम बढ़ने लगें तब तो राजधर्म और लोक-विधान दोनों का अंत निश्चित है ।"

(पृ०१४४)

प्रासंगिक कथाओं का भी समावेश संवादों में हो गया है जैसे श्रवणकुमार की कथा का । नाटक की दृष्टि से कार्य व्यापार का प्रभाव तीसरे अंक में खटकता है ।

संक्षेप में "चित्रकूट" नाटक वाल्मीकिय रामायण का एक अंश और भागवत और उपनिषद् के जीवन सम्बन्धी तत्व दर्शनों की व्यावहारिक व्याख्या है और इस दृष्टि से मिश्र जी की यह रचना हिन्दी में अभिनव है ।

श्री सर्वदानन्द वर्मा

सर्वदानंद जी ने १९५९ में भूमिजा नाम का नाटक सीता के उत्तर चरित्र को लेकर लिखा, जिसमें नर-नारी के कुछ समस्याओं को प्रस्तुत और विवेचित किया गया है । इसमें दो अंक और दो ही दृश्य हैं । पहले अंक में राज द्वारा सीता के त्याग का दृश्य है, जिसमें लक्ष्मण सीता को बाल्मीकि आश्रम में छोड़ने के लिए ले जाते हैं और दूसरे अंक में वह दृश्य है· जिसमें राम बाल्मीकि आश्रम में आकर सीता का पुनः दर्शन करते हैं लेकिन सीता राम के साथ पुनः अयोध्या जाने को तैयार नहीं होतीं ।

क्योंकि लेखक को नारी समस्या और नारी की सहानुभूति में ही समस्त भाव-योजना प्रस्तुत करनी थी । अतः इन्होंने लवकुश के उस अद्भुत शौर्य प्रकाश की घटना को नाटक में नहीं लिया है । लवकुश की वीरता से सीता माँ का गौरव स्वतः इस कथानक में बहुत ऊँचा उठ जाता है लेकिन प्रस्तुत नाटक में इसे प्रस्तुत नहीं किया गया ।

इस नाटक में लेखक का मुख्य दृष्टिकोण यह रहा है कि राम ने सीता का त्याग कर मानव धर्म के विपरीत कार्य किया, उनमें मिथ्या बड़प्पन और अहं जागा । दूसरे अंक में सीता राम राम को उलाहना देती हैं --

"सूर्य वंश का इतिहास नारी के रक्त से लिख जायगा और वह नारी होगी सीता । वह दिन भूल गये महाराज ? नर की मर्यादा की रक्षा के लिए जिस दिन राजा रामचंद्र ने माँ के आँसुओं की शपथ को

ठुकरा दिया था । स्त्री के समर्पण की ओर से आंखे बन्दकर ली थीं ? वही राजा हैं, वही प्रजा हैं और वही मर्यादा की लिप्सा है । वही मानव का अहम् है ।" (पृ०८६)

नाटक में राम का चरित्र उदात्त नहीं रह गया है । वह प्रथम अंक से ही अपनी विवशता के लिए विलाप कर रहे हैं, उनमें स्थिर बुद्धि का तो नाम निशान नहीं है । बाल्मीकि रामायण के वीर राम को आधुनिक युग के नारी प्रेम परायणामात्र किसी नर का रूप दे दिया गया है । पहले अंक में राम की विवशता देखिए--

"राम(रोते हुए)--किन्तु राम के जीवन में धिक्कार की होती सदा धू धू कर जलती रहेगी । राम की परिचय क्या होगी देवी ? एक कायर जो मिथ्या निन्दा से डर गया । लोकापवाद ने जिसे भयभीत कर दिया ।"

राम का वह रोना तो किसी प्रकार उचित कहा जा सकता है, लेकिन दूसरे अंक के अंत में कथा के अंतिम निर्वहार में राम जब अर्द्ध विक्षिप्त हो उठते हैं और कहते हैं---

"प्रकृति का यह उन्माद, प्रलय का यह ताण्डव क्या शंकर का तीसरा नेत्र जाग उठा है । ध्वंस का यह अंधकार--- सीता--- कहाँ तो तुम ? राम को मार्ग दिखाओ सीते । + + + मेरी सीता चली गयी, राम को असहाय ही छोड़ी गई ? + + + राम को नाम की मंत्रणा में तड़पने दो । (पृ०९२)

राम ने जिस महान लोक धर्म से अभिभूत होकर सीता का त्याग किया था, उसकी झांकी नाटक में कहीं नहीं है ? यह निश्चित है कि राम को सीता के त्याग की महान् हार्दिक वेदना थी, लेकिन भारतीय इतिहास को वह अप्रतिम पुरुष इस प्रकार विक्षिप्त अवस्था में अपने कर्तव्य पालन के साथ अपनी निजी हानि से रोता हुआ दिखाया जाय: साहित्य में अशोभनीय है ।

## डा० रामकुमार वर्मा

डा० वर्मा ने "राजरानी सीता" नाम से एक एकांकी लिखा है । इसकी भी वही कथा है जो श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के "अशोकवन" की है

पर कथा में कोई नया उन्मेष नहीं है । परंपरागत राम, रावण की मान्यताएं सीता का पतिव्रता धर्म--यही इस एकांकी की मूल प्रेरणाएं हैं। मिश्र जी के एकांकी में जो गंभीरता, विवेचन, शील-चरित की व्याख्या तथा कथा की अन्तर्दृष्टि है वह प्रस्तुत एकांकी में नहीं है पर, हां, लोक-बोध की दृष्टि से "राजरानी सीता" एकांकी में एक नयापन है । एकांकी के कथानक का अंत वहां होता है जहां रावण के ठीक चले जाने के बाद आडा के लिए विह्वल सीता को राम की अंगूठी गिराकर हनुमान आश्वस्त करते हैं । रामचरित मानस के सुन्दर काण्ड की पूरी कथा ऐसी ही है ।

"राजरानी सीता" का रावण परम्परा से पालित पोषित कामुक और राक्षस कर्मा रावण ही है जो सीता के सामने अट्टहास करता है और जो इसके पहले भी अशोकवृक्ष के नीचे बैठी सीता के शृंगार के लिए राक्षसनियों को भेज चुका है । सीता को शृंगार -रहित देखकर जो कामुकता -पूर्ण बातें और अपनी शिव भक्ति का बखान करता है । वह न्याय-अन्याय की चिंता नहीं करता । सीता के अनुनय करने पर उनका मस्तक चन्द्रहास से काटने के लिए तैयार हो जाता है । वस्तुतः परम्परागत रावण का यही रूप है । डा० वर्मा ने इसमें कोई नयी अन्तर्दृष्टि नहीं प्राप्त की है । उसे नयी शैली में प्रस्तुत अवश्य किया है । कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे ---

रावण के वाक्य हैं--

"ये आंसू----। ये आंसू आपके सौन्दर्य के अनुरूप नहीं हैं, महारानी सीता । और आपके शिर पर केशों की एक वेणी, यह मैली सारी, ये भूमि पर गड़े हुए नेत्र, यह उदासी जैसे चन्द्र के साथ अंधकार हो ।"

"महारानी(सीता), मैं अपने प्रस्ताव की स्वीकृति चाहता हूं । मैं कब से महादेवी मन्दोदरी को आपकी सेवा में नियोजित कर दूं ।"

महादेवी मन्दोदरी । तुम रावण को शान्त नहीं कर सकतीं ? आज पिछले दस महीनों से वह तिल तिल जल रहा है । उसने देवाधिदेव शंकर के दस महोत्सव किये हैं, दस बार प्रार्थनाएं की हैं कि महारानी व सीता मुझ पर अनुकूल हो ।"

"मेरा अपमान करने वाले के शरीर में यही चन्द्रहास एक क्षण में चमककर मेरे सम्मान का आदर्श त्रैलोक्य में स्थापित करता है । यह चन्द्रहास देखती हो । इसने कितने अपराधियों के सिर काटकर सारे ब्रह्मांडा में बिखरा दिये हैं । "

मन्दोदरी का रावण से कोई अलग व्यक्तित्व नहीं है । वह भी कहती है-

"मैं भी जा रही हूं महारानी सीता । पतिदेव रुष्ट हो ये । यह त्रिजटा दासी तुम्हारे समीप रहेगी ।

राम का परब्रह्म रूप ही इस एकांकी में भी चित्रित हुआ है । सीता स्वतः उस परब्रह्म रूप पर ही निछावर हैं । परम विक्रमी पावन रूपधारी राम पर नहीं । सीता कहती हैं-

संसार जिनके पीछे दौड़ता है वे मेरे प्रभु कंचन मृग के पीछे दौड़े । मेरे कारण----? ओह प्रभु, तुम कैसे हो और मैं कैसी हूं ।"

रावण भी अट्टहास करते हुए सीता से सीता की मान्यता पर व्यंग्य करता है-

"त्रैलोक्य में मेरी शक्ति से लड़ने का साहस किसमें हो सकता है । जिसके हृदय में दंडी, मुंडी और जटाधारी ही निवास करते हैं उस निर्गुणी----" अर्थात राम की बात ही क्या की जाय ।

एकांकी के अन्त में मुद्रिका गिराकर हनुमान का प्रवेश कथा को यथार्थ मोड़ नहीं देता वस्तुतः राजरानी सीता की जिस कक्ष का आरंभ एकांकी के आदि में सूचित किया गया वह वहीं समाप्त हो जाती हैं जहां रावण के भय और अट्टहास अविचलित सीता अपने प्राण पर अडिग बनी रहती हैं और राम के गुणगाती रहती हैं । डा० वर्मा ने आगे सीता द्वारा अशोक से आग की कामना करवाई जिसमें वे चिता में जल सकें - इसी समय हनुमान जी मुद्रिका गिराते हैं और कथानक आगे बढ़ जाता है । हनुमान वानरों से राम की मैत्री की कथा कहते हैं और सीता को आश्वासन देते हैं-

"आप कुछ दिन और धैर्य धारण करें, कपि-सेना के साथ श्री राम यहां आवेंगे और रावण को मारकर आपका उद्धार करेंगे ।

"राजरानी सीता" एकांकी न केवल कथा में संवादों में भी अपने पूर्व रचित ग्रंथों विशेषतः रामचरित मानस और रामचन्द्रिका का अनेक अंशों में अनुवाद करता है । केवल रावण के उन संवादों को छोड़कर जिसमें वह अपने आतंक का अतिशयोक्ति मर्यादाहीन वर्णन मात्र है, सीता के संवादों के अनेक अंश तो अनूदित प्रतीत होते हैं । देखिए यह अंश-

"आकाश में इतने अंगारे फैले हुए हैं । इनमें से कोई भी नीचे गिर जाता । यह चन्द्रमा भी ज्वालाओं से जल रहा है --- वृक्ष अशोक तुम्हीं मुझ पर दया करो । अपने नाम को सार्थक करते हुए मुझे भी अशोकबना दो । फिर-

रामचरितमानस की ये चौपाइयां देखिए-

देखियत प्रकट गगन अंगारा
अवनि न आवत एकउ तारा ।

\- - - -

सुनिय विनय मम बिटप अशोका ।
सत्य नाम करु हरु मम सोका । (सुन्दर काण्ड)

मुद्रिका को देखकर सीता कहती हैं-

"तूने प्रभु को कैसे छोड़ दिया? ओह, उन्हें सब छोड़ देते हैं । नगर लक्ष्मी ने उन्हें छोड़ दिया, बन के बीच में मैंने उन्हें छोड़ दिया और अब मेरी दिशा के मार्ग में तूने उन्हें छोड़ दिया । अब आज से नारियों पर कौन विश्वास करेगा? मेरे प्रभु की मुद्रिका---"

उक्त संवाद "रामचंद्रिका" के इस दोहे का अविकल अनुवाद है

श्रीपुर में बन मध्य तू बन करी प्रतीति,
कह मुद्रिके अब तियनि की को करि है परतीति (रामचंद्रिका)

रामचन्द्रिका के ऐसे अनुवाद इस एकांकी में और भी हैं ।

संक्षेप में राजरानी सीता एकांकी मुख्यतः परम्परागत रामकथा के एक अंश का नवीन शैली में गुम्फन है ।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

चतुर्वेदी जी नाट्य शास्त्र के निष्णात पंडित, नाट्यकार तथा कुशल अभिनेता हैं। उन्होंने राम कथा के अंगभूत शबरी के चरित को लेकर "शबरी" नाम से एक नाटक संवत् २००९ में लिखा ।

इस नाटक की कथा पद्मपुराण से ली गयी है जिसमें एक अभिमानी आर्य द्वारा शबरी को शूद्रा कह कर अपमान करने से पम्पासर का जल रक्तमय हो जाता है । फिर राम के आने पर और अपने भक्ति की अवज्ञा का रहस्य बताने पर पुनः शबरी के स्पर्श करने पर सरोवर का जल निर्मल हो जाता है । इसी कथा को लेकर श्रीमती मायादेवी शर्मा ने भी "शबरी" नाम से खण्ड काव्य लिखा है । पद्म पुराण की यह कल्पना भक्ति आन्दोलन के युग की परिणति है । वाल्मीकि रामायण में कथा को यह विस्तार नहीं दिया गया है । शबरी की श्रद्धा -भक्ति का आदर भावना राम ने दिया है, उसके शबर तथा जंगली जाति के होने पर भी, जैसे उन्होंने गंगातट वासी निषादों का किया था ।

चतुर्वेदी जी का यह नाटक तीन अंकों में समाप्त हुआ है । अंक दृश्यों में विभाजित हैं । स्पष्ट है कि नाटक की शैली भारतीय न होकर शेक्सपियर की नाट्य शैली है । चतुर्वेदी जी का पांडित्य इसमें परिलक्षित हुआ है कि उन्होंने शबरी की कथा को लेकर जो कथा केवल एकांकी के लिए पर्याप्त थी, पूरा तीन अंकों का नाटक बना दिया है । सम्पूर्ण नाटक में रोचकता एक क्रम से बनी हुई है । इस रोचकता का आधार शबर-जीवन और उसकी दैनन्दिन चर्या, शबरी की ऋषि तथा राम के प्रति श्रद्धा सम्बन्धी घटनाओं पर आधारित है । शबरी शबरों से विरोध होने पर अज्ञात हो जाती है, ऋषि आश्रम में रहती है । वहां शूद्रा कहकर अपमान किये जाने पर फिर अज्ञात हो जाती है । शबर ऋषियों को बलि चढ़ाना चाहते हैं । शबरी उनकी रक्षा करती है, ऐसे प्रसंगों से कथा का विस्तार किया गया है, और स्पष्ट है कि तृतीय अंक के अंत में ही जाकर कथा का मुख्य भाग आता है ।

शास्त्रीय दृष्टि से यदि विचार किया जाय और अर्थ-प्रकृति को देखा जाय तो कथा वस्तु का उचित गठन नाटक में परिलक्षित नहीं

हुआ है । प्रत्येक दृश्य अलग अलग अत्यन्त रोचक है, लेकिन सब मिलाकर क्या है, सामूहिक प्रभाव दर्शक या पाठक पर क्या पड़ेगा, इसके संबंध में शबरी का कृतित्व मौन है ।

शबरी और राम की पहली भेंट तीसरे अंक के पांचवें दृश्य में होती है । उसमें शबरी की जिस अगाध श्रद्धा का चित्र घटनाओं तथा संवादों में नाट्यकार को खींचना चाहिए था, वह उसमें सफल नहीं हुआ । वह राम का पैर धोती है और माला पहनाती है । उनके चरणों पर शिर झुकाती है और फिर एक एक बेर निकालते हुए देती है तथा कहती है - .

यह लीजिए भगवन् ! यह पहाड़ी बेर के झाड़ का है, सबसे मीठा है । मैंने एक एक बेर काट काट कर इसके लिए रखा है ।

राम - (शबरी) से यह तो बड़ा मीठा बेर है, कहां से लाई हो ?

यह सब रामलीला नाटक मंडलियों से कुछ विशेष नहीं दिखाई पड़ता ।

लेखक ने राम कथा को भक्ति युग की परिकल्पना में देखा है, मूलरूप में नहीं । मतंग ऋषि मुद्गल से कहते हैं ---

"तुमने भगवान राम की इस भक्ता पर जो हाथ लगाया उसी पाप से पंपासर का जल रक्त बन गया है । जाओ जाकर सवा लाख गायत्री मंत्र का जप करो । तुमने बड़ा अनर्थ कर डाला । (शबरी से) देवी हमारे आश्रम का प्रायश्चित तुम्हारे निवास से ही पूरा होगा ।"

नाटक को रामकथा का मर्म नहीं मिल सका है, एकमात्र मनोविनोद में सिमटकर सारा प्रयास रह गया है । और राष्ट्रीयता के नाम पर जो संवाद राम से कहलाया गया है, वह भी उपहासजनक है - राम कहते हैं-

"किन्तु सीता के हरण का अर्थ है भारत की लक्ष्मी का हरण यह सम्पूर्ण भारत को चुनौती दी गई है । सम्पूर्ण भारत के पौरूष को ललकारा गया है । इसीलिए आज मेरा धैर्य भी विचलित हो उठा है ।यह मेरी मर्यादा का नहीं भारत की मर्यादा का प्रश्न है ।" (पृ०६०)

राम का अपने मुंह से सीता को भारत की लक्ष्मी का कहना, अपने को प्रकारान्तर से भारत अभिव्यक्त करना, छोटी बात है, उनके गौरव तथा वीरता के अनुरूप नहीं है और हमारे विचार से आज के युग में भी कोई भारत राष्ट्र का विधाता अपनी पत्नी को इस रूप में कहने में गौरव का अनुभव नहीं करेगा, जन-हृदय इसे कहे तभी इस कथन का गौरव है ।

नाट्य- शिल्प-संवाद, अभिनय पूर्णता सब कुछ होने पर भी नाटक में प्राण प्रतिष्ठा नहीं हो पाई है । रामकथा के प्रति नाटककार का कोई प्राणवान उद्देश्य भी सामने नहीं आता और न रामकथा के किसी अप्रकटित पक्ष का उद्घाटन ही इसमें हो पाता है । शबर जीवन की दिन-चर्या, जीवन-विधि के कुछ प्रसंग ही प्रकट करने का कौशल नाटककार के हाथ लगा है ।

## श्री चन्द्र प्रकाश वर्मा

वर्मा जी का सन् १९६२ में "त्रेता" नाम का तीन अंकों का नाटक प्रकाशित हुआ । अंक दृश्यों में विभाजित हैं । पाश्चात्य नाट्य शैली से लिखा गया रामकथा पर यह एक सफल नाटक है जिसमें राम-रावण के युद्ध को आधुनिक विचारों के धरातल पर युद्ध-शान्ति समस्या के रूप में देखा गया है ।

नाटक का आरम्भ समुद्र पर पुल निर्माण से चकित रावण सभा से होता है और अंत कुंभकर्ण तथा मेघनाद की ~~व~~ पत्नियों- वज्र-ज्वाला एवं सुनेत्रा के द्वारा की गयी युद्ध भर्त्सना से । वज्र ज्वाला कहती है -

"सत्य है सुनेत्रा । युद्ध सुख छीनता है । स्वप्न छीनता है । वह आशा और अभिलाषा छीनता है । वह चरणों से गति अधरों से मुस्कान, कंठ से संगीत और हृदय से स्नेह छीनता है । वह भूमि से हरीतिमा और आकाश से नीलिमा छीनता है । विश्व में क्षुद्र अभिलाषाओं की दौड़-धूप मची है । आओ सुनेत्रा । हम जीवन के ~~नवि~~ चिरन्तन मूल्यों की पहचान करें । आओ । इस युद्ध के विरुद्ध हम स्वर में स्वर मिलावें ।

(पृ०१२६)

भाषा में नाटकीयता और स्वाभाविकता कम, वाच्यात्मकता अधिक है । परंपरागत आती रामकथा और उसमें मार्मिक प्रसंगों को लेखक ने हलके ढंग से भी जहां तहां प्रयुक्त किया है जैसे केशव की रामचंद्रिका में रावण की अंगद के प्रति कही गयी राजनीति की यह उक्ति:-

नील सुखेन हनू उनके बल और सबै कपि पुंज तिहारे ।
आठहु आठ दिशा बलि दै, अपनो पदु लैं, पितु जा लग मारे ।।
तोसे सपूतहि जायके बालि अपूतहि की पदवी पगु धारे ।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहिं क्यों न हते बपु मारे ।।१५।।

(१६वां प्रकाश)

इस "त्रेता" नाटक में इस प्रकार से आती है -

"इन्द्रजीत के सहायक बनकर । लंका की राज्य वाहिनी में सहायक सेनाध्यक्ष के पद पर तुम्हारी नियुक्ति की घोषणा । मैं अविलम्ब कर सकता हूं । यह अशोभन न होगा । तुम मित्रात्मज हो, मेरे आत्मीय हो ।"

(पृ०४१)

भला लंका की सेना में सहायक सेनाध्यक्ष का पद दूसरे राज्य का युवराज कभी स्वीकार करेगा ।

इसी प्रकार राम की सेना की गतिविधि देखने के लिए छिपकर रावण समुद्र तट पर जाता है । वहां राम से भेंट हो जाती है और दर्शन, भक्ति तथा संस्कृति की बातें होने लगती हैं । लेखक को जानना चाहिये था कि यह आपसी संघर्ष नहीं, दो जातियों का संघर्ष था, जिसमें इतनी आत्मीयता से दोनों शत्रु युद्ध काल में बात नहीं कर सकते । और जब लेखक रावण के मुंह से यह बात कहला देता है कि --

"श्री राम देवी सीता मेरी आराध्या और आप मेरे आराध्य हैं । आप चकित न हों । यह मर्म केवल एक लंकेश्वरी को छोड़ अन्य कोई नहीं जानता ।"

(पृ० १०७)

तब युद्ध-शान्ति की समस्या नाटक में प्रस्तुत करने का कोई प्रसंग ही नहीं होता ।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

डा० लाल ने एक "रावण" नाम से एकांकी नाटक लिखा है जो उनके नाटक बहुरूपी में संगृहीत है । इसका प्रकाशन सन् १९६४ में हुआ । ऐसा मालूम होता है कि यह एकांकी रेडियो वार्ता के रूप में जल्दी-जल्दी में लिखा गया होगा और बाद में एकांकी संकलन में रख दिया गया । नाट्य शिल्प की बात तो दूर की वस्तु है, भाषा तथा विषय की दृष्टि से यह रचना नितान्त हास्यास्पद है ।

संक्षिप्त कथा यों है - राम समुद्र तट पर बैठे हैं, पुल निर्माण हो रहा है । रात्रि का प्रथम प्रहर है । अवस्थ लक्ष्मण की दवा करने लंका से सुषेन आया है । राम को समुद्र गर्जन, शिव ताण्डव की स्तुति के साथ "रावण की जयकार सुनाई पड़ती है । वे चिन्ता मग्न हैं । जाम्बवान से राम अपनी चिन्तन शक्ति का निष्कर्ष बताते हैं - रावण द्वारा की गई स्तुति शिव मय आकाश में व्याप्त शक्ति की आराधना है, जिससे वह शक्तिमान् रावण को विजय करने के लिए शिव जी की स्थापना और उपासना का विचार करते हैं । किन्तु शिव जी की उपासना का यज्ञ कैसे पूरा होगा । यज्ञ में धर्मपत्नी का रहना अनिवार्य है । सीता यहां हैं नहीं । पता नहीं शिव की प्रेरणा हुई या स्वयं शक्तिमती सीता की प्रेरणा हुई- रावण ही स्वयं जानकी को लेकर सागर तट पर पहुंचता है, यह सीता राम की मर्यादा बनकर धर्म कार्य से आयी हैं और जगत व्यवहार तथा वाणी से निष्क्रिय हैं । राम को वे प्रणाम नहीं करतीं । लक्ष्मण उनकी पहचान के लिए आगे बढ़ते हैं और वे अन्तर्ध्यान हो जाती हैं । लक्ष्मण हतप्रभ हो जाते हैं । राम उन्हें समझाते हैं - "वह जानकी नहीं थीं, लक्ष्मण, वह कृत्रिम जानकी रावण की माया-रचना थी ।" चलता हुआ कथा प्रसंग यहीं समाप्त हो जाता है । आगे रामेश्वर की जय के साथ पूजा उपक्रम में नाटक समाप्त हो जाता है ।

यह कथा पौराणिक आख्यान पर आधारित है । वाल्मीकि रामायण से इसका कोई संबंध नहीं है । पर जो कथा इस एकांकी में दी गयी है पौराणिक आधार पर होते हुए भी, केवल बीच की एक कथामात्र है, न इसका चरण है न इसका मुख है । एकांकी का अंतिम लक्ष्य क्या था-

रावण की माया का निदर्शन, उसका अन्तःकलुष, तब राम की उदात्तता में उसका पर्यवसान भी दिखाना चाहिए था, इस एकांकी में राम उसके सामने बिलकुल हतप्रभ हैं और रावण भी निष्प्रयोजन प्रभाहीन दृष्टिगत होता है । एकांकी में साकार क्या किया गया इसका पता नहीं चलता ।

भाषा और अर्थ बोध के संबंध में तो एकांकी बिल्कुल खिलवाड़ हो गया है । लक्ष्मण बीसवीं शताब्दी के आचार- शब्दों में रावण से बात करते हैं -"धन्यवाद रावण ।" फिर उस युग की आचार शैली भी प्रयुक्त की गयी है -"आर्य श्रेष्ठ ।" सुषेण और जाम्बवान बार बार माता जानकी के स्थान पर "मातु जानकी" का प्रयोग करते हैं ।

राम का यह स्वागत - वाक्य भी देखिए-"आओ तुम्हारा स्वागत है श्री दशकंध ।"

अस्तु, ऐसी रचना को राम साहित्य की विवेचना में ले आने का एक मात्र लक्ष्य यह दिखाने का था कि राम कथा के नाम पर किस प्रकार अनाप-शनाप कथा प्रयोग भी किए जा रहे हैं तथा राम - साहित्य के स्रष्टा बनने के लोभी लेखक किस प्रकार काल, कथा तथा भाषा की व्यवस्था तोड़ कर हिन्दी में नाट्य - साहित्य लिखने का अनर्थ कर रहे हैं ।

## रामकथा पर लिखे उपन्यास

### उपन्यास शैली और रामकथा

साहित्य में उपन्यास की शैली हिन्दी के लिए नई कला थी, जिसका आविर्भाव, और प्रशस्त विकास तब हुआ, जब हिन्दी खड़ी बोली का कविता क्षेत्र राम कथा के यशोगान से भरपूर हो रहा था, और कुछ लोग रामकथा को नाटक शैली में उतार रहे थे । उपन्यास में विशेषकर सामाजिक चित्रण की कथावस्तु और ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार बनाया जाता था । पौराणिक उपन्यासों की शुरूआत भी बहुत बाद में हुई जबकि हिन्दी में आधुनिक युग के लिए रामकथा पिष्टपेषण मात्र रह गई । फिर उसे लेखकों के लिए उपन्यास का विषय बनाना कल्पना और बुद्धि की कसौटी थी जिसे बहुत वर्ष पीछे सन् १९५५ में आचार्य चतुरसेन "वयं रक्षामः" में पूरा किया ।

इसके पूर्व हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री प्रेमचन्द ने "रामचर्चा" नाम से एक राम- कहानी लिखी जो उपन्यास नहीं, साधारण लोगों के लिए राम की गूढ़ कथा का सरलीकरण था । लेकिन यह प्रथम प्रयास

उपन्यास भी बन गया और रामकथा की साधारण व्याख्या भी । 

## श्री प्रेमचन्द

### राम-चर्चा

"रामचर्चा" का प्रथम प्रकाशन सन् १९३८ में हुआ, इसे लेखक ने श्री रामचन्द्र की अमर कहानी व्यक्त की है । सात काण्डों के क्रम से ३४ प्रकरणों में यह राम कहानी कही गई है । इस कहानी को पौराणिक कल्पनाओं और मान्यताओं से नीचे ले आने का प्रयत्न लेखक ने किया है । सहज मानव की कहानी के रूप में चित्रित करने का लेखक का प्रयास उसके अपने शब्दों में है,

उसकी अभिव्यक्ति नहीं है, ऐसी अभिव्यक्ति जिसे पाठक सहज स्वीकार कर लें । वानर भालु मानवों की जाति कहे गये हैं, पर उनकी भूमिका नहीं आती जिसे साधारण पाठक स्वतः स्वीकार कर लेगा। लेकिन इस प्रकार का प्रथम प्रयास लेखक का स्तुत्य कार्य था ।

लेखक ने इसे सरल और प्रायः हिन्दुस्तानी मिली भाषा में लिखने का दृष्टिकोण भी रखा है ।

लेखक"रामचर्चा" को यथार्थ और आदर्श के रूप में रखना चाहा है । राम की कहानी जो सम्पूर्ण देश में श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती है, उसके माध्यम से सच्चे कर्तव्य का उपदेश देना लेखक का उद्देश्य है । अन्त में लेखक कहता है --

"यह है रामचन्द्र के जीवन की संक्षिप्त कहानी । उनके जीवन का अर्थ केवल एक शब्द है और उसका नाम है कर्तव्य । उन्होंने सदैव कर्तव्य को प्रधान समझा । जीवन पर कर्तव्य के रास्ते से भी नहीं हटे । कर्तव्य ही के लिए चौदह वर्ष तक जंगलों में रहे, अपनी जान से प्यारी पत्नी को कर्तव्य पर बलिदान कर दिया और अन्त में अपने प्रियतम भाई लक्ष्मण से भी हाथ धोया । प्रेम पक्षपात और शील को कभी कर्तव्य के मार्ग में नहीं आने दिया । यह उनकी कर्तव्य परायणता का प्रसाद है कि सारा भारत देश उनका नाम रटता है और उनके अस्तित्व को पवित्र समझता है । इसी कर्तव्य परायणता ने उन्हें आदमियों के ऊपर से उठाकर

देवताओं के समकक्ष बैठा दिया है[1]।"

प्रेमचन्द ने "रामचर्चा" की कहानी की कथा तुलसीदास के "रामचरितमानस" के आधार पर नहीं, वाल्मीकि रामायण को भी आधार बनाकर लिखा है । इसमें उनका दृष्टिकोण कथा की बहुत छानबीन करना नहीं था, जो कथा सामने थी, उसे ही यथा संभव यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर देना, कहानी का सही रूप अपने दृष्टिकोण से पाठकों के सामने रखना ध्येय था ।

श्री चतुरसेन शास्त्री

वयं रक्षामः

रामचरित को लेकर हिन्दी में उपन्यास साहित्य केवल वयं रक्षामः ही है। चक्रवर्ती राज गोपाल चारी का "दशरथ नन्दन श्रीराम" सस्ता सहित्य मंडल द्वारा अनूदित होकर हिन्दी में आया है, इसे भी किसी सीमा तक उपन्यास ही कहेंगे लेकिन मूल रूप से हिन्दी की रचना वह नहीं है, इसीलिए रामचरित पर उपन्यास - साहित्य का प्रसंग जब हमारे सामने आता है तो "वयं रक्षामः" एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना के रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री हिन्दी के माने जाने उपन्यासकार हैं, उपन्यास क्षेत्र में उनकी कृतियां विश्रुत हैं । अतीत के इतिहास - रस की जैसी अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों में हुई है, हिन्दी के अन्य उपन्यासकार वैसी सफलता नहीं प्राप्त कर सके हैं । "वैशाली की नगर वधू" उनकी रचना अतीत के इतिहास उसकी अत्यन्त विख्यात उपन्यास है । रामकथा का इतिहास लेकर वैसा ही यह दूसरा उपन्यास चतुरसेन शास्त्री ने प्रस्तुत किया जो कई दृष्टियों से रामकथा में वाल्मीकीय रामायण, रघुवंश, पउम चरिउ, राम चरित मानस के बाद अपना स्थान रखता है ।

"वयं रक्षामः" में जिस ऐतिहासिक दृष्टि, राष्ट्रीय मान्यता तथा विराट् चरितों की कल्पना का सामंजस्य हुआ है वह नितान्त अभिनव,

---

१- रामचर्चा, पृ० १९८ ।

अनुप्रेरक तथा रामकथा का सहज बोध कराने वाला प्रयास है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता है - पौराणिक अंधानुसरण से युक्त मानवीय इतिहास के धरातल पर राम और उसके शत्रु रावण तथा उनके पूर्वज और सहयोगियों की ऐतिहासिक सामाजिक विवेचना का सविस्तार मानवीय सभ्यता के वनखण्ड की तस्वीर, जिसे चतुरसेन ने वयं रक्षामः में चित्रित किया । और उपन्यास समाप्त होते-होते यह बहुरंगी तस्वीर, जिसे लेखक सत्तासी अध्यायों में सजाता - संवारता आ रहा था, एकाएक भारतीय संस्कृति के ज्योति शिखा मानव-वरेण्य राम की रावण पर अप्रत्याशित विजय से एक ही भारतीय नर की महिमा से अनुरंजित हो उठती है ।

"राम-रावण के इस महायुद्ध में लगभग संपूर्ण दैत्य- दानव नाग वंशी राजा और राज प्रतिनिधि रावण के [illegible] आये थे । रावण सप्तद्वीप पति था जो उस काल लंका के चारों ओर फैले थे । आजकल की भौगोलिक स्थिति यद्यपि बदल चुकी है, परन्तु वे द्वीप आज आस्ट्रेलिया, जावा, सुमात्रा, मैडागास्कर अफ्रीका आदि नाम् से प्रसिद्ध हैं । ऐसे प्रबल शत्रु को मारना आसान न था । [illegible]ध्वज, शंबर और वर्किन की समाप्ति के बाद रावण का यह निधन ऐसा था जिसने सम्पूर्ण अनार्य बल तोड़ दिया था । इसी से राम का नाम और यश इन द्वीपों में फैल गया और भूमण्डल में राम विख्यात हो गये । लोग महादेव और जगदीश्वर की भांति रावण के स्थान पर राम की ही पूजा करने लगे । चम्पा, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, बरमा में भी राम प्रताप व्याप गया । योरोप की जातियां किसी न किसी राम प्रभावित प्राचीन जाति से ही संबंधित हैं । अतः योरोप की सभी प्रमुख जातियों में --जैसे इंगलैण्ड, स्पेन, स्वीडन, नार्वे, स्कैन्डीनेविया, ग्रीस और इटली भी राम प्रभाव से रहित न रह पाये । इस प्रकार आज की उपस्थित सब जातियोंमें इस आर्य नेता विजेता मर्यादा पुरूषोत्तम राम का किसी न किसी रूप सांस्कृतिक मिश्रण है[1] ।"

मानव इतिहास के पृष्ठ में किस पंक्ति में राम गाथा का तारतम्य है इसे स्पष्ट करने में लेखक को अभूतपूर्व सफलता मिली है । उनके

---

१- वयं रक्षामः (प्रथम संस्करण) पृ०७६६-७६७ ।

शब्दों में जगदीश्वर रावण का प्रताप ही क्रान्त होकर राम की महिमा में परिणत हो गया । मानव इतिहास की ऐसी विचित्र घटना जिसने हजारों बर्षों के बाद भी अपने प्रभाव में कोई न्यूनता नहीं आने दी, एक ही है । लेखक ने ग्रंथ की समाप्ति पर अपना इतिहास और अतीत की मान्यताओं को स्पष्ट करने के लिए २८१ पृष्ठों की सप्रमाण भूमिका देकर रामगाथा की इस कृति को सर्वथा मौलिक, अभिनव और अनवद्य बना दिया है । "रामचरितमानस" के बाद हिन्दी में रामकथा पर इतनी महत्वपूर्ण कृति कदाचित् दूसरी नहीं है । ग्रंथ के कुल अध्यायों की संख्या. १२८ है । इसका प्रकाशन पहली बार १९५५ में हुआ ।

रावण और राम के पूर्वजों के इतिहास पर जो एक तीक्ष्ण सिंहावलोकन आचार्य चतुरसेन ने अपने "वयं रक्षामः" में किया है, वह कहीं गलत, अपूर्ण और कहीं नितान्त सत्य- तीनों हो सकता है लेकिन इसके विपरीत अपने पूर्वजों की पूर्व-परंपरा का यह अनुसंधान अतीत रस का यह साधारणीकरण रामचरित मानस की भांति राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति की आज की संस्कृति का अपरितोष्य अपने सुरभित शीतल रसौघ में निमज्जित करने वाला है, जिसमें कल्पना भी है, कटु सत्य की कसौटी भी है, काव्य भी है, इतिहास भी है, धर्म की व्याख्या भी है, सांस्कृतिक परीक्षण भी है । इसमें भाव और विचार दोनों की गहराइयां और विस्तार हैं । रामायण में भरत की भक्ति तथा राम की पितृ-भक्ति एवं रावण के अत्याचार के अतिरिक्त और बहुत कुछ सोचने और देखने की सामग्री है जिसे लेखक ने अपने पूर्व "निवेदन" में कहा है ।

"वयं रक्षामः" में कई संवादों में सरल संस्कृत भाषा का भी प्रयोग लेखक ने किया है । ग्रंथ का नाम ही संस्कृत में है । रावण स्वयं संस्कृत का, वेद-विद्या का प्रकाण्ड पंडित था । अतीत रस के साधारणीकरण में एक प्रायोगिक चमत्कार अवश्य हुआ है । पर वह बहुत संगत नहीं प्रतीत होता । वैसे भाषा की दृष्टि से यह ग्रंथ काव्य भी है, उपन्यास भी है, इतिहास भी है । जैसे वाल्मीकिय रामायण और महाभारत में वाल्मीकि और व्यास की भाषा कहीं कहीं साहित्यिक प्रांजलता से ओत-प्रोत होकर चलती है, कहीं कहीं सरल, प्रसादपूर्ण होकर केवल तथ्य

वचन या घटनाओं का इतिहास प्रस्तुत करता है । कहीं व्याख्या परक होकर अर्थ गंभीर बन जाती है, ठीक भाषा का यही क्रम "वयं रक्षामः" में भी है । इस उपन्यास की तीनों प्रकार की भाषा का एक एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है । साहित्य की प्रांजल भाषा देखिए--

"अस्तंगत सूर्य की रक्तिम रश्मियां बन श्री को रंजित करने लगीं । तरुण ने धीरे से रमणी को शिलाखण्ड पर बैठाकर अधो वस्त्र वेनी को बन्धन किया । स्वयं कटिबन्ध पहना--मृगाजिन धारण किया, फिर उसके लाक्षारंजित चरण युगल गोद में लेकर कच्छप-चर्मनिर्मित उपानह चरणों में डाल चर्म रज्जु बांधने लगा[1]।"

(२) प्रसाद पूर्ण इतिहास की यह भाषा भी देखिए-

"परन्तु भाग्य की बात देखिए- यहां भी इनका एक प्रबल प्रतिस्पर्धी उत्पन्न हो गया । यह काक-उशना-शुक्र थे जो दैत्यगुरु भृगु-पुत्र थे । भृगु का बंश प्रजापति का बंश होने के कारण अधिक प्रतिष्ठित था और शुक्र तो दैत्यपति बलि और दानवेन्द्र वृष पर्वा के याजक तथा चक्रवर्ती पौरव ययाति के श्वसुर थे ही । उनका बड़ा मान था - बड़ा नाम था । अतः अरब-शाक द्वीप में भी वशिष्ठ का प्रताप भी नहीं रहा । भृगुबंशियों का तेज, प्रताप वहां बढ़ता गया । पीछे भार्गव और्व के यहां आ जाने से द्वीप का नाम ही अरब पड़ गया[2]।"

(३) तीसरी प्रकार की भाषा का नमूना यह है -

"इसी प्रकार रावण भी सम्पन्न रहे । अब ये ही तो दो सम्पन्न बंश रह गये, जो प्राचीन नृबंशों का प्रतिनिधित्व करते हैं । इसी से मैं उन पर सदय हूं । रावण जो आर्य-अनार्य का भेद मिटा कर समूचे नृबंश की एक वैदिक संस्कृति स्थापन करना चाहता है सो बुरा क्या है ? क्या पृथ्वी के स्वामी ये आदित्य ही रहेंगे ? + + + ।- आदित्यों ने इलावर्त में देवलोक स्थापित कर लिया और भारतवर्ष में आर्यावर्त[3]।"

---

१- वयं रक्षामः, पृ० ९ ।

२- वही, पृ० ३३३ ।

३- " पृ०७२१ ।

भाषा की इस छटा के अतिरिक्त इस उपन्यास में भावों और रसों की अच्छी अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, विशेषतः शृंगार, वीर, रौद्र, करुण रसों की तथा इनसे संबंधित भावों की । और अन्त में पूरा उपन्यास एक तरह से रामकाव्य की नूतन विधा ही बन जाता है । रामकथा पर केवल यही एक उपन्यास महत्वपूर्ण होकर सामने आता है, दूसरे उपन्यास यदि लिखे भी गये हों तो उनका रामकथा में कोई नया योग नहीं है । जैसा कि पहले कहा गया है रामकथा विशेषतः काव्य शैली की कहानी बन गयी थी और इसके बाद रामलीला के माध्यम से उसे नाटक शैली की अभिव्यक्ति भी मिली, इसीलिए उपन्यास शैली में इस महत्वपूर्ण उपजीव्य कथापर लेखकों की कलम नहीं चली । साथ ही उपन्यास शैली की जैसे जैसे हिन्दी में उन्नति हुई, काव्य शैली में लिखी रामकथा की रचनाओं की इतनी भरमार हो गयी कि कोई समर्थ लेख लेखक ही अभिनव दृष्टि की स्थापना से उपन्यास शैली में रामकथा पर कुछ लिख सकता था जैसा कि आचार्य चतुर सेन ने किया।

## श्री अक्षय कुमार जैन

रामकथा को कहानियों के रूप में लिखने का प्रयास भी किया गया जिसमें रामकथा के मार्मिक प्रसंगों को शीर्षक देकर अलग अलग रोचक और मर्मस्पर्शी और प्रेरणाप्रद घटनाओं को चित्रित किया गया । जैन जी ने सन् १९५४ में "युग पुरुष राम" नाम से रामकथा को क्रमबद्ध कहानियों के रूप में रखा है । लेखक ने इस रचना के संबंध में अपना उद्देश्य प्रस्तावना में व्यक्त किया है -

"इस कथा में एक लेखक के नहते मैंने थोड़ी स्वतंत्रता बरती है, यद्यपि मूल कथा में कोई विशेष अन्तर नहीं है । ऋषि बाल्मीकि की रामायण, तुलसी का रामचरित मानस; कम्ब रामायण और श्री मैथिलीशरण का "साकेत" मुझे प्राप्त है और मैं उनका अध्ययन कर सका । इस पुस्तक की कथा में इन सबका समावेश हो सकता है । वैसे कथा के जो उपेक्षित स्थल मुझे अच्छे लगे कल्पना के आधार पर मैंने लिख डालने का यत्न किया है ।"

इसमें कुल ३८ कहानियां हैं । इनमें कई कहानियां पुराण में उल्लिखित रामकथा के आधार पर जैसे "विदेह को धरती की भेंट", "वन को प्रस्थान और शबरी का आतिथ्य", "महापंडित रावण आचार्य के रूप में", "रावण की अंतिम अपूर्ण कामना", "धरती धरती की गोद में लय" आदि ।

इन कहानियों की भाषा बड़ी सुगठित है । इनकी अपनी एक शैली है । सुबोध तथा मार्मिक ढंग से रामकथा के प्रसंग पाठकों के सम्मुख रखे गये हैं । लेखक ने अनेक स्थलों पर रामकथा को मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है और रामकथा में सांस्कृतिक प्रतिमानों को खोजने का स्तुत्य प्रयास किया है । भगवान किस प्रकार से युग पुरुष हैं तथा लोक के मर्यादा पुरुषोत्तम हैं --यह इन कहानियों में भलीभांति व्यक्त हुआ है । कहानियां केवल ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथामात्र नहीं हैं । बल्कि उनमें आधुनिक कहानी शिल्प का प्रकृति और भाव का संघटन किया गया है । कई कहानियों में लेखक ने अपनी नयी मान्यताएं भी स्थापित की हैं जैसे "राजतिलक नहीं वनवास" कहानी में कैकेयी द्वारा राम के वनवास के लिए वर मांगना - एक महान् राजनीतिक उद्देश्य से गर्भित है । कैकेयी दशरथ से कहती है --

"कैकेयी - नाटक जाने पहला था या अब है । पर महाराज यह सुनिश्चित है कि राम को वनवासी होना पड़ेगा । वह अयोध्या से बांधा जाना नहीं चाहिए, वह जम्बू द्वीप का महापुरुष है । आप उसे वन में भेज दीजिए ।"

(पृष्ठ २१)

जैन जी की कहानियां पहले स्फुट रूप से पत्रों में प्रकाशित होती रही हैं इसलिए यह हो सकता है कि यह कहानी पुस्तक में आने के बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी हो । कैकेयी के लांछन के सम्बन्ध में जैसे उत्कट विचार जैन जी ने प्रकट किये हैं ऐसे ही विचार "मणि रायपुरी" के "कैकेयी" काव्य में भी आये हैं और इनका पहला प्रेरक [illegible] द्विवेदी का निबंध है । इन विचारों का पहला उद्भावक कौन है,

नहीं कहा जा सकता । लेकिन जैन जी ने इन विचारों को सशक्त शैली में व्यक्त किया है । पीछे लिखे गये केदारनाथ मिश्र "प्रभात" के "कैकेयी" काव्य में ये विचार भारी उड़ानें भरने के कारण निष्प्रभ हो गये हैं ।

इस पुस्तक की एक विशिष्ट कहानी है "...रावण आचार्य के रूप में" । इस कहानी में रावण राम द्वारा शिव की स्थापना के यज्ञ का आचार्य बनता है जिस यज्ञ का उद्देश्य ही है रावण को विजय करना रावण यह जानकर भी ब्राह्मण होने के नाते यज्ञ का आचार्यत्व स्वीकार करता है यद्यपि इस कहानी को मूल रूप में जैन जी ने पुराणों से.प्राप्त किया है पर उनकी अभिव्यक्ति सर्वथा अपनी है । एक तरह से यह कहानी राम साहित्य की प्रतिस्पर्द्धी रचना है । इसके अंत में लेखक ने लिखा है-"सबके हृदय में भाव था कि रावण क्या मर्यादा पुरूषोत्तम नहीं ?"

## श्री रघुनाथ सिंह

एक दूसरी कृति श्री रघुनाथ सिंह संसद सदस्य वाराणसी की रामायण कथा है जिसे उपन्यास न कह कर राम कथा के क्रम आधारित कहानियों का संकलन ही कहना चाहिए । श्री रघुनाथ सिंह की रामायण कथा का प्रकाशन सन् १९६३ में हुआ । परन्तु ये कहानियाँ तब से २० वर्ष पूर्व लिखी जा चुकी थी । केवल उनमें ७६ संशोधन और परिवर्धन हीं लेखक ने किया है । प्रारम्भ में लेखक ने स्वयं इसे स्पष्ट कर दिया है ।

"पुरानी संशोधित पाण्डुलिपि की भाषा शैली २० वर्ष पुरानी थी । उसे संवारना सुधारना आरम्भ किया । इन २० वर्षों में विचारों तथा शैली में यथेष्ट अन्तर पड़ गया । सुधार कुछ अधिक हो गया था । पाण्डुलिपि को हिन्दी में टाइप कराया गया और पाण्डुलिपि पुस्तकाकार होगयी ।"

(भूमिका भाग पृ० १४) ।

इस रामायण कथा में ७ काण्ड के क्रम से कुल ५० कहानियां हैं । इन कहानियों का आधार केवल बाल्मीकि रामायण ही नहीं है बल्कि अनेक इतर ग्रंथों-पुराणों में वर्णित-रामकथा को आधार बनाकर कहानियों का गुम्फन लेखक ने किया है । बाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त महाभारत, पद्म पुराण, ब्रह्मांड पुराड, बायु पुराण, स्कन्द पुराण, विष्णु धर्मोन्तर पुराण, मत्स्य पुराण, देवी भागवत, अध्यात्म रामायण जैसे ग्रंथों से कहानियों का चयन लेखक ने किया है । इसमें एक नई बात यह हुई है कि रामकथा के विविध प्रसंगों की अनेकधा कथावस्तु का बहुत कुछ संचयन इस ग्रंथ में हो गया है । सामान्यतः रामायण-कथा के जो पात्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, उन्हीं के संबंध में लोग अब तक लिखते आये हैं लेकिन श्री आचार्य चतुरसेन शास्त्री और श्रीरघुनाथ सिंह ने रामायण की प्रासंगिक कथाओं के ~~ग~~ चरित्रों को भी सामने रखा, यह एक नयी बात हुई । चतुरसेन शास्त्री की दृष्टि सर्वथा अभिनव एवं विश्लेषणात्मक है और रघुनाथ सिंह ने पुराणकार की बात को ही यथा तथा अपनी हिन्दी की शैली में कह दिया है । इस रामायणकथा में रामायण के प्रसिद्ध पात्रों के अतिरिक्त जिनके चरित्रों की अलग कहानी के रूप में चर्चा हुई है,हैं-शान्त, वामन, कुशनाभ, कार्तिकेय, सगर, असमंजस, भगीरथ, इन्द्र, अम्बरीष, मेनका, रम्भा, परशुराम, वातापि, वेभवती, मरुत, कुम्भीनरनी, नलकूबर, सहस्रार्जुन, नृग निमि, ययाति, इल ।

स्पष्ट है कि लेखक ने रामकथा से संबंधित पौराणिक आख्यानों को रोचक शैली की कहानियों में अवतरित किया है । पर इन कहानियों में पौराणिक मान्यताओं को ज्यों का त्यों रख दिया गया है, उनका कोई विवेचन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इनमें देखने को न मिलेगा । दो उदाहरण लीजिये-

"देवताओं का निवेदन ऋषि जह्नु ने सुना । वे प्रसन्न हुए । उन्होंने कान से गंगा की जलधारा निकाल दी । गंगा भगीरथ के दिव्य रथ के पीछे पीछे पुनः चल पड़ी ।" (पृ० ६१)

पूर्व काल में मयूर का पंख नीला होता था । सुन्दर नहीं था । इन्द्र के बरदान के पश्चात पंखों पर नेत्र बन गये । स्वरूप मनोहर हो गया ।" (पृ० २०७)

पुराण की ये मान्यताएं धार्मिक विश्वास से मौन पाठक के लिए ही स्वीकार होंगी । बुद्धिशील आज का पाठक इनसे कुछ न प्राप्त करेगा ।

रामायण कथा की कहानियों की शैली हिन्दी की कहानियों की शैली है, उनमें संस्कृत के छोटे आख्यानों की शैली का अनुसरण नहीं किया गया है परन्तु इस शैली में कथाएं चमत्कृत नहीं हो सकी हैं ।

इस ग्रंथ से इस क्षेत्र के उत्तर ग्रंथों का ध्यान जा सकता है कि रामकथा साहित्य की सीमाएं कहां तक जाती हैं । अनेक पुराण और महाभारत रामकथा के आख्यानों के विविध रूपों की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं जिनके कई छायाचित्र भी रघुनाथ सिंह ने रामायण कथा में उतारे हैं ।

## राम कथा पर मनोविश्लेषणात्मक चिन्तन से अनुप्रेरित साहित्य

इधर हिन्दी के आधुनिक युग में परिचय से जो अनेक प्रवाह और बाद आये, उन्होने शैली शिल्प और अभिव्यक्ति में विचार तथा चिन्तन को अत्यधिक प्रश्रय दिया, यहां तक कि साहित्य की अधिकांश रचना- क्या काव्य, क्या नाटक, क्या उपन्यास, क्या कहानी तथा अन्य विधायें- सभी में भाव की अपेक्षा विचार तत्वों का मूल्य अधिक आंका जाने लगा । कविता पर इसका बुरा-अच्छा दोनो प्रभाव पड़ा, भाव-योजना के स्थान पर कविता दर्शन की वस्तु बन गयी, अनेक कवियों ने विचार तो किया ही, कविता में दर्शन की मीमांसा करने में अपने को कृतकृत्य समझा है । छायावाद युग का प्रसिद्ध काव्य कामायनी कविता से अधिक दर्शन ही है । अन्य काव्य जैसे प्रिय प्रवास, साकेत, कुरुक्षेत्र, अंगराज भी दर्शन तो नहीं, किन्तु विचारों की शृंखला से संकुचित हो गये हैं, रस और भाव की अभिव्यक्ति इस युग के साहित्य में निरन्तर गौड़ होती जा रही है और चिन्तन प्रधान होता जा रहा है ।

इस दार्शनिक चिन्तन के साथ ही साथ मनोवैज्ञानिक चिन्तन का भी साहित्य के क्षेत्र में आविर्भाव हुआ जिसके फलस्वरूप प्राचीन-अर्वाचीन पौराणिक युग अथवा वैज्ञानिक युग के चरितों में, अथवा तत्कालीन घटनाओं के परिवेश में उसके मूल की खोज की जिज्ञासावश या घटनाओं के बीच संचरित होने वाली मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमियों को प्रस्तुत करने के कौतूहल में साहित्य की एक नई दिशा प्रस्तुत हुई ।

इस दिशा/दृष्टिकोण और शिल्प में रामकथा को प्रस्तुत करने का काम ही कुछ साहित्यकारों ने किया, यद्यपि उनकी रचनाएं लोकप्रिय नहीं हो सकीं हैं किन्तु उनके महत्व और वस्तु आकलन से इनकार नहीं किया जा सकता, आज न सही कल उनका मूल्यांकन हो सकता है ।

चिन्तन तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से पूर्ण इन रचनाओं में इतिहास के यथार्थ सत्य को उभार कर रखने में अधिक क्षमता प्राप्त की है । जहां उन्हें क्षमता नहीं मिली है वहां पाठक उनकी कृति को पढ़कर सत्य की खोज की ओर उन्मुख होता है, भावों में डूबना पसंद नहीं करता । चिन्तन प्रधान साहित्य की रामकथा संबंधी वे रचनाएं भरसक भगवान राम को परमात्म तत्व से उतार कर साधारण मानव की कोटि में रखने का प्रयत्न करती हैं, उनका विराट चरित तो कम नहीं होता, लेकिन पौराणिक और धार्मिक मान्यता अपने आप नीचे आ जाती है । एक साधारण सहज मानव की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के समकक्ष राम या अन्य विराट चरित को खड़ा कर उसी तौल पर शब्द-अर्थ के बटखरे से तौलने की कोशिश जो कवियों ने की है, उससे भ्रान्ति या प्रमाद होने का डर भी बराबर रहा है और घटित भी हुआ है ।

हमको इतना और जान लेना चाहिए कि ऐसी रचनाएं किसी विशेष मनोवैज्ञानिक चिन्तन से तड़फड़ाकर ही लेखकों ने लिखा है । चिन्तन या भाव का कोई विशेष आघात ही ऐसी रचनाओं का कारण होता है ।

रामकथा पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अनुप्रेरित होकर साहित्य की जो कृतियां इस बीच लिखी गयीं उनमें तीन हमारे सामने आलोच्य होकर प्रस्तुत हैं । एक है प्रसिद्ध साहित्यकार श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का रेडियो रूपक-सीता की मां, दूसरी कृति है तरुण कवि, श्रीजयशंकर त्रिपाठी का खंडकाव्य "आंजनेय" और तीसरी रचना है साहित्यकार श्री नरेश मेहता की काव्य रूपक सी कृति "संशय की एक रात" ।